लेखक की रचनाओं के सम्बन्ध में कुछ प्रमुख सम्मतियाँ—

× × ×

कहानी संग्रहों के विषय में :—

नेशनल हैरल्ड, जून १९४०

"यह कहानियाँ संसार की किसी भी भाषा की श्रेष्ठ कहानियों के संग्रह में ऊँचा स्थान पाने योग्य हैं।"

कविवर मैथिलीशरण गुप्त

"विधाता ने लेखक को मुक्तहस्त होकर प्रतिभा और शक्ति दी है…हिन्दी कथा साहित्य अभी तक लेता ही रहा, राम कृपा से अब वह देने योग्य भी हो गया है। यह शक्ति हिंदी को ऐसी ही रचनाओं से मिल रही है……।"

उपन्यास के विषय में :—

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन

"यशपाल की परतूलिका स्थायी मूल्य की चीज़ों के लिए है… 'देशद्रोही' संसार की उन्नत भाषाओं के उपन्यासों की तुलना में रखी जा सकती है

आजकल' दिसम्बर १९४९ :—

'मनुष्य के रूप'—"उपन्यास वास्तविकता, कल्पना और उद्देश्यपरकता का अपूर्व मिलान है"

हिन्दुस्तान—नयी दिल्ली (जून १९४९)

"मतविरोध होने पर भी लेखक की कला का लोहा मानना ही पड़ता है………।"

राजनैतिक निबन्धों के विषय में :—

आचार्य नरेन्द्रदेव, वाइस चांसलर, बनारस विश्वविद्यालय

"इन लेखों को पढ़कर आपके होठों पर जो मुस्कराहट आयेगी वह आत्मविस्मृति और आनन्दोल्लास की न होकर क्षोभ, परिताप और करुणा की होगी……। लेखक आत्मविस्मृत समाज को कलम की नोक से गुदगुदा कर जगाने की चेष्टा करता है और समाज को जागते न देख कभी कलम की नोक समाज के शरीर में गड़ा भी देता है।

भदन्त आनन्द कौसल्यायन

'गांधीवाद की शव परीक्षा'—इस वर्ष की सर्वोत्तम और सर्वोपयोगी पुस्तक है…'

विप्लव प्रकाशन—१५

मनुष्य के रूप

(उपन्यास)

यशपाल

(दूसरा संस्करण)
दिसम्बर १९५२

विप्लव-कार्यालय, लखनऊ

मार्च १९४९]
[मूल्य ६) रुपये

प्रकाशक—
विप्लव कार्यालय,
लखनऊ.

मुद्रक—
साथी प्रेस
लखनऊ.

समर्पण—

मानवता के विकृत रूप को स्वाभाविक अवस्था में लाने के लिये जो आत्म बलिदान कर सर्वस्व अर्पण कर रहे हैं उन्हीं सब साथियों को……… ।

डिस्ट्रिक्ट जेल, लखनऊ ।
२२-२-४६

यशपाल

मनुष्य के रूप

१

पहाड़ी सड़क पर

अंग्रेज़ी सरकार ने निश्चय कर लिया कि पठानकोट से आगे पहाड़ी प्रदेश में भी रेल चलाई जाय। कांगड़े के पहाड़ों की पसलियां चीर-चीर कर उन पर लोहे के रास्ते बना दिये गये। छोटे-छोटे इंजन अपने पीछे छोटी-छोटी रेलगाड़ियां बाँधे, हांफते, दम तोड़ते, छुक-छुक शोर मचाते और बहुत सा धुआं उगलते लोहे के रास्तों से पहाड़ों के विशाल शरीरों पर कान-खजूरों की तरह रेंगने लगे।

पहाड़ों की गर्वित प्रकृति ने मनुष्य के इस अहंकार और दुस्साहस का विरोध किया। जैसे भैंस सुध आने पर अपने शरीर पर रेंगने वाले कीड़ों को गिरा देने के लिए अपना शरीर थिरका देती है, वैसे ही यह विराट पहाड़ रेलगाड़ियों के रेंगने की सरसराहट अनुभव कर अपना शरीर हिलाने लगे। कभी पहाड़ का कोई भाग भरभरा कर लाइन पर आ गिरता या दरार फट जाती तो लोहे की लाइनें और शहतीर कच्चे धागे की तरह तड़क जाते। सरकार ने अपनी रेल-लाइन को बैजनाथ से समेट कर नगरोटा तक ही सीमित कर लिया।

अब भी पठानकोट से कुलू-मनाली तक मुसाफिरों और माल की यातायात सवा दो सौ मील से अधिक दूरी तक सड़क की राह मोटरों द्वारा ही होती है। सड़क यह ऐसी है कि यात्रियों को 'मोटर लग जाती है'। मैदानों के निवासियों के लिये 'मोटर लग जाना' एक पहेली हो सकती है परन्तु भुक्त भोगी के लिये नहीं। मोटर लग जाने की तुलना ऊँचे हिंडोले में बहुत देर तक लगातार झूलने के परिणाम से की जा सकती है।

इस सड़क में अधिकांश आड़ी चढ़ाइयाँ और फिसलनी ढलवानें और कदम-कदम पर कोहनी के से मोड़ हैं। एक ओर हरियाली और फूलों से छाई चट्टानें ऊँचे किलों की दीवारों की तरह खड़ी हुई है; जिनकी चोटी देखने के यत्न में सिर से टोपी खिसक जाती है। सड़क के दूसरी ओर पत्थरों से भरी पहाड़ी खड्डें या पचास-साठ हाथ की गहराई पर श्वेत झाग उगलतीं नीली धारायें हैं। सड़क के घूमते जाने के कारण कभी सामने, कभी दाहिने, कभी बायें और कभी पीछे पहाड़ों की चोटियों पर पड़ी बरफ ऐसे दिखाई देती रहती है जैसे धूप से बचने के लिए पहाड़ों ने सिर पर सफेद अँगोछा डाल लिया हो।

कहीं-कहीं सड़क के किनारों से छोटे-छोटे पहाड़ी खेत, चौड़े-चौड़े जीने की तरह उतरते या चढ़ते चले जाते हैं। इन खेतों में या ढलवानों पर चरते पहाड़ी पशु घुरघुराती, तेज़ चाल से चली जाती मोटरों की ओर अपनी कौतुहल से फैली चमकती आँखें उठा स्तब्ध दृष्टि से देखते रह जाते हैं। कभी यह भेड़, बकरियां, छोटे कद की गायें या खच्चरें सड़क के किनारे बनी मुंडेर लांघ सड़क पर आ मोटरों से परिचय या परिहास करने के लिये क्षण भर मोटरों के सामने झिझक जाते हैं। यह पशु मोटरों को और मोटर ड्राइवर इन पशुओं को भांप चुके हैं। पल भर को मोटर से आंखें मिलाईं, झिझके, सहमे, ज़रा सींग दिखाये, मोटर ने जरा घुड़की दे तनिक सी राह काट ली और वह पशु मुंडेर फांद कर खेत या ढलवान में पहुंच जाते हैं।

सड़क से दिखाई देने वाले इन दृश्यों का आनन्द मुसाफिर प्रायः नहीं ले पाते। वे चक्कर खाती मोटर की चाल से चकराता अपना सिर दोनों हाथों से थामे, कपड़े का छोर मुँह पर दबाये रहते हैं, उनके रोम रोम सिहरते रहते हैं। यदि मोटर दाहिने या बायें एक बित्ता भर जगह भी चूक जाये तो उनका कहीं पता भी न चलेगा। वे यह सफर जोखिम में पूरा करते हैं। नित्य ही इन सड़कों पर चलने वाले मोटर ड्राइवरों की क्या अवस्था होनी होगी? वे अपनी चौकस, स्थिर दृष्टि सड़क पर जमाये, कोई गीत गुनगुनाते या सिगरेट पीते चले जाते हैं, उन्हें अभ्यास हो जाता है

धनसिंह प्रायः डेढ़ बरस से इस सड़क पर मोटर चला रहा था। जाड़े के दिन थे। वह दोपहर से कुछ पहले कुल्लू से चला था। 'मण्डी' पार कर वह अपेक्षाकृत सीधी और ढलवां सड़क पर 'बैजनाथ' की ओर निश्चिन्त, केवल अभ्यस्त सावधानी से चला जा रहा था। उसकी अपलक और स्थिर दृष्टि सड़क पर लगी हुई थी और सड़क तेजी से उसकी लारी के पहियों के नीचे से फिसलती जा रही थी जैसे मशीन के पहिये पर पट्टा फिसलता जाता है। मोटर की दिशा निश्चित करने वाले चक्के (स्टियर) पर टिकी उसकी उँगलियाँ, सड़क की अवस्था के अनुसार स्टियर को गति दे देतीं और सम्भल जातीं।

सड़क के बाईं ओर फैली घाटी के किनारे-किनारे मोटर पहाड़ियों की पसलियों पर से चली जा रही थी। घाटी की हरियाली ने जाड़े-पाले से पीली पड़ सुनहरी आभा ले ली थी। सूर्य ढल रहा था जैसे घाटी की पश्चिम सीमा पर रखे, चौड़ से छाई पहाड़ियों के तकियों पर अपना सिर टिका देना चाहता हो। धनसिंह को केवल नौ मील आगे, बैजनाथ तक ही पहुंचना था। सवारियों की चें-चें और चख-चख की कोई चिन्ता न थी। लारी में आलू की बोरियां लदी थीं!

धनसिंह का सहायक, लारी का क्लीनर कर्मू लारी के पिछवाड़े आलुओं की बोरियों में घोंसला बना कर लेटा हुआ था। वह मुंह ऊपर उठाये, कानों में उंगलियाँ दिये, गले की पूरी शक्ति और हृदय के उच्छ्वास से एक पहाड़ी झिंझोटी अलाप रहा था:—

"दिलां दियां कुण्डियां खुलाई कने वो,
प्रीतां दियां रीतां भुलाई कने वो,
दित्ता बिछोड़ा बंदिया जो।"

(मन के किवाड़ों की सांकल खुला करके,
प्रीत की रीतें भुला करके,
दिया बिछोड़ा दासी को रे।)

कर्मू की आवाज सुरीली थी और उसमें दर्द भी था। लारी की थिरकन से उसमें कम्पन भी आ रहा था। लारी की चाल और इन्जन का शब्द साज बनकर गीत के लिये ताल दे रहे थे। ऊँचे स्वर से गाये गीत का अधिकांश गाड़ी की तेज चाल के कारण

पीछे उड़ जाता। धनसिंह को गीत कोमल होकर दूर घाटी में से आता हुआ सुनाई दे रहा था। धनसिंह के हाथ स्टियर पर, पांव ब्रेकों को छूते हुए, आँखें उड़ती हुई सड़क पर, कान गीत के स्वर में और मन गीत के विषय में डूबा हुआ था। उसकी सतर्क दृष्टि में तरलता और चेहरे पर मग्नता का भाव था।

सड़क पर मोटर के सामने कुछ बकरियाँ और मेमने दिखाई दिये। धनसिंह की उंगलियों ने स्वतः भोंपू बजा दिया। बकरियां और मेमने कुछ झटके और सड़क की मुंडेरों की ओर हो गए परन्तु दो छोटे-छोटे मेम ने सहसा अपनी दोनों टांगें उठाकर फिर मोटर के सामने कूद आये और उनके ऊपर, छाया की तरह, आ गिरी एक औरत।

यंत्र की स्वाभाविकता और अचूक फुर्ती से धनसिंह का हाथ क्लच और पांव ब्रेक पर जा पड़े। गाड़ी अपनी गति के प्रवाह में अलंघ्य बाधा पा सड़क पर उछल कर खड़ी हो गई। गाड़ी का पुर्जा-पुर्जा चर्रा गया। धनसिंह के रोम-रोम से पसीना छूट गया। औरत गाड़ी के मडगार्ड का धक्का खा गिर पड़ी थी। एक छटपटाते मेमने की टांगें अब भी उसके हाथ में थी और दूसरा उछल कर सड़क पार की चट्टान पर खड़ा हो इस खेल से प्रसन्न हो मिमिया रहा था। औरत ने हाथ के मेमने को सुरक्षित देख उसे छोड़ दिया और स्वयं आंचल सम्भाल उठने के यत्न में उसने ड्राइवर की ओर देखा।

धनसिंह का क्रोध उबल पड़ा। आँखों में खून उतर आया। दांये हाथ से दरवाजा खोल, सड़क पर कूद वह गाड़ी के सामने पहुँचा। बड़ी कठिनाई से उसने अपनी फड़कती हुई बांहों को औरत को पीट देने से रोका। आखिर औरत जात थी; परन्तु गालियाँ उसके मुख से कितनी ही निकल गईं। "तेरी मां···फाँसी लगवायेगी ? बहन······फालतू है घर में ?"—क्रोध में वह कितनी ही गालियां बक गया।

वह स्त्री एक हाथ से चोट खाई कमर को दबाये और दूसरी बांह सिर को चोट की आशंका से बचाने के लिये उठाये आतंक से फैले हुये नेत्रों से मूक धनसिंह की ओर देखती रही। धनसिंह

अपनी विवशता में खीझ गया। वह इतनी भयंकर शरारत करने वाले व्यक्ति को पीट कर अपना क्रोध भी न उतार सका।

वह स्त्री, जवान लड़की और स्त्री की संधि की सी अवस्था में थी। उसकी तरल फैली हुई आसमानी रंग की बड़ी-बड़ी आँखें मूढ़ता से स्थिर हो गई थीं। घबराहट के कारण जल्दी-जल्दी आते हुये लम्बे-लम्बे सांसों से उसके उभरे हुये सीने फटे हुये कुर्ते से झांकने लगे थे। उन्हें आँचल में छिपा लेने की सुध लड़की को घबराहट में न रही थी। उसकी इस मूढ़ता ने धनसिंह के उफनते क्रोध को छींटा मार कर बैठा दिया।

कर्मू झटके से गिरते-गिरते बचा था। वह भी उतर कर सामने आ गया। जवान लड़की को यों भयभीत, उघाड़ी और खोई हुई अवस्था में देख उसने खीसें निकाल धनसिंह को सम्बोधन किया "हैं उस्ताद, खूब माल है।" और लड़की को पुचकारने के लिये उसने होंठों से सीटी बजादी। धनसिंह भी हँस दिया। लड़की को सम्बोधन कर उसने कहा—"तेरे बाप को तेरे लिये लड़का नहीं मिलता तो यों ही किसी के साथ चल दे! हम गरीबों का गला क्यों कटवा रही है चुड़ैल?"—लड़की को समझा देने के लिये वह पहाड़ी बोली में ही बोल रहा था।

लड़की चोट से स्तम्भित हो जाने के कारण धनसिंह की क्रुद्ध और तीव्र दृष्टि से भी संकोच न कर पाई थी। अब अपनी बोली में बात सुन और कर्मू का संकेत समझ उसने घिसे-फटे मैले कुर्ते से झांकते अपने शरीर के उभार को अंचल में छिपा लिया और उसकी लम्बी-लम्बी पलकें आँखों की जल मिले कच्चे दूध की सफ़ेदी पर झुक गईं, संकोच से गर्दन भी झुक गई।

कर्मू ने अपनी कुचेष्टा फिर दोहराई। धनसिंह भी हँसकर बोला—"भागवाने, अब उठ! सड़क छोड़! घर जा!......नहीं तो गाड़ी में ही बैठ ले। तुझे भी ले चलूँ।"

लड़की चोट से काँपती हुई उठी और सड़क किनारे मुंडेर के पास जा खड़ी हुई। धनसिंह गाड़ी में अपनी जगह पर जा बैठा। उसने मोटर का स्विच और स्टार्टर दबाये। इंजन ने इस संकेत का कोई उत्तर नहीं दिया।

"ले भाई कर्मू !"—उसने क्लीनर को पुकारा—"आ गई मुसीबत ! क्या बैटरी के तार टूट गये ?" धनसिंह फिर मोटर से उतरा। इंजन का पर्दा खोल कर देखने लगा। कर्मू ने लड़की की ओर संकेत कर सुझाया—"अरे भाई, खूबसूरत औरत की नज़र बुरी होती है। आदमी हलाक हो जाता है यह तो लोहे की मोटर ही है, देखा न, मचल गई ?"

धनसिंह ने भी कहा—"यह क्या जादू कर दिया कालिका माई ? अब रात यहीं काटनी पड़ेगी तो कुछ चना-चबेना, रोटी का टुकड़ा खाने को देगी या ऐसे ही मारेगी ?"—लड़की कुछ जवाब न दे सिर झुकाये सड़क पार कर समीप की चट्टान के साथ की पगडण्डी से ऊपर चढ़ दृष्टि से ओझल हो गई।

धनसिंह इंजन का पर्दा खोले कभी एक पुर्जे को टटोलता कभी दूसरे को। मोटर ऐसे स्पन्दनहीन थी जैसे हृदय की गति रुक जाने या फेफड़ा फट जाने से कोई जीव निश्चल हो जाता है। धनसिंह अपनी पूरी समझ और योग्यता से इंजन को ठीक करने का यत्न कर रहा था। क्लीनर कर्मू अपना धूल से भरा सिर खुजाता हुआ बड़बड़ाता जा रहा था""रात आ रही है""अब इस वक्त पीछे से कोई मोटर भी तो नहीं आ रही। तुमने 'मंडी' में खाना भी नहीं खाने दिया। दो पैसे के आलू लेकर पानी पी लिया था। मेरे पास तो कम्बल भी नहीं है।"

धनसिंह ने डांटा—"क्या बक-बक कर रहा है। पम्प ला कर कनेक्शन में हवा दे।" धनसिंह स्वयं चित्त लेट मोटर के नीचे जा देखने लगा कि गाड़ी के न हिल सकने का कारण क्या है ? वहीं से पुकार उसने कहा—"भाई कर्मू, मारे गये ! अरे, रीढ़ ही टूटी पड़ी है। यूनिवर्सल जाइंट टूट गया है।" धनसिंह चित्त लेटा सरकता हुआ बाहर आया। सब यत्न व्यर्थ जान एक दीर्घ श्वास ले कमर पर हाथ रख खड़ा हो गया—"अब ?" उसके मुंह से बेबसी में निकला।

सामने सूर्य थकावट से निस्तेज हो कर घाटी की सीमा पर, खड़े चीड़ के जंगलों के पीछे फिसल रहा था और विश्राम के लिये छाया और अन्धकार की चादर अपने शरीर पर खींचे ले रहा

था। नीचे की विस्तृत घाटी श्यामल हो गई थी। केवल ऊंचाई पर से गुज़रती सड़क पर सूर्य की अन्तिम, फीकी-फीकी, झिल-मिल सी किरणें शेष रह गई थीं। चिन्तित गम्भीर स्वर में धनसिंह ने कहा—"भाई कर्मू, मैं तो मालिक की गाड़ी छोड़कर जा नहीं सकता। शाबाश बहादुर जवान, तू जा! तू भूखा भी है, यहां रात में जाड़े से परेशान होगा। पैसे नहीं हैं तो मैं देता हूं। यहां से दो मील आगे सड़क पर 'पटोला' की दूकान है। वहाँ कुछ खा लेना। तेरे जैसे जवान आदमी के लिये क्या है; जरा लम्बे कदम रखता चला जा। आठेक मील होगा। दो घण्टे की मार है। वैजनाथ में खबर दे दे, यूनिवर्सल जाइंट टूट गया है और इंजन में भी खराबी आ गई है। सुबह पहली सर्विस में वैजनाथ से मिस्त्री को भेज दें। इधर पीछे मण्डी से तो कल तड़के पाँच बजे तक कोई सर्विस नहीं आयेगी।"

कर्मू खीझ और क्रोध में भुन-भुनाता हुआ वैजनाथ की ओर चला गया। धनसिंह सड़क पर अकेला रह गया। सूर्य अस्त हो चुका था। मैदानी देशों की भाँति पहाड़ों में सूर्यास्त और रात के बीच का सन्धिकाल देर तक नहीं चलता। घाटी से उठा अंधेरा शीघ्र ही आकाश पर भी छा जाता है। धनसिंह को प्यास अनुभव हुई। वह सड़क के सिवा इस इलाके से बिल्कुल अपरिचित था। सड़क के दाईं ओर छोटी सी चट्टान दीवार सी खड़ी थी और ऊपर वृक्षों के अतिरिक्त कुछ दिखाई न देता था। बाईं ओर घाटी में खेत बड़े-बड़े, चौड़े ज़ीनों की भाँति दूर तक उतरते, फैलते जाकर फिर दूर की पहाड़ियों पर चढ़ गये थे। घाटी की यह अंजली कई खेतों में गेहूं की अधपकी फसल सम्भाले थी, कई खेत खाली पड़े थे। एक पगडण्डी दाईं ओर की चट्टान से उतर कर सड़क को पार कर बाईं ओर खेतों में उतर गई थी लेकिन कहा नहीं जा सकता था कि दोनों ओर की बस्तियां कितनी-कितनी दूर हैं। दूर घाटी में पैठते अंधकार में धुआंसा उठता दिखाई दिया और कुछ झोपड़ियां होने का आभास होता था लेकिन धुँधलेपन के कारण दूरी का अनुमान करना कठिन था। पहाड़ों में जो चीज़ एक पहाड़ी से दूसरी पहाड़ी पर सामने पुकार की पहुँच में दिखाई देती है, पगडण्डियों की राह दो कोस दूर हो सकती है। उस

अनिश्चित स्थान की ओर जाने का विचार छोड़ धनसिंह ने चट्टान की ओर की पगडण्डी पर चढ़कर देखना ही उचित समझा।

धनसिंह चट्टान पर चढ़ गया और पगडण्डी पर चल दिया। पगडण्डी बांस की एक झाड़ी के पीछे घूम गई। आगे अधिक घनी झाड़ियां थीं। धनसिंह सोच रहा था कि और आगे बढ़े या नहीं। झाड़ियों की ओट से एक स्त्री सिर पर घड़ा रखे आती दिखाई दी। बांसों की छाया में धनसिंह ने देखा, स्त्री का चेहरा आंचल से ढँका हुआ था। इन पहाड़ों में स्त्रियां परिवार के परिचितों से या अधिक बड़ी स्थिति के लोगों के प्रति आदर प्रकट करने के लिये पर्दा करती हैं परन्तु इस अन्धेरे में धनसिंह घूँघट का प्रयोजन समझ नहीं पा रहा था। कुछ कदम समीप आने पर स्त्री के चेहरे से आंचल हट गया। दो कदम और समीप आने पर, उस धुंधले प्रकाश में भी, स्त्री के कपड़ों से धनसिंह ने पहचान लिया, यह तो वही मोटर के आगे गिरने वाली जवान लड़की थी। उसके सिर पर टिका घड़ा औंधा था।

"हम तो प्यास के मारे पानी मांगने चले थे, तुम्हारा तो घड़ा ही औंधा है" —परिचय के आधार पर धनसिंह बोला।

"किस्मत ही औंधी है, घड़ा क्या !"—उत्तर दे लड़की ने एक लम्बी सांस खींच ली।

आत्मीयता का यह व्यथा भरा उत्तर पा और उसके स्वर में आंसुओं की आर्द्रता अनुभव कर धनसिंह ने उसके चेहरे की ओर ध्यान से देखकर पूछा-"रो रही हो ?···बहुत चोट आ गई क्या ?"

धनसिंह की समवेदना ने लड़की के किसी तरह सम्भाले हुए दुःख के घड़े को ठेस लगा दी और वह ढुलक पड़ा। उसने आँचल से अपना चेहरा फिर ढँक लिया और चुप खड़ी रह गई। इस पर्दे में से भी धनसिंह ने उसके शरीर की थिरकन और सिसकियों को भांप लिया। मोटर ड्राइवर का रूखा व्यवहार सहानुभूति में बदल गया और उसका स्वर भीग गया—"भली लाग, मुझे क्या मालूम था कि तुम यों सामने आ जाओगी ?·······मैंने तो तुम्हारे लिये मोटर तोड़ कर रख दी !"

लड़की ने आंखें पोंछ आंचल चेहरे पर से हटा लिया। वह

रुलाई को वश में करने के लिये होठों को दांतों से दबाये थी। वश का बांध टूट जाने पर वह बोल उठी —"परदेसिया, तुझे ही मुझे से क्या वैर था? अच्छी भली चलती मोटर रोक दी…… झगड़ा मिट जाता रोज़ रोज़ का।" रुलाई का वेग बढ़ जाने से उसने अपना चेहरा फिर आंचल में छिपा लिया। लड़की के रोने का शब्द भिंचे हुये होठों और आँचल के नीचे दबा हुआ था परन्तु धनसिंह अनुभव कर रहा था कि लड़की फूट-फूट कर रो उठी है। आधा मिनिट भर वह लड़की उसी प्रकार मुँह ढंके रुलाई रोकने का यत्न करती हुई सिसकती रही। धनसिंह के मन से ड्राइवर की छेड़-खानी का भाव बिल्कुल जाता रहा। वह स्वयं विह्वलता और विकलता अनुभव करने लगा। उसका हृदय प्यास से सूखे हुये गले तक आ रहा था परन्तु उसे सूझ नहीं पड़ रहा था कि कहे क्या? उसने पूछ लिया—"पानी यहाँ कहां मिलेगा? बड़ी प्यास है!"

गले से मुँह तक उमड़ आये आँसुओं का बड़ा सा घूंट भर और आंचल से आँखें पोंछ लड़की ने उत्तर दिया—"पानी पियोगे, मैं पानी के लिये ही तो जा रही हूँ!"

वह पगडण्डी पर आगे बढ़ गई और धनसिंह उसके पीछे लौट आया। लड़की के पीछे चलते धनसिंह के हृदय में सहानु-भूति और कौतूहल उमड़ते चले आ रहे थे, परन्तु शब्दों का मार्ग न पा रहे थे। लड़की चट्टान से नीचे उतर मोटर के समीप सड़क पार कर नीचे के खेतों की ओर जाने लगी तो धनसिंह फिर बोला—"पानी यहीं दे दोगी या बावड़ी पर चला आऊँ?" लड़की ने पीछे की ओर घूमकर उत्तर दिया—"चाहे यहीं दे दूंगी, चाहे बावड़ी पर आ जाओ।…कौन लोग हो तुम?"

धनसिंह कांगड़े जिले का ही था। इस प्रश्न का अर्थ समझने में उसे दुविधा नहीं हुई। पहाड़ी बोली में उसने उत्तर दिया—"खरी जात है, भली लोग, राजपूत हूँ।"

"तो फिर क्या है, हम भी राजपूत ही हैं। बर्तन दे दो भरे लिये आऊंगी।" लड़की ने उत्तर दिया।

"नहीं, बर्तन ही तो नहीं है। चलो चलता हूँ, घड़े में ओट लगा कर डाल देना, अंजली से पी लूंगा।"

पाँच कदम की चौड़ाई का पहला खेत लांघ दूसरे में उतरते ही धनसिंह ने पूछ लिया—"भली लोग, इतना क्यों रो रही थी, ऐसा ही क्या दुःख है ?" लड़की ने उत्तर देने के लिए पीछे घूम कर नहीं देखा, परन्तु संध्या के सन्नाटे में उसके हृदय से निकले निःश्वास का शब्द धनसिंह को सुनाई दे गया। वह बोली—"दुखों का क्या है ? जो दुनिया में बोझ होते हैं उनका ऐसा ही हाल होता है। और क्या; मौत भी तो दुनिया में अच्छे भलों को ही चुनती है।"

अपने प्रश्न के उत्तर में यह पहेली सुन धनसिंह कुछ समझ नहीं सका। शरीर की उठान और चेहरे के कच्चेपन से वह लड़की कुँवारी ही जान पड़ती थी परन्तु इस ज़िले में इतनी उम्र की लड़की प्रायः कुंवारी दिखाई नहीं पड़ती। "मां बाप के ही घर में तो हो न !" धनसिंह ने स्थिति का-सूत्र पाने के लिये पूछा।

"मां बाप ने तो अपने टके सीधे कर लिये। उनकी बला जाने ! बछिया कसाई के हाथ पड़ी तो, और ब्राह्मण के हाथ पड़ी तो, अपने भाग से !" और फिर अधिक गहरा साँस लेकर उसने कहा—"माँ बाप के घर में सदा ही कौन बैठा रहता है ? पर इतना तो होता है कि सुख दुख में कोई चार दिन मायके भी हो आता है। पर यह लोग समझते हैं कि इन्होंने चार सौ रुपये में पशु खरीदा है। जीता है तो काम इनका और मर जाय तो चाम इनका। जब तक हाड़-गोड़ चलते हैं, कैसे छोड़ दें ? और मां बाप भी किस ज़ोर पर कुछ कह सकते हैं ? उन्होंने गठड़ी बांध कर टके नहीं लिये !"

लड़की कहती गई—"हम दो बहनें एक भाई थे। बाप मरा कहा तो करता था, बड़ी बेटी को लड़के के लिये बहू के बट्टे (बदले) में दूंगा और छोटी कन्यादान के पुण्य में ! पर बड़ी बहिन के पिछले जन्म के अपने अच्छे कर्म थे। वह शादी से पहले ही बीमार हो मर गई। मैं कमबख्त तब छोटी थी, बट्टे लायक थी ही नहीं। भाई के ब्याह के लिए बाप को खेत 'मियां' (अमीर राजपूतों) के यहाँ रेहन रख कर तीन सौ उधार लेना पड़ा। भाई का ब्याह कैसे न करता ? माँ हमारी बचपन में मर गई थी। घर का काम कौन करता ? तुम जानते हो बेटी का क्या भरोसा ? वह तो है

ही पराये घर के लिए। वह तो घर में लानी ही थी। और फिर उस कर्जे से खेत छुड़ाने के लिए, मुझे बेचता न तो करता क्या ?" आगे चलती लड़की विरक्ति के स्वर में कहती जा रही थी, जैसे अपने भाग्य के अतिरिक्त उसे और किसी के प्रति उलाहना न था। पीछे चलता धनसिंह सुनता जा रहा था।

वे लोग बावड़ी पर पहुंच गये। घड़ा जगत पर रख लड़की कहती गई—"ब्याह कर लाया था, बस छः महीने बाद ही भरती होकर लाम पर चला गया। नवें महीने चिट्ठी आ कर गिरी कि गोली लग कर मर गया। एक लड़का गोद में आई थी, दैव ने वह भी छीन ली! बड़ी छोटी जेठानियाँ पहली भी नहीं झेलती थीं। वे दोनों बट्टे में आई हैं। उन्हें कुछ कहें तो वहां अपनी लड़कियों पर न बीते ? मैं हूं खरीदी हुई; और अब रांड! हड्डियां काम में भी टूटती हैं और मार से भी। मर्दों से कहने की बात तो नहीं, पर सारे बदन पर नील पड़े हुये हैं। क्या कहूँ; यहाँ तो गाड़ी के नीचे आकर मरते मरते बची"....घुटने के ऊपर बलिस्त भर फट गई अपनी सुत्थन को समेट शरीर का दिखाई देता अंग छिपाते हुए वह बोली—"यह कपड़ा फट गया था। जरा टांके लगाने बैठी थी। अन्दर बाहर जाना होता है। मर्दों की नजर पड़ने से शरम लगती है। बड़ी ने इतनी जोर से कोख में लात मार गाली दी—'जनने वालों का कफन सीने बैठ गई; पानी तेरी माँ लायेगी ?'—तुम जानते हो, अब तक बकरियां चरा रही थी। बकरी चराने न जाऊँ तो मार खाऊँ। आस पास के छोकरे भी तो यहां राक्षस हैं। थन में मुँह लगा कर बकरी का दूध पी जाते हैं। चराने जाऊँ तो गाली देती हैं कि काम से टलने का बहाना कर यारों को मिलने जाती है। सब तरह मरन है!......हाय, तुम्हें पानी तो दिया ही नहीं ? बातों में भूल गई-! घड़ा धो कर देती हूं।" लड़की अपने मन में संचित दुख से बह जाने से मिलने वाली सान्त्वना में विलम्ब होने की बात को भूल गई थी।

धनसिंह बावड़ी की जगत पर झुका बैठा तन्मयता से उसकी बात सुन रहा था। अपनी प्यास वह स्वयं ही भूल सा गया था। "हां पीता हूँ पानी।" उसने हामी भरी। लड़की ने अपना आंसू भरा मुँह धोया, घड़ा धोया और जगत पर रख एक हाथ को

अंजली लगा धार बाँध दी। धनसिंह ने जगत से नीचे ऊकड़ूँ बैठ दोनों हाथों की अंजली से पानी पी लिया।

अँधेरा घना होने का समय आ गया था परन्तु घाटी कालिमा में न डूब कर कोहरे में से छनते दूधिया प्रकाश से भर गई। दक्षिण-पूर्व की ओर पहाड़ी पर पूर्णिमा की अगली रात का लगभग पूरा पर ठोकर खाया हुआ चन्द्रमा प्रकट हो गया। लड़की के धुल कर गोरे निकल आये मुख पर खंजन के जोड़े जैसे दो नेत्र चमक गये। उसने एक दीर्घ श्वास ले स्वगत कहा—"चल रे मना!" और भरे हुये घड़े की ओर बढ़ी।

धनसिंह ने पूछा—"यहां क्या राजपूतों की बस्ती है?"

"कुछ घर राजपूतों के हैं, ब्राह्मणों और घिरथों के भी हैं।" लड़की ने अपनी ओढ़नी की खूंट को गोलाई में लपेट कर गेंडुली बनाते हुए उत्तर दिया—"लेकिन बस क्या पूछते हो, कैसे लोग हैं?" धनसिंह ने विस्मय प्रकट किया—"क्यों, भले आदमी नहीं क्या?"

सिर हिला लड़की ने उत्तर दिया—"बदमाश, बड़े बेशरम! तमाशा ढूंढ़ते हैं। अपनी घर की औरत को राह-बाट में किसी से बात करते देख लें तो मूंड़ काट लें और दूसरों की से खेलना चाहते हैं। नम्बरदार का छोकरा है। अभी मसें भी नहीं फूटी हैं। मैं चीड़ के जंगल में ईंधन बीन रही थी। पास आकर सीटी बजाने लगा। मैं हंस दी कि लड़का है। कोई बात नहीं। वह तो आकर हाथ पकड़ने लगा, बोला—"अठन्नी ले लो! मैंने उल्टे हाथ का थप्पड़ दिया। दाँतों से खून आ गया। हाय, चलूं! बहुत देर हो गयी, जाकर देखूं आगे रोने को और क्या है? जरूर बिगड़ेंगी, क्या कर रही थी इतनी देर तक? हाय, मर गई। बड़ी तो आटा सानने के लिये पानी बिना बैठा होगी। कह दूंगी अंधेरा और सूना था, ज़रा नहा लिया!"—धनसिंह की ओर देखकर उसने कहा—"हां तो क्या करे कोई?"

वह घड़ा उठाने के लिये झुकी तो धनसिंह ने उठते हुए कहा—"लाओ न, सड़क तक पहुँचा दूं? तुझे चोट भी लगी होगी?" यह उठ ही रहा था लड़की ने मुस्कराहट से इनकार में सिर हिला

दिया और अभ्यास के चातुर्य से दोनों हाथों को घड़े के मुँह में डाल,हथेलियों की पीठ मिला, एक झकोरे से घड़े को घुटनों की ऊंचाई तक उठा लिया। पांव बावली की जगत पर रख घड़े को अपने घुटने पर टिकाया। दोनों हाथ घड़े के मुंह से फिसल गोलाई पर आ गये। दूसरे झकोरे में घड़ा अनायास ही उसके सिर पर पहुँच गया।

"तेरा नाम क्या है ?"—धनसिंह ने पूछ लिया।

चांदनी सीधी लड़की के मुख पर पड़ रही थी। उसका मुख मुस्करा उठा 'सोमा' उसने उत्तर दिया और चलते-चलते कहने लगी—"तुम बहुत भले लोग हो जी, दो बरस में कोई भी मुझसे ऐसे नहीं बोला ! तुम्हारा भला हो। तुम्हारे घर कहाँ हैं जी ?"

"हमीरपुर तहसील में, बड़सर के थाने के पास।"—धनसिंह ने संक्षिप्त उत्तर दिया।

पहाड़ी ढलवानों पर चीड़ के जंगलों में सांय-सांय करती हवा घाटी में बहने लगी थी। माघ के जाड़े की खुनक अनुभव कर लड़की के पीछे-पीछे चलते धनसिंह ने एक सिगरेट सुलगा ली और धुआं छोड़ते हुए बोला—"जाड़ा होगा, रात सड़क पर काटनी है।"

"जी"—सोमा ने उत्तर दिया—"हतभागों के साथ कोई भलाई करता है तो परमेश्वर भी नाराज हो जाता है। देखो न, इसीलिए तुम्हारी मोटर तोड़ दी ? और क्या ?"

"ऐसा क्यों कहती हो ?"—सिगरेट का धुआं भरा सांस छोड़ते हुये धनसिंह ने पिघले हुए स्वर में कहा। नित्य मार और लांछन के आतप से बिलबिलाती रहने वाली सोमा उस समय धनसिंह के आगे आगे चलती हुई सहानुभूति और सांत्वना का आश्रय अनुभव कर रही थी ! सड़क अभी तक समीप के टीले और उस पर खड़े पेड़ों की छाया में थी परन्तु धनसिंह और सोमा के कमर से ऊपर के भाग पर चाँदनी पड़ रही थी। सड़क पर रुकते हुए धनसिंह ने पूछा—"अच्छा, यहां पास पड़ोस में कहीं खाने को कुछ मिल जायगा ? आटे के दाम दे देंगे।"

इनकार से हाथ हिलाते हुये सोमा ने उत्तर दिया—"ना जी, यहाँ सड़क किनारे लोग तो राक्षस हो गए हैं। परदेसी भी ऐसे

ही आते हैं। जो देखते हैं, उठा ले जाते हैं। कहते हैं, पहले चोरी सुनी ही नहीं थी। अब तो खेत में लौकी, तुरई, कद्दू, बैंगन, दाड़ी (अनार) केला कुछ हो नहीं पाता। चोरों के हाथ लगने से पेड़ कंजिया गये हैं।"

सोमा एक हाथ से सिर पर टिके घड़े को सहारा दिये पगडंडी पर चढ़ने को मुड़ी। धनसिंह ने पूछा—"तुम्हारा घर दूर है ?"

"दूर क्या ?"—सोमा ने चट्टान पर उठे पेड़ों की ओर हाथ उठा कर उत्तर दिया—'यही तो है। टीले के ऊपर पेड़ों के पीछे। मोटर सुनाई देती रहती है। यह क्या भैंस रम्भाती सुनाई तो दे रही है ! जाकर मरी को दोहूँ। वो रानियाँ तो मेंहदी रचाये रहती हैं। मंझली के लड़के ने हग कर ढेर लगा दिया है। उसके कपड़े धोने को हैं। बूढ़ा ससुर खाँय-खाँय करता रहता है। छोटा जेठ पल्टन में है, बड़ा भागसू की कचहरी में नौकर है। ...चलूँ ! घूम कर उसने धनसिंह से पूछा—"ओढ़ने को कपड़े तो होंगे ? जाड़ा लगे तो आग जला लेना जी, चलूं !"

पगडंडी पर चढ़ती सोमा के पीछे से धनसिंह ने फिर पुकारा—"बड़ी चटक चाँदनी है। अब तू इधर क्या आयेगी ? सो जायगी ?"

पीछे लौट कर देखे बिना ही सोमा ने उत्तर दिया—"जा कहाँ ! अभी कहाँ मरने की फुरसत है !" —और चली गई।

धनसिंह सड़क पर अकेला रह गया। सिगरेट से कश खींचते हुए उसने कई बार लारी की परिक्रमा की। जाड़े में सड़क पर रात बिताने की खिन्नता उसके मन में न थी। पहाड़ों में ड्राइवरी करने वालों के लिये सड़क पर रात बिताने का अवसर बहुत बड़ी बात नहीं रहती। ऐसी परिस्थिति को वे सुअवसर बना लेने की चेष्टा भी करते हैं। ऐसे ही बिताये दो अवसरों की याद धनसिंह को आई, जब उस्ताद जमाल के साथ 'पालमपुर' के पास एक रात 'गद्दियों' की सुरा पीते और उनका नाच देखते बिताई थी और दूसरे अवसर पर गूजरों के पड़ाव से दूध लेकर खूब खीर खाई थी।

अभी हाल में घटी घटना उसकी कल्पना में बार-बार घूम जाती थी। मेमने को बचाने के लिये मोटर के आगे आ गिरी घबड़ाई हुई लड़की का स्तम्भित चेहरा और भय से फैली आँखें !

अंधेरे में उसका फूट-फूट कर रोना ! घुलकर चांदनी में चमकता उसका गोरा मुख ! लोच और लचक से उसका घड़ा उठा लेना ! उसकी सीधी और साफ बातें—"जी तुम बड़े भले लोग हो ! दो बरस से कोई मुझसे ऐसे नहीं बोला !"—सोमा के यह शब्द बार-बार उसे याद आ जाते और मन में एक मिसरी सी घोल जाते। साथ ही इस मिठास में इस विचार से कसैलापन सा आ जाता कि उसने सोमा से झूठ बोला था कि वह राजपूत है।

धनसिंह जब भी यह झूठ बोलता, एक खटक उसके मन में रहती। जन्म उसका राजपूत माँ-बाप से नहीं घिर्थ (कहार) घर में हुआ था। जन्म से उसका काम ब्राह्मण, राजपूत, खत्री, सूद और कायस्थ की सेवा करना था। उनके समान आसन पर बैठने और उनसे बराबरी के नाते बात करने का उसे अधिकार नहीं था। अपना नाम उसे धनसिंह नहीं धन्ना या धन्नू बताना चाहिये था लेकिन उसका मन अपनी क्षुद्रता को अपने शरीर में कहीं अनुभव न करता। अपनी क्षुद्रता उसे केवल दूसरों की भावना और विचार में और अपने माँ-बाप के निर्धन होने में अनुभव होती थी। यह झूठ वह एक विद्रोह में बोलता था, अपने ऊपर लादे गये क्षुद्रता के अपमान और दमन को अस्वीकार करने के लिये और ऊंची जात वालों की समानता और बराबरी में बैठ सकने के लिये ! इस समय भी उसके मन में वही अनुभूति और भावना थी कि इस लड़की की आँखों में वह नीचा क्यों जंचे ? उसका यह मानसिक विद्रोह, इस विद्रोह के कारणों और परिस्थितियों की स्मृति को, उसके बीते जीवन की याद दिला देता था:—

धनसिंह का बाप कभी लाहौर में और कभी अमृतसर में नौकरी करता था और कमा कर घर में रुपया भेजता रहता। पिता के रुपया भेजने पर डाकखाने से डाकिया रुपया लेकर आता। कभी-कभी पिता का पत्र भी आता। वह पत्र डाकिया ही पढ़ कर सुना जाता। उस समय डाकिये को दूध और चिलम पिला कर खातिर की जाती थी। मां उसकी बचपन में ही बीमारी से मर गई थी। उन बीते दिनों की बातें उसे माँ की लाड़ली ममता की धुंधली स्मृति और फिर ताई के कठोर व्यवहार से याद आती थीं। तीन चार छोटे-छोटे खेत थे जिन्हें उसका ताऊ जोता करता था।

उसके बाप के कहने से ताऊ उसे पढ़ने के लिये भेजने लगा था। ताऊ को यह अच्छा न लगता लेकिन धन्नू का बाप रुपये भेजता था इसलिये उसकी बात मानी जाती थी। स्कूल उनके घर से दो मील से भी अधिक दूर था। तीन बरस वह स्कूल जाता रहा। कभी वह दो महीने पढ़ने जाता और तीन महीने न जाता। फिर नये सिरे से पढ़ने लगता, ऐसे ही चलता रहा। उसका ताऊ और ताऊ के दो लड़के अपने खेत जोतते और पास पड़ोस के लोगों के खेत भी बटाई पर जोतते। मकान की दीवारें मिट्टी की और छप्पर फूस का था। उनके खेत मियाँ (कुलीन राजपूत) बजरसिंह के थे। पड़ोस में ही मियाँ का पत्थर का, स्लेट की छत से छाया मकान था। वे लोग मियाँ बजरसिंह के कर्जदार थे। धनसिंह बचपन में भी मियां के यहाँ से बुलावा आने पर कभी पानी भरने, कभी घास काटने, कभी लकड़ी ढाने या दूसरे कामों के लिये जाया करता था।

धनसिंह का बाप लाहौर में मर गया। रुपया आना बन्द हो गया। उसका बड़ा भाई (ताऊ का लड़का) 'गठेड़ा' गाँव के सूदों के यहाँ नौकर हो गया। कर्ज न दे सकने के कारण मियाँ बजर-सिंह ने उनके घर की कुर्की करा ली। कुरकी के लिए पटवारी और पुलिस के दो सिपाही आये थे। उसकी ताई के शरीर पर दो चार चाँदी के गहने थे। वे उसने बहुत रो रो कर दिये। घर में से पीतल के बर्तन, एक भैंस और सूत की धज्जी पुलिस के सिपाहियों ने उतरवा कर मियाँ के हवाले कर दी। इसके बाद उसका ताऊ मियाँ की जमीन से उठ कर नत्थे साह की जमीन पर बस गया और उसकी खच्चरें हाँकने की नौकरी करने लगा। उसकी ताई अपने दोनों लड़कों के घर छोड़ भाग जाने से दुखी रहती और धनसिंह को गाली देती रहती—"मरा जवान लकड़ हो गया है चौदह बरस का! काम का न काज का?....अपने पेट के जाये छोड़ गये। यह मरा गले पड़ा है!"

'मलड़ा' गाँव के बल्ले सूद ने धन्नू को अपने यहाँ नौकरी कर लेने को कहा। वह उसके यहाँ चला गया। बल्ले सूद के यहाँ उसने दो बरस से कुछ कम समय बिताया था परन्तु वह उसकी स्मृति में बहुत स्पष्ट था। लोगों का विश्वास था कि बल्ले के पास बहुत

रुपया है परन्तु वल्ले के व्यवहार और रंग-ढंग से अमीरी प्रकट नहीं होती थी। घृणा से लोग उसे कंजूस और सूद-कसाई कहते थे और आदर से 'मैला'साह' पुकारते थे, अर्थात् वह दिखावे की परवाह न कर काम काज में मैला-कुचैला बना रहता है। वल्ले के कपड़े उसके पुराने नौकर नजरसिंह से कहीं अधिक मैले और फटे रहते थे। नजरसिंह होशियारपुर और काँगड़ा से वल्ले की दूकान का सामान खच्चरों पर ढोने का काम करता था। नजरसिंह कढ़ी हुई और कांच के टुकड़े मढ़ी गोल टोपी, कान (कालर) लगा सफेद कमीज़ पहिरता था जिस पर लाल धागे की सिलाई चमकती रहती थी और चांदी के जंजीरदार बड़े-बड़े बटन सामने दिखाई देते। वह सदा काली गबरून का चूड़ीदार पायजामा पहनता था और उसके जूतों में कड़वा तेल भी लगा रहता। लोग उसे शहर का 'ज़ंटरमैन' पुकारते थे।

वल्ले साह की टोपी का रंग मैल और चिकनाई के कारण पहिचाना नहीं जा सकता था। यही हाल उसके कुरते का था। पायजामा पहने उसे किसी ने सख्त जाड़े में भी नहीं देखा। कमर में केवल पड़तनी (कमर तक का अंगाछा) रहती। पांव में जूता और सिर पर साफा वह केवल कचहरी या बरात में जाने के समय विवशता से पहनता था। उसकी दूकान में प्रायः सभी कुछ था; किसानों के हथियार बनाने के लिए लोहे से लेकर, नमक, कपड़ा, शीशा, कंघी, सौंफ और अजवायन, तक। उसका मुख्य व्यवसाय किसानों को रुपया सूद पर देना था। सूद में वह प्रायः ही उनकी फसल का अच्छा बड़ा अंश या घी सस्ते दामों खरीद लेता और खच्चरों पर लदवा, नादौन, होशियारपुर की मंडियों में भेज देता। मकान उसका दो मंजिला, पत्थर की भारी भारी दीवारों का, स्लेट की छत से छाया हुआ था। इस मकान में वल्ले एक बुभुक्षित और संत्रस्त बिल्ली के समान जान पड़ता था। उसकी रूपरेखा में समृद्धि का कोई चिन्ह न था। केवल उसके कानों में सोने की छोटी-छोटी परन्तु मोटी और ठोस मुर्कियाँ पड़ी हुई थीं जिन के बोझ के कारण कानों के छेद खिंच कर फटे जा रहे थे। इसलिए वल्ले ने सूत के डोरे डाल कर इन बालियों को कान के ऊपर

सम्भाल लिया था। उसके शरीर की त्वचा और हाथ-पांव कोमल थे। उन पर रुखाई और कठोरता नहीं थी।

बल्ले के मकान भीतर बड़ा सा आंगन था। उसकी स्त्री, लड़कियां और बहू गाँव की दूसरी स्त्रियों से अधिक कपड़े पहनतीं। उनके शरीर पर जेवर भी था। गांव की दूसरी स्त्रियां केवल चाँदी के ही गहने पहनती थीं। इस घर की स्त्रियों की नाक पर अठन्नी के बराबर चौड़ी सोने की लौंग और कान और गले में भी एकाध चीज़ सोने की थी लेकिन उनके कपड़े, सुत्थनें, कुर्ते और ओढ़नियाँ चिकनाई और चीड़ के धुएं से काले रहते। वे कुछ पर्दा भी करती थीं। यदि बावड़ी के अतिरिक्त कहीं और जाना होता तो सुत्थनों पर भारी लहंगे भी पहिन लेतीं और घूँघट काढ़ लेतीं। वे बावड़ी से पानी का घड़ा तो कभी-कभी ले आतीं परन्तु दूसरी स्त्रियों की भांति घास काटने न जातीं।

धन्नू को बल्ले ने दो रुपये माहवार और रोटी-कपड़े पर नौकर रखा था। वेश-भूषा में धन्नू अपने मालिक से अधिक भिन्न न था। बल्ले समय मिलने पर हल जोतने के सिवा दूसरे प्रायः सभी काम अपने हाथ से करता था। खाने में घर के लोग जब गेहूं की खमीरी रोटी और भात खाते, धनसिंह को मक्का की रोटी मिलती। घर के प्रायः सभी काम—औरतों के कपड़े धोने के अतिरिक्त, क्योंकि पहाड़ में ऐसा काम कोई मर्द कर ही नहीं सकता—धन्नू करता था। चौके का काम भी जब दाल-भात की रसोई बनती, उसे न छूने दिया जाता क्योंकि यह कच्ची रसोई समझी जाती थी और धन्नू की जात नीची थी।

बल्ले साह का बड़ा लड़का धनपतराय धर्मसाला के कालिज में पढ़ता था। जब वह छुट्टियों में घर पर आ कर रहता, नित्य हजामत करके सफेद-सफेद कपड़ा पहनता। उसने कानों से सोने की मुर्कियां भी उतार दी थीं। उस गांव और घर में वह ऐसा जान पड़ता था जैसे कोई सफेद बगला कहीं से उड़ कर तलैया की कीच में आ बैठा हो। धनपतराय कसरत करता था और जंगलों में सैर कर जंगली फूलों को देखता था। उसकी इन बातों पर गांव के लोगों को विस्मय होता कि विश्राम और सुख का अवसर छोड़ जान बूझकर शरीर को कष्ट देता है। सभी का विश्वास था कि

वह जल्दी ही डिप्टी बन जायगा। घर की स्त्रियां, मां-बहनें और उसकी बहू भी उससे डरती थीं। उसके घर रहने पर वे प्रायः चुप रहतीं।

धनपतराय के कालिज चले जाने पर घर में बल्ले और धन्नू के अतिरिक्त तीसरा मर्द था, बल्ले साह का छः बरस का छोटा लड़का गजपत। लड़कियाँ और बहू धन्नू से हंसती और मज़ाक भी करती रहतीं। धनपतराय की बहू धन्नू को नाम लेकर नहीं पुकारती थी क्योंकि वह उसके पति का भी नाम था। वह धन्नू को सदा 'ओ' और 'ए' की पुकार लगा कर या गाली देकर—'मरा, मर जाणा, खसमखाणा', कह कर ही पुकारती। यह परिहास धन्नू को भी अच्छा लगता। बहू और बल्ले की बड़ी लड़की कभी धन्नू को कुछ ऐसी बात कह देती या संकेत कर देती कि वह समझ न पाता तो वे आपस में एक दूसरी को ठेल-ठेल कर खूब हंसतीं। वे उससे अकसर पूछतीं—"तू ब्याह कब करेगा?···कैसी लाड़ी (बहू) लायगा?···लाड़ी से क्या कहेगा?···क्या करेगा?"

जाड़े की एक रात बहू ने चौके का काम समाप्त करते हुए उसे रोटी देने के लिये पुकारा। धन्नू को भी उसने "ले मरजाना" प्यार से गाली दे गेहूँ की बची हुई खमीरी रोटी दी। उस पर घी भी लगा हुआ था। बहू चूल्हे की आग के समीप बैठी खा रही थी और धन्नू नित्य के अभ्यास से चौके से कुछ दूर हटकर दीवार के सहारे उंकड़ूँ बैठा था।

बहू बोली—"मरे, जाड़ा नहीं लगता? ज़रा आग के पास हो जा।"

धन्नू समीप खिसक आया। बहू हंसी की बातें कर रही थी। कभी अपने मायके की बात कहती और कभी उसे बता रही थी कि तू ब्याह करेगा तो अपनी लाड़ी के लिये ऐसा-ऐसा ज़ेवर बनवाना। धन्नू खाना खाकर चौके के बर्तन मलने के लिये उठा। बहू उसके साथ बातें करती बर्तन मलवाने लगी। बहू दूध में जाग देने लगी तो बोली—"थोड़ा दूध पी ले! चौके में आ दूं!"

धन्नू कटोरे में दूध पी रहा था। उसी समय बल्ले साह ने उसे दो तीन पुकारें दीं—"कहां मर गया? चिलम में आग दे जा!"

वह उत्तर देना चाहता था कि बहू ने कहा—"चुप रह, यह मरा बूढ़ा तो दिन भर चिल्लाता ही रहता है और अपनी छोटी ननद लच्छो को पुकार बोल उठी—"कह दे, पानी नहीं था, घड़ा लेकर बावड़ी पर गया है।"

बहू ने पूछा—"सुन, तेरी बहू तुझ से नाराज़ हो जायगी तो क्या करेगा ? मारेगा कि प्यार करेगा ?"

"मारूँगा"—धन्नू ने घूँसा उठा कर कहा।

"मरा तू ! ऐसा नहीं करते !"—बहू ने मुस्करा कर समझाया —मर जायगी तो क्या करेगा ?"

"दूसरी ब्याह लूँगा !"

"धत्त !"—बहू ने आत्मीयता से डांटा—"ऐसा नहीं करते ! लाड़ी को प्यार से मना लेना।......तुझे प्यार करना आता भी है ?"

"नहीं"—धन्नू ने सिर हिला दिया ! वह शरीर में मधुर ऊष्णता और उत्तेजना अनुभव कर रहा था। दिये और चूल्हे की आँच के प्रकाश में बहू का चेहरा गुलाबी और आँखें अधमुंदी हो रही थीं, उसने कहा—"मैं तुझे बताऊं ?"

"हाँ"—धनसिंह ने मुख से कुछ न कह हामी भरी।

"यहाँ आ !"

बहू दीवार के समीप खड़ी थी। धनसिंह उसके समीप बढ़ गया। बहू ने उसके कंधों पर हाथ रख उसकी ओर मुख उठाया धन्नू के हाथों ने बहू को स्वयं समेट लिया। उसी समय रसोई के दरवाज़े से बल्ले के गले से गालियों की चीत्कार सुनाई दी और बल्ले का पीतल का हुक्का और फिर एक भारी चैला धन्नू के कंधे को छीलता हुआ पीछे दीवाल से जा लगा।

बहू रोती हुई चिल्ला उठी—"मर गया मुझे पकड़ रहा है। मैं रो रही थी......"

धन्नू बल्ले को दरवाज़े से ढकेल कर भागा। उसने पीछे से पकड़ो पकड़ो की आवाजें सुनीं परन्तु वह सिर पर पांव रख कर भागता गया। आठ मील दूर सुजानपुर में जाकर रुका और तीसरे दिन कांगड़े पहुँच गया। धन्नू ने कई महीने मोटर के अड्डे पर कुली

गिरी की। फिर तीन बरस क्लीनर रहा और फिर उस्ताद मज़हर खाँ की मेहरबानी से ड्राइवर बन गया।

धन्नू लड़कपन से ही स्त्रियों को धूर्त बिल्लियों की तरह समझता था, जो धीमे बोलती हैं, ओट में रहती हैं, चोरी करती हैं और मौका लगने पर नोच लेती हैं। इनसे चौकन्ने, सावधान रहना चाहिए। अनुभवी और बुजुर्ग लोगों से भी उसने यही सीखा-सुना था। ड्राइवर के जीवन में यदि उसे कभी स्त्री की संगति का अवसर मिला भी था तो उसने उसे सदा काँटों की झड़ी समझ कर सावधानी से काम लिया था। मर्दों की भांति स्त्रियों से भी वह उनके सामाजिक स्तर के अनुसार आदर और उपेक्षा का व्यवहार करता था परन्तु स्त्री मात्र के प्रति उसकी धारणा अविश्वास की थी लेकिन यह सोमा कितनी सीधी, कितनी दुखी थी? उसमें कपट नहीं था।

*   *   *

सड़क पर खूब चटक चाँदनी फैल गई थी। धनसिंह कुछ देर अपनी लारी की प्रदक्षिणा करता रहा। फ़िर सड़क की मुँडेर के एक बड़े पत्थर पर बैठ ठंडी सरसर करती हवा में सिकुड़ता सड़क पर रात बिताने की बात सोचने लगा। उसका मन जीवन की बीती बातों की ओर उड़ जाता था। पहले तो उसने ठंड की परवाह न की। जब सर्दी से रोमांच होने लगा तो सोचा गाड़ी के भीतर जा बैठे। भूख उसे मालूम हो रही थी। भूख के कारण जाड़ा भी अधिक मालूम हो रहा था। उस दोपहर वह और कमू दोनों ही कुछ नहीं खा सके थे। वह भूख को भुलाने की चेष्टा कर रहा था। उसने अपनी सीट के नीचे से कम्बल निकाला और ओढ़ कर अपनी सीट पर बैठ गया। मन बहलाने के लिए वह कमू से सुना गीत गुनगुनाने लगा। वह गीत किसी गोरी का विरह आलाप था:—"परदेसिया, तुमने ही मेरे मन के किवाड़ों की सांकल खोली। तुम्हीं से मेरा मन लगा। परदेसिया, आधी आयु मेरे नैनों ने तुम्हारे नैनों को देखने की प्रतीक्षा की। शेष आयु मेरे नैन तुम्हारे नैनों को देख पाने के लिये बरसते रहेंगे। ओ परदेसिया, सावन में जब आकाश पृथ्वी और जल के तारों से

बंधे होते हैं मैं तुम्हारी प्रतीक्षा में उघाड़े में खड़ी उस बरसात को खुशी से सिर पर झेलती हूं। मुझे दुख तब होता है जब सास टोकती है कि तू बाहर क्यों खड़ी है। परदेसिया, जब जाड़े की ऋतु में शीत के तारों से बिंध कर चीड़ के पेड़ भी सिर धुन-धुन कर सी-सी कर रोते है तब तुम्हारी प्रतीक्षा में मैं राह पर खुशी से खड़ी रहती हूं। मुझे शूल तब लगती है जब सास कहती है, अरी बाहर क्यों खड़ी है, कपड़े ओढ़ कर बैठ !"

धनसिंह की कल्पना में दिखाई देने लगा कि दुखिया भोली सोमा बरसात और सर्दी में प्रतीक्षा कर रही है और परदेसी वह स्वयं है। वह गीत उसके लिए वास्तविकता बन गया। उसके हृदय में गीत का भाव इतना गहरा चुभ गया कि वह और गुनगुना न सका, चुप हो गया। एक बार फिर संध्या की घटना और सोमा से सुनी बातें उसकी आंखों और कानों में सजीव होकर फिर गईं। दीर्घ श्वास लेकर वह सोचने लगा, अब सुबह वह पानी के लिए बावड़ी पर आयेगी तभी फिर मिलना होगा। उस ओर से ध्यान जरा उचटा तो भूख अधिक तीव्रता से अनुभव हुई। सोचा, क्यों न कुछ आलू भून कर खाये ? समय भी कटेगा और तापने को आग भी मिलेगी। वह फिर गाड़ी से बाहर निकला। चांदनी में उसने ईंधन के लिए इधर-उधर आँखें दौड़ाईं। चाँदनी की झलमलाहट में चकाचौंध तो थी परन्तु स्पष्टता न थी। सड़क किनारे की जिस टहनी या घास, फूस पर वह हाथ डालता, हरी और लचीली, ओस से तर मिलती। चलेरी (चीड़ के वन) में ईंधन मिल सकता था परन्तु वह दूर था। वहां तक जाय और पीछे से कोई आलू की बोरी उठा ले जाय तो···? यह प्रयास छोड़ वह फिर कम्बल ओढ़ लारी मे आ बैठा। मन में यह भी आशा होती कि कमू से खबर पाकर शायद बैजनाथ से इसी समय कोई लारी आ जाय !

भूख उपेक्षा से धीमी न पड़ी। भूख की ओर से ध्यान केवल उसी समय हटता जब वह सोमा की बात सोचने लगता। उसकी आंखें बारम्बार उस पगडण्डी की ओर उठ जातीं जिधर से सोमा चढ़ कर टीले की ओट में गई थी। सोचा, नींद तो नहीं आ रही। एक बार उसके घर तक हो आयें तो क्या है ? परदेसी ड्राइवर

के तौर पर सहायता मांगेगा। कुछ नहीं मिलेगा न सही: सोमा को तो देख आयेगा! सहसा ख्याल आया, यदि इसी समय बैजनाथ से लारी आ जाय तो सोमा से मिल भी नहीं पायेगा, उसे यह तो कहना था कि आया-जाया करूँगा तो मिला करे। सोमा को इतनी बात कह देना धनसिंह को अत्यन्त आवश्यक जान पड़ने लगा। उसे आशंका होने लगी, शायद बैजनाथ से लारी आना ही चाहती है। ऐसा अवसर आने पर सड़क के पड़ोस की बस्तियों में जा कर सहायता के लिये पुकारने में उसे कभी संकोच नहीं हुआ था परन्तु आज दूसरा प्रयोजन होने से उसे दुविधा हो रही थी।

धनसिंह मन की दुविधा को दबा पगडण्डी की ओर चल दिया। कुछ ही कदम चल कर वह उस जगह पहुँच गया जहाँ उसे सोमा पगडण्डी पर रोती हुई मिली थी। वह कुछ और आगे बढ़ा। बांसों के झुरमुट दिखाई दिये और फिर तीन छप्पर, आड़े तिर्छे, मिट्टी की दीवार। धनसिंह ने सोचा, न जाने कौन घर है उसका? याद आया, सोमा ने कहा था—'पहला ही छप्पर!'

कहीं कोई प्रकाश न दिखाई दे रहा था। उपलों और चीड़ की लकड़ी के धुयें की गन्ध वायु में भरी थी और उसके साथ ही मका की रोटी कोयलों पर सिकने की सोंधी गंध भी जान पड़ी। लोग अभी जाग रहे हैं, धनसिंह को सांत्वना हुई। पहले छप्पड़ का आँगन पत्थर की टेढ़ी-मेढ़ी सिलों से मढ़ा हुआ और घनी बाड़ से घिरा था। चारों ओर शहतूत और ओश के पेड़ थे। धनसिंह सहम-सहम कर कदम उठा रहा था। ख्याल आया—ऐसी अवस्था में कोई आदमी या कुत्ता उसे देखेगा तो चोर समझेगा। उसने खाँस कर आहट की।

आँगन के द्वार पर एक दुशाखी लकड़ी गाड़ कर बाँस की अर्गला फंसा दी गई थी। बाँस को खटखटा कर धनसिंह ने पुकारा "अरे घर वालो, जागते तो हो?"

"कौन है भाई?"—स्त्री के कण्ठ ने प्रश्न किया।

"परदेसी मुसाफिर हैं सड़क पर मोटर टूट गई है।"

"तो होगा भाई, यहां कोई हाट दुकान तो नहीं है..." स्त्री उत्तर दे रही थी कि एक बूढ़े का स्वर बोल उठा—"जाओ, भाई

जाओ ! यहाँ कोई सराय दुकान नहीं है। खूब जानते हैं ऐसे परदेसी मुसाफिरों को। चोरी बदमाशी छोड़ दूसरा काम नहीं। खेत में फल-फसल तरकारी न छोड़ें, घरों में औरतें न छोड़ें……" बूढ़े को खाँसी आ गई।

धनसिंह निराश हो मिट्टी से पुती दीवार में बने दो दरवाज़ों के अंधकार की ओर ही देख रहा था। उसी समय एक दरवाज़े में उजाला दिखाई दिया और दूसरे ही क्षण हाथ में एक जगनू (जलती हुई चीड़ की लकड़ी) थामे सोमा आती दिखाई दी। धनसिंह का हृदय उछल पड़ा। उसी छण पीछे से सुनाई दी ललकार से सोमा के कदम रुक गये। बहुत तीखे और ऊंचे स्वर में दूसरी स्त्री ने डांटा—"तू कहां जा रही है चुड़ैल चौका छोड़ कर ? पराये मर्द की गंध आई कि टुकड़े पर कुतिया की तरह लपक पड़ी।

इस ललकार से एक बच्चा नींद से चौंक कर चिल्ला कर रो पड़ा।

"देख रही थी कौन है ?"—सोमा ने उत्तर दिया।

"हाँ तू ही है न घर की सब से बड़ी पुरखिन ? बेशरम कहीं की ? हाय देखो तो, कितनी मुश्किल से सुलाया था। हल्ला करके जगा दिया। मुसीबत कर दी मेरी जान को। अपने पेट को तो डायन निगल गई। दूसरों के झेले नहीं जाते। दैव समझे इस चुड़ैल से।" सोमा ने एक बार घूम कर धनसिंह की ओर देखा और चुपचाप लौट गई। बूढ़ा खांसता हुआ कुछ कहता जा रहा था परन्तु उसे सुनने और समझने की चिंता धनसिंह ने न की। वह अपनी मूर्खता के लिये खिन्न लौट पड़ा, व्यर्थ में बेचारी को गालियां सुनवाईं।

धनसिंह कम्बल में शरीर लपेटे, घुटने समेट गाड़ी में अपनी सीट पर लेट गया। बाहर चांदनी में आकाश से कोहरा झड़ रहा था। चटकीली चकाचौंध दूधिया धुंधले में बदल गई थी। वह फिर वही बात सोचने लगा, वहाँ जाकर क्या मूर्खता की ?…… सुबह तो सोमा पानी लेने आती ही ! दूसरी ओर ध्यान जाता क्या मालूम, कमू बैजनाथ कभी का पहुंच चुका होगा। खा पीकर वे लोग लारी लेकर चले होंगे तो आया ही चाहते होंगे ! नौ मील

से अधिक तो अंतर नहीं। या और घण्टे भर में आ जायेंगे या सुबह ही आयें !...सवारियां होतीं तो ज़रूर इसी समय आते !... मण्डी की ओर जाते समय सोमा से मिलने के लिये यहाँ रुका करेगा ? बावड़ी तो यहाँ है ही, इंजन में पानी डालने के लिये रुक जाया करेगा परन्तु कितनी देर के लिये ?......बहुत होगा, दस मिनिट के लिये; ऊपर नीचे दोनों तरफ़ तो गेट का टाइम लगता है।......कितनी भली औरत है बेचारी ? कसाइयों के पंजे में फंसी हुई कैसे मुसीबत के दिन काट रही है ? उसका इन लोगों के यहाँ है क्या ? क्यों रहे इन लोगों के पास ? वह उसके लिये सब कुछ करने के लिये तैयार है। उसका भी अपना दुनिया में कौन है ? उसे बड़सर के टप्पे में अपना घर फिर याद आया जो उजड़ चुका था, जहाँ से पुलिस के सिपाहियों ने उसके घर के लोगों को निकाल दिया था लेकिन उसका ताऊ भी तो उसका नहीं था जैसे सोमा के सुसराल वाले ! पर मर्द का क्या है; उसके लिये दुनियां पड़ी है औरत तो ऐसा कर नहीं सकती। बेचारी मर्द के आसरे बिना रह नहीं सकती !......मैं क्या मर्द नहीं हूँ, मैं उसे आसरा दूंगा !

आकाश से गिरता कोहरा घना हो गया, सर्दी बढ़ गई। धन-सिंह की श्वास मोटर के कांच के पर्दे पर जम कर वह धुंधला हो गया। बाहर देखने से आँखों में भी जाड़ा लगता था और ठंडे श्वास से भीतर कलेजा तक सिहिर रहा था। धनसिंह ने मुंह पर भी कम्बल ढांप लिया और आंखें मूंद फिर वही बातें सोचने लगा। अपने मर्द होने और स्त्री को आसरा देने की बात से उसे अपने ब्याह का ख्याल आया। जब-जब परिचित लोगों को मालूम होता कि वह अभी तक कुआरा है तो उन्हें विस्मय होता, उस पर दया आती। उस जिले में किसी अच्छे भले आदमी का इतनी आयु तक कुआरा रह जाना साधारण बात न थी; या तो आदमी में कोई खोट हो या उसका दुर्भाग्य ! विवाह के लिए धनसिंह को विशेष उत्साह नहीं था परन्तु अविवाहित होने के तिरस्कार की कलख कभी-कभी मन में उठती ही थी। इस कलख को वह धनपतराय की बहू की बात याद कर मन से दूर कर देने की चेष्टा करता; जो मर्द घर में औरत के सिर पर नहीं रह सकता

उसकी औरत भलीमानस नहीं रह सकती। ड्राइवर खलील कहता है—'ज़र-जोरु-ज़मीन ज़ोर की, नहीं और की!' ड्राइवर को व्याह से क्या फ़ायदा ? ड्राइवर का घर क्या ?

धनसिंह का दृढ़ विश्वास था स्त्री को सती-साध्वी होना चाहिए परन्तु स्त्रियां बिल्लियों की तरह छिप कर दूध और गोश्त चुरा-चुरा कर खाती हैं और देखने में सीधी और चुप बनी रहती हैं। अमीरों की स्त्रियां अपने मजे के लिये और गरीबों की लालच से ! साथी ड्राइवरों से रोज़ ही वह ऐसे किस्से सुनता था और देखता भी रहता था।······मन चाहे तो क्या औरत मिल नहीं सकती ? फिर उससे नाता बांध कर अपनी बेइज्जती वह क्यों कराये ? अपनी बेइज्जती कराने से दूसरे की बेइज्जती करना अच्छा ! और सब से बड़ा भेद था—विवाह के लिए अपने घर-बार, कुल का पता देने की जरूरत। वह सब प्रकट करके फिर से ग्रिर्थ बनकर दूसरों की दृष्टि में गिरना नहीं चाहता था। सड़कों से दूर टेकरियों से छिपे अपने जन्म स्थान को छोड़ वह इस अपमान से भी छूट चुका था। उसे फिर क्यों अपनाये ?

परन्तु सोमा में दगा न था, कितनी सीधी और भोली ? दुनिया में उसका कोई अपना नहीं और न धनसिंह का ! न इस बात में फिर से ग्रिर्थ बनने का झंझट। कम से कम उससे प्यार रखने में ? ऊंघ आ जाने से धनसिंह के विचार तरल से होते जा रहे थे। नींद के कुहासे में सोमा की छवि तैरती हुई दिखाई दे रही थी, रोती हुई, आंचल आंखों पर रखे और वह अपने हाथ से उसके आंसू पोंछ रहा था। वह मुस्कराने लगी,····"जी, तुम बड़े भले लोक हो जी, ······जी,·······जी······ओ जी, सो गये क्या ? ओ जी परदेसिया !"—आधी नींद में धनसिंह निश्चय नहीं कर पा रहा था कि स्वप्न की कल्पना ही है या सचमुच की पुकार ! फिर सुना—"जी ! ओ जी, परदेसिया, देखो तो !"

धनसिंह ने कम्बल से मुंह उघाड़ दिया और घूम कर मोटर की खिड़की से देखा, सचमुच सोमा खड़ी थी। "जी, सो गये थे क्या ?"—आंचल के छोर में बंधी, सोंधी-सोंधी महकती हुई एक पोटली धनसिंह की ओर बढ़ाते हुए सोमा ने कहा—"जी, तुम यों ही आये और गालियां सुनीं। मैं तो कह ही गई थी कि यह

लोग बड़े राक्षस हैं। भला द्वारे आये परदेसी-पाहुने को भी कोई भूखा रखता है? मैं तो रोटी लेकर आती ही! तभी तो भैंस दोह कर उठी तो मैंने कटड़ी की रस्सी खूँटे से निकाल दी कि उसे ढूंढ़ने के लिये मुझे ज़रूर भेजेंगे ही।"

धनसिंह सोमा की ओर देखता रह गया और फिर उसने हाथ बढ़ाकर उसके कंधे पर रख दिया। सोमा इस स्पर्श से ऐसे सिमिट गई जैसे शीत से ठिठुरती पीठ पर पानी की धार पड़ गई हो! धनसिंह ने देखा, उसके कपड़े पाले से तर हो रहे थे। धनसिंह ने मोटर का दरवाज़ा खोल दिया और धीमे से कहा—"पाले में मत खड़ी हो, भीतर आ जाओ!"

"अब चलूं, मर गई उस कटड़ी को भी देखूं"—सिकुड़ते हुए सोमा ने उत्तर दिया।

"नहीं पल भर को आओ!" धनसिंह ने आग्रह किया।

"जी नहीं, अब जाने दो न?"—सोमा के कदम मोटर की ओर बढ़ने और पीछे हटने की दुविधा में लड़खड़ा रहे थे।

"मेरी कसम!"—धनसिंह ने आग्रह किया।

सोमा का हृदय गल गया—"हाय, कसम क्यों लेते हो जी, दैव तुम्हें रखे। तुम बड़े भले लोक हो जी" – वह बोली और धन सिंह की ली कसम से उसका सिर बचाने के लिये सोमा का हाथ उठ कर धनसिंह के सिर की ओर बढ़ गया। मानो वह अपनी खोई हुई सन्तान का स्पर्श खोज रही थी।

सोमा को मोटर में अपने बराबर बैठा कर धनसिंह आधा कम्बल ओढ़ाने लगा तो फिर घबराई। उसने सिमिट कर विरोध किया—"नहीं जी, मुझे शीत नहीं लगता।...तुम्हीं कपड़ा लो।"

धनसिंह माना नहीं। उसने अपनी बांह सोमा की पीठ पर रख दी। सोमा पाले से भीगे कपड़ों में सिमटी जा रही थी परन्तु उस पाले से अधिक तीखा उसे धनसिंह का सामीप्य लग रहा था। उसने समझाया—"जी नहीं, ऐसा नहीं करते!" परन्तु प्रयत्न करने पर भी धनसिंह से दूर न हट सकी।

"सोमा, एक बात मानोगी?" धनसिंह ने उसके कान के समीप मुख कर पूछा।

"क्या जी ?"

"मानोगी ?"

"तुम बड़े भले लोक हो जी, कहो न !"

"मेरे साथ चली चली चलोगी ?"

सोमा पहले चुप रह गई फिर पूछने पर रो पड़ी। धनसिंह का हृदय बैठ सा गया। सोमा के समीप झुक उसने व्याकुल स्वर में पूछा—"नाराज़ हो गई, क्यों ?"

आंचल से आंखें पोंछते हुए सोमा ने सिर हिला रुँधे हुए गले से उत्तर दिया—"जी तुम बड़े भले हो जी, मेरी जान बचाई तुमने। मैं कहां जाऊँगी ? मैं तो यहां ही मरूँगी। दैव मुझे जल्दी उठा ले !"—वह रुलाई के शब्द को दबा कर सिसकियां लेने लगी। धनसिंह अपनी पगड़ी के छोड़ से उसके आंसू पोंछ रहा था। सोमा के आंसू रुकते नहीं थे। वह उससे हटे रहने की बात भूल गई। सुसराल की कटुता और निर्दयता उसे शरण के लिये धनसिंह की छाया में धकेले दे रही थी।

"रो मत सोमा, मेरे सिर की कसम रोए। तेरे दुश्मन।... रोओ तो मुझे खाओ !"—धनसिंह ने उसका सिर अपने सीने पर दबा लिया। सोमा कसम के भय से गले में उठे क्रन्दन और आंसुओं के वेग को पी गई। उसका शरीर शिथिल हो धनसिंह की बाहों में आ गया। धनसिंह ने एक गहरा श्वास ले सोमा को अपनी रक्षा के आलिंगन में दबा लिया। सचेत होने पर सोमा विरोध में आलिंगन से छूटने के लिये सिहर उठी—"जी नहीं, ऐसे नहीं।" परन्तु विरोध न कर सकी।

कुछ देर वे दोनों ऐसी ही बैठे रहे। धनसिंह की बाहों से छूटते हुए सोमा ने कहा—"जी, अब चलूँ।" वह उठ खड़ी हुई। धनसिंह ने सहारा देकर उसे मोटर से उतारा और टीले पर जाती पगडंडी तक उसके साथ गया। सोमा ऊपर चढ़ गई तो धनसिंह ने दबे स्वर में पुकार कर पूछा—"सुबह तो पानी लेने बावड़ी पर आओगी न !" सिर झुका सोमा ने आश्वासन दिया।

लौटकर धनसिंह कम्बल में लिपट कर मोटर में बैठ गया। कुछ समय बाद ध्यान आने पर उसने धीरे-धीरे मक्का की रोटी

गुड़ से खाई और फिर कोहरे और धुँद से भरी चांदनी में बड़े-बड़े धब्बों की तरह दिखाई देते वृक्षों और पहाड़ियों की ओर दृष्टि दौड़ाता सोचता रहा। बैजनाथ से सहायता के लिये मोटर आने की चिन्ता उसे न रही। वह चाहता था मोटर अभी न आये तो अच्छा। उसे झपकी नहीं आई। बार-बार अतीत जीवन की सम्पूर्ण भूमिका में सन्ध्या की घटना उसके मस्तिष्क में दोहरा जाती और सम्पूर्ण जीवन की सार्थकता सोमा की सहायता करने और उसे प्यार करने में जान पड़ती। अनुभव हो रहा था कि सोमा ने उसी के लिये जन्म लिया था और उसी की प्रतीक्षा कर रही थी, भगवान की इच्छा अनजानी राहों से पूरी होती है।

सोमा ने उसी के लिये जन्म लिया···और पुरुष उसी स्त्री को प्यार करना चाहता है, उसी स्त्री के लिये अपना जीवन अर्पण कर देना चाहता है जो संसार में केवल उसी के लिये जन्मी हो! जो केवल उसे ही पहचाने! यही बात पुरुष की दृष्टि में स्त्री का प्रेम है। अतीत की स्मृति से धनपत की लाड़ी के प्रति; होशियारपुर में उस्ताद मज़हर की दोस्त रंडी गुलाबो के प्रति जितनी ही तीव्र घृणा उसके मन में उठती जा रही थी उसकी प्रतिक्रिया में वह सोमा के सीधे और भोलेपन को अपने जीवन का सर्वस्व समझता जा रहा था।

चांदनी में कोहरा और धुँद गहरा होकर बिल्कुल ठोस हो गया। कोहरे की उज्ज्वलता कम हो उसमें सफेदी आ गई। धनसिंह की आँखें निरन्तर खुली रहीं परन्तु वह उस परिवर्तन के प्रति बेखबर था। दूर से मोटर की गुर्राहट सुन उसने आगे पीछे सड़क पर देखा। मण्डी से आती सड़क पर दूर पहाड़ की बगलों में छिपते प्रकट होते आग के गोले से दिखाई दिये। यह सुबह चार बजे मण्डी से चलने वाली गाड़ी थी। धनसिंह के मस्तिष्क में विचार आया, कम्पनी ने बैजनाथ से मण्डी में फोन कर दिया हो तो यही लारी उसकी गाड़ी को अपने पीछे बांधकर ले जायेगी पर सोमा अभी नहीं आई।

उसके सोचते-सोचते मोटर का प्रकाश उसकी लारी पर आ पड़ा। मोटर समीप आकर रुकी। ड्राइवर ने बताया कि बैजनाथ से फोन तो आया है। अभी अँधेरा है और यह सवारी गाड़ी है, बोझ अधिक हो जायगा। घण्टे भर बाद माल की लारी या ट्रक

आकर उसे खींच ले जायगा। धनसिंह को सन्तोष हुआ और उतावली भी कि तब तक सोमा आ जायगी या नहीं। कोहरे में से चांदनी का पीलापन छंटकर सफेदी जम गई थी और उसमें ओस की बूंदे तैरती जान पड़ती थीं। धनसिंह की दृष्टि निरन्तर टीले से उतरती पगडण्डी की ओर लगी थी। मन में आशंका थी, शायद सोमा बहुत देर से आये। उसे जान पड़ता था, सबेरा बहुत जल्दी हो जा रहा है।

पौ फट रही थी। सोमा सिर पर औंधा खड़ा रखे पगडण्डी पर से उतरती दिखाई दी। धनसिंह मोटर से कूद गया। सोमा के समीप आने पर बोला—"आ गई!" और उसने सोमा की आंखों में देखा। अब सोमा की आंखें पानी मिले कच्चे दूध की भांति नीलगूं नहीं, गुलाबी और कुछ उभरी हुई थीं। रात भर की नींद और रोना उन में भरा था। वह धनसिंह की ओर देख चुप रही। कांच के बड़े-बड़े मनकों जैसे दो आंसू पलकों से लटक गये। वह रुकी नहीं सड़क पार कर बावड़ी की ओर बढ़ती गई। धनसिंह ने रोक कर पूछा—"चलेगी मेरे साथ।"

सोमा के आंसू बह गए—"जी मुझे तो यहीं मरना है। जी मैं राह देखा करूंगी। फिर भी आना। तुम बड़े भले लोक हो जी।" धनसिंह कुछ कह न सका। सोमा आंचल से आंसू पोंछती बावड़ी की ओर चली गई। धनसिंह ने भी उस ओर कदम बढ़ाया था कि फिर दूर मोटर का प्रकाश दिखाई दिया, एक के पीछे एक तीन मोटरें चली आ रही थीं। धनसिंह मोटर के पास ही रुक गया।

खाली लारी धनसिंह की मोटर के पास आकर रुकी। सरदार बसाखासिंह ड्राइवर ने पूछा, क्या हुआ ? कैसे हुआ और मोटर को गालियां देते हुए अपनी मोटर से लोहे की सांकल निकाल धनसिंह की लारी को अपनी मोटर के पीछे बांध लिया, धनसिंह को होशियार रहने के लिये कह, वह उसे खींचता हुआ ले चला। धनसिंह बार बार बावड़ी की ओर दृष्टि दौड़ा रहा था। पूर्व से उठते सूर्य की पहली किरणें घाटी पर छाई ओस की मसहरी को छेद रही थीं। सिर पर घड़ा लिए पगडण्डी पर लौटती सोमा की छाया भी उसे दिखाई दी परन्तु बसाखासिंह की मोटर उसे खींचे लिए जा रही थी......।

२

ससुराल के स्नेह

यों सोमा का जीवन वैसे ही चल रहा था जैसे कि अब तक चला आया था परन्तु उसकी अनुभूति में परिवर्तन था। अब पशु की भाँति जो आता उसे विचारे बिना सहते जाने का भाव न रहा। कोई उसके दुख की चिन्ता करता है यह विचार उसके दुख की अनुभूति को और गहरा बनाने लगा। अब उस दुख के प्रति मन में विरोध भी उठने लगा। जैसे आदमी पीठ के पीछे सहायक के होने पर आगे से पाये धक्के का सामना करने का साहस अनुभव करता है। सोमा से धनसिंह ने चली चलने के लिए आग्रह किया था। वह आग्रह उसने स्वीकार नहीं किया। वह ऐसा करने के लिए तैयार नहीं थी क्योंकि यह बात ठीक न थी परन्तु धनसिंह की बात उसके लिये कितना बड़ा सहारा बन गयी थी, यह उस के दुख में सहायक होने की इच्छा थी।

सोमा का घर सड़क के समीप ही था। जब कभी वह दूर से मोटर की गुर्राहट सुनती, सड़क पर आ ड्राइवर को पहचानने का यत्न करती। परन्तु वह 'भला लोक' न दिखाई देता। दिखाई देते थे, लुच्चे ड्राइवर! जैसे कि ड्राइवर प्रायः होते हैं; जो उसकी कातर आतुरता देख आंखों से, होंठों से कुचेष्टा का इशारा कर देते, मुंह से सीटी बजा देते या मुस्करा देते। सोमा कभी पल भर बैठ पाती तो सोचने लगती—क्या बुरा मान गया मेरे इनकार का? आया नहीं?

सास ने सोमा को एक डलिया मका पछोर कर पनचक्की से आटा पिसा लाने के लिये कहा था। पहाड़ों में बरसातें अधिक

होने के कारण छतें ढलवां होती हैं। ढलवां छत के नीचे प्रायः एक ओर धन्नी डाल चीड़ के तख्ते बिछा दिये जाते हैं। इस जगह घर का अनाज और दूसरा सामान रखा रहता है। सोमा वही तख्तों पर बैठी छाज से मक्का पछोर रही थी। सास अपने वृद्ध शरीर को जरा विश्राम देने के लिये नीचे चटाई पर लेट गई थी। छाज पर मक्का के दानों की खड़खड़ाहट और छाज की फटकार की फटाफट नियमित ताल से चल रही थी। इस संगीत से सास को नींद आ गई। ससुर किसी काम से बाहर गया था। सास की आँख लगी देख बड़ी और मंझली दोनों बहुएं पल भर पड़ोस में बैठ आने के लिये निकल गईं। बड़ी बहू जाते-जाते अपनी कांथर और सूई-डोरा भी सोमा के सामने रख गई कि मक्का पछोर कर उसमें चार डोरे डाल दे।

पनचक्की पर से लौटने में देर होगी और 'बड़ी' बिगड़ेगी इस विचार से सोमा मक्का पछोर कांथर में टांके लगाने लगी। इसी बहाने कुछ देर बैठ भी ले। फिर तो सिर पर पाँच पसेरी की डलिया उठा कर घाटी में सवा मील चढ़ाई-उतराई पर जाना आना है ही। ऐसे निराले में बैठ पाने के अवसर में अब सब से बड़ा संतोष था कि वह परदेसी ड्राइवर की बात सोचती रहती। एक एक करके आठ दिन बीत गये पर फिर वह नहीं आया।

ससुर के खांसने की आवाज से सोमा ने समझा कि बूढ़ा आ गया है। बुढ़िया को लेटी देख और घर सूना पा बूढ़ा बड़-बड़ाने लगा—"जाने सब को क्या मौत पड़ जाती है। इतना भी नहीं कि किवाड़ ही उड़का दें, कुत्ता बिल्ली तो न घुसे। सोमा तख्तों की फांकों से आहट पाती रही। बूढ़े ने चूल्हे में से उपले की आग ले चिलम भरी और गुड़गुड़ी ले आंगन में मकान की दीवार के साथ बने मिट्टी के चौंतरे पर बैठ तम्बाकू पीने लगा।

"केहर मियाँ राम राम!"—आँगन से आवाज़ आई और सोमा के ससुर की आवाज़ उत्तर देती सुनाई दी—"पांय छुए, साह जी, आओ बैठो!...अरे कोई है कि सब मर गये! मन्नू साह को बैठने के लिये मोढ़ा दो न!"

मन्नू साह सोमा के ससुर से दो चार बरस छोटा होगा।

वह उससे पर्दा करती थी। ससुर की पुकार सुन सिर का आंचल खींच वह उठने को हो रही थी कि नीचे से सास की पुकार सुनाई दी। मन्नू साह का नाम सुन वह जाग उठी थी और पाहुने को भीतर ही पुकार रही थी। बुढ़िया की पुकार से साह ने भीतर आकर कहा—"मियांणी राम राम !" और कुशल मंगल पूछने लगा। ससुर भी गुडगुड़ी लिये भीतर चला आया। केहर ने साह की जात का ख्याल कर, गुड़गुड़ी में से बाँस की नाली निकाल, गुड़गुड़ी साह की ओर बढ़ा कर कहा—"लो साह जी पियो, बड़ा अच्छा आ रहा है। घर के खेत का तम्बाकू है।

मन्नू खत्री जगह-जगह का घी अनाज बटोर कर रोजगार करता था और लेन दे भी चलाता था। केहरसिंह के घर से भी घी ले जाता। केहर ने भी उससे तीन सौ रुपये सूद पर ले रखे थे। मन्नू प्रायः ही आकर सूद में घी ले जाता। बड़ी और मंझली दोनों ही बहुएं मन्नू से जलती थीं और पीठ पीछे गाली देती रहतीं। उसके मारे उनके बच्चे दूध नाम मात्र को ही पाते थे। सब का सब जमा कर घी बनाने में निकल जाता। घर के लोगों को मिलती थी केवल छाछ। मन्नू घी ले जाते समय ऐसी मीठी बातें कर जाता कि वह केहर की ही सेवा कर रहा हो, अपने लाभ के लिए कुछ नहीं ?

बुढ़िया को मोढ़ा ढूंढ़ते देख मन्नू ने इस तकल्लुफ पर बहुत आपत्ति की और सरलता से घर की लिपी हुई जमीन पर बैठते हुये बोला—"अरे तुम क्यों झमेला कर रही हो मालकिन ? बहुएं कहाँ हैं ? बच्चे तो ठीक हैं ? छोटी कहाँ है ?"

"मरी यह चुड़ैलें"—बुढ़िया ने दोनों हाथ पसार उत्तर दिया—"मुझे तो पल भर आराम नहीं मिलता। छोटी को तो मैंने कहा था कि मूठ भर मक्का पिसा लाना। शाम के लिए आटे की चुटकी भी नहीं है। देख लो चंगेर में ! जरा आंख लगी थी कि दूसरी दोनों पड़ोस में निकल गईं और अब दिया बले से पहले थोड़े लौटेंगी।"

"साह जी, भाई क्या करें; देखते हो न, कैसे समय आ गये हैं ?"—साह जी के आने का अभिप्राय अनुमान कर केहर ने क्षमा सी मांगी। "अब की तो ब्याज के लिये रुकना पड़ेगा।" मन्नू ने गुड़गुड़ी केहर को लौटाते हुए बुढ़िया को उत्तर दिया—"देखो न बझियाणी (मालकिन) भाभी, मियाँ की बातें !···ब्याज का नाम

भी किस हरामखोर ने लिया है ? मैं तो ऐसे ही चला आया कि मियां से मिला नहीं। देख आऊँ बच्चों का क्या हाल है ?....अपने ही कलेजे के टुकड़े हैं ! तुम जानती हो; क्यों भाभी ?"

"साह जी तुम्हारा ही आसरा है"—बुढ़िया ने उत्तर दिया—"काश्तकार की गर्दन सदा ही साह के हाथ में है। हमारे लिए तो साह जी तुम्हीं परमेश्वर हो।"

"कुछ घी तो इधर बचा न होगा"—मन्नू ने पूछा—"लगनों के दिन हैं न, आना दो पैसे तेज़ ही जा रहा है। मैं तो मियां के यहाँ से सदा तेज़ी में ही लेता हूँ कि तुम्हें दो पैसे बन जाँय। तुम जानती हो मालकिन, घुटने तो पेट की तरफ ही मुड़ते हैं क्यों ?"

"कहाँ बच पाता है साहजी ?"—बेबसी में हाथ फैला कर बुढ़िया बोली—"दैव तुम्हारा भला करे, बच्चों वाला घर है। कभी दो ढाई सेर हो गया तो हो गया"और इधर भरी भैंस भी सूख रही है। कुछ निकलता ही नहीं।"

गुड़गुड़ी से दूसरी बार दम दे गुड़गुड़ी केहर को लौटा कर मन्नू ने कहा—"बड़ी असली तम्बाकू है मियां, बस तुम पियो !" और रहस्य के स्वर में बोला—"मुरली की बात सुनी ?"

"हाँ; छोकरी ब्याह दी है न ? पपरोला में दी है। सुना है, लड़का बड़ी पक्की उम्र का है, तिहाजू (तीसरा ब्याह) है।"—केहर ने धुयें से खाँसते हुये और गुड़गुड़ी फिर साह की ओर बढ़ाते उत्तर दिया।

"हाय, लड़की भी तो स्यानी है। उसकी समरेड़ों के (समव्यस्काओं के) दो-दो हो चुके।"— बुढ़िया होंठो पर हाथ रख कर बोली।

मन्नू ने गुड़गुड़ी घुटने पर टिका ली। रहस्य की बात कहने के लिये केहर की ओर सरक गया। हलका सा दम खींचते हुये बुढ़िया को सम्बोधन किया—"हाँ तो क्या है मालकिन, तुम जानती हो, मुरली ने छः सौ गिन के लिये हैं। लड़की तो है ही पराये घर की धरोहर। तीन सौ तो मेरे ही देने थे। पर है भला आदमी ! खुद ही आकर बोला—"लेलो साहजी, इसी जनम में लेलो ! तुम्हारा देना है। अगले जनम में एक के दो-दो देने होते हैं ! तुम जानती हो मालकिन, मेरा तो चार पैसे का लेन-देन ऐसे ही भले आदमियों से चलता है।"

बुढ़िया ने माथा ठोंक कर कहा—"अरे तो भला हो साहजी तुम्हारा, हमने भी तो इस कुलच्छनी के चार सौ गिन कर दिये थे। तीन सौ तो तुम से ही लिये थे। अभी तक सूद भर रहे हैं पेट काट-काट कर! मेरे शेर जैसे लड़के को भी खा गई!"—बुढ़िया ने दुख की स्मृति में अपनी सूखी आंखें आंचल से पोंछ लीं। बुढ़िया अपने युवा पुत्र के लिए बहुत रोई थी। उसका विश्वास था कि वह प्रसंग आते ही फिर आंखों में आँसू आ ही गए होंगे-"हुई भी तो क्या लड़की। वह भी छः महीने में ही मर गई, मुसीबत दे कर। हमारे तो भाग ही खोटे हैं साह जी।"

ऊपर तख्तों पर बैठी सोमा दम रोके सुन रही थी। साह गुड़-गुड़ी से होंठ लगाये विचारपूर्ण स्वर में बोला—"लड़की पराये घर की अमानत है ही, लेना देना भी दुनियाँ का है ही। पर भाई विधवा बहू तो जिन्दगी का जंजाल है।" मन्नू ने आवाज़ धीमी कर और केहर की ओर झुक कर कहा—"आस पास गाँवों में सौ तरह के लोग हैं मियां, सब भले ही थोड़े हैं! कहीं जवान विधवा को कुछ हो जाय तो नाक और कटे! जनम बिगड़े! नहीं तो गले में चक्की का पाट तो बंधा ही है। तुम जानती हो मालकिन, क्या बुरा कहा मन्नू ने?"

"क्या बुरा कहा तुमने साह, होता नहीं है क्या दुनियाँ में"—बुढ़िया ने स्वीकार किया—"सच पूछो तो मेरा तो कलेजा कांपता रहता है। है भी तो संडी की संडी। मैं तो कहती हूँ, मायके ही जा मरे। यहां अपनों का ही पेट नहीं भरता!"

"तो एक बात कहूं?"—मन्नू ने बहुत धीमे से सुझाया। ऊपर बैठी सोमा का कलेजा धक-धक कर रहा था। सुन पाने के लिए सांस रोक कर उसने कान तख्तों की सांध पर रख दिया। साह ने कहा—"गले का बोझ भी कटे और कुछ कर्ज भी हलका हो!"

"हूं?"—गुड़गुड़ी से होंठ हटा केहर ने मन्नू की ओर देखा और बुढ़िया भी दोनों हाथों में ठुड्डी थामे मन्नू की ओर देखने लगी। मन्नू ने बताया—"मण्डी में एक पंजाबी ठहरा हुआ है। ढाई तीन सौ तो मामूली बात है।"

दो क्षण तीनों चुप रह गये। इस मौन को बुढ़िया ने तोड़ा—

"हाय तुम्हारा भला हो साह जी, हमने-तो चार सौ भरा हुआ है"—होठों पर हाथ रख उसने लम्बी सांस ली।

"सुनो तो बझियाणी की बातें"—बुढ़िया की सरलता पर हंस कर मन्नू बोला—"कहाँ कुआरी लड़की, कहाँ विधवा ? मैं तो कहूंगा हूं, बिखरा हुआ घी है, जितना बटुर जाय !" केहर हल्के-हल्के दम खींचता सोचता रहा। मन्नू ने कहा—"कहो तो बात मैं तय करा दूँगा। मुझे उसमें क्या है ? तुम्हारा जितना भला हो जाय। गांव में कह देना, मायके भेज दिया है।"—कुछ देर सिर झुकाये सोच केहर ने घर वाली की ओर देख पूछा—"पर उसे मण्डी कैसे ले जायं ?"

"मियां की बातें !"—मन्नू हंस दिया—"कहना, तेरे मायके से बुलावा आया है। लौट कर गाँव में भी यही कह देना। अरे, विधवा का क्या है ? जैसी ससुराल में वैसी मायके में !"

सोमा के लिए सुनते रहना असह्य हो रहा था। सिर में चक्कर आ कर आँखों के आगे अँधेरा छाने लगा। मन्नू जाने के लिए अपनी चादर सम्हाल उठ गया। केहर उनसे बात करता हुआ आँगन से बाहर जा रहा था। पीछे से बुढ़िया ने पुकारा कहाँ जा रहे हो ! मैं ज़रा पड़ोस में जा कर बहुओं को पुकारती ! ऐसी चुड़ैलें हैं जब देखो तब ब्राह्मणों के छप्पर में जा बैठतीं हैं।"

"यहीं जरा सड़क तक साह को छोड़ आऊं"—उत्तर दे केहर चला गया। सास ने किवाड़ उड़का दिए कि कुत्ता न भीतर घुस आये और बड़बड़ाती हुई बहुओं को पुकारने चल दी। सोमा के प्राण बचे। यदि सास जान जाती कि सोमा ने उन की बातें सुन ली हैं तो सौ बहाने से उसे गालियाँ देती, मारती, पीटती। वह तुरन्त छाजन से उतरी और मक्का की डालियाँ सिर पर रख जल्दी-जल्दी आँगन से निकल पगडण्डी से घराट (पनचक्की) की ओर तर गई। उसके कानों में मन्नू साह, ससुर और सास की बातें गूँज रही थीं।

सोमा का कलेजा धड़क रहा था और आँखों में बार-बार मोटे मोटे आँसू छलक आने से संकरी, पथरीली राह में ठोकर लग जाती थी, हाय बैरी मुझे बेंच देंगे ? जाने किसके हाथ बेच देंगे ?

मुसलमान के हाथ, किसी कमीन (नीच जाति) के हाथ ! जो खरीद कर ले जायगा जाने क्या-क्या करेगा ? इससे तो गले में फन्दा लगा कर मर जाती तो भला था । अरे, परदेसी ड्राइवर के साथ ही चली जाती ? वह फिर आया भी तो नहीं ? वह भी क्या बुरा मान गया ? मुझे तो परमेश्वर की मार है ! हाय, कहां मर जाऊं ? इन्हीं विचारों में वह पनचक्की पर पहुँच गई ।

समीप ही पूरब की ओर की टेकरी पर से 'मुर्की' गांव का लड़का बदल भी पिसान लेकर आया हुआ था । सोमा की दृष्टि उसकी ओर नहीं गई । बदल उसकी ओर घूर-घूर कर मुस्कराता रहा । फिर सामने आकर बोला—"ओहो, मियाणी रो रही है ? क्या डलिया बहुत भारी है ?"—समीप बैठी दूसरे गांव की बुढ़िया ब्राह्मणी मथरी ने सहानुभूति से कहा—"गरीब विधवा को तो रोना ही रोना है !···परेशान करें !····खाने को न दें !"—उसके साथ की दूसरी स्त्री ने अपने दुःख से आँख पर आंचल रख कर कहा—"अब क्या है; पहले विधवा गांव में एकाध होती थी । अब इस लाम (लड़ाई) से तो ज़िला ही विधवाओं से भर गया । पहले लाम के बाद आर्य (आर्य समाजी) विधवा ब्याह कराने लगे थे ; अब देखें क्या होता है ? मेरे दोनों लड़के दो रांडें छोड़ कर चले गये ।"—वह ऊंचे स्वर से रोने लगी थी परन्तु पिसान की अपनी बारी आ गई देख सोमा के पास से उठ चक्की की ओर बढ़ गई ।

बदल ने सोमा के और समीप आकर कहा—"मियांणी को रोटी की कमी है ? इसे घी शक्कर की चूरी में डुबा दें ! यह तो बात ही नहीं करती !" सोमा कुछ उत्तर न दे बुढ़िया के समीप सरक, मुंह आँचल में छिपा बैठ गई । बुढ़िया को क्रोध आ गया । एक बड़ा सा पत्थर उठा उसने बदल पर फेंक दिया और गाली दी··· अभी नाड़ी सूख कर गिरी नहीं, हरामज़ादा चला है छिनरा करने और ऊंचे स्वर में उसने सबको सुना कर कहा—"बुरा हो इस लाम का ! सरकार ने गांव-गांव से मर्द चुन लिये । अब बदमाशों को भी किसी का डर नहीं रहा जो इनके दाँत तोड़ें !"

पनचक्की से लौटते समय भी सोमा अपने भाग्य को कोसती आ रही थी, मुसीबत से बचाने के लिये भगवान ने एक भला आदमी भेजा था, उसकी बात मैंने न सुनी । दिन बुरे आते हैं तो

ऐसा ही होता है। घर लौटने पर सास ने उसकी ओर देखा तो पूछा—"तुझे क्या हुआ है ! रो कैसे रही है ?"

सोम ने टाल दिया—"ऐसे ही सुबह से सिर दर्द कर रहा है!"

बड़ी बहू बोल उठी। "हां, हड्डियों में मक्कारी घुस जाती है तो ऐसे ही बहाने सूझते हैं। सेर भर पिसान क्या पिसा लाई, बस !"

दूसरे दिन दोपहर के समय ससुर के सामने होने के कारण सोमा मुंह के आगे घूंघट खींचे आंगन के कोने में बैठी बर्तन मल रही थी। केहर मकान की दीवार से पीठ लगाये जगत पर बैठा हुक्का गुड़गुड़ा रहा था। घर के भीतर किसी काम में उलझी बुढ़िया को सम्बोधन कर उसने पुकारा—"ओ घरवाली; फिर क्या कहना है, उस बात का ?"

"किस बात का ?"—भीतर से सास ने पूछा ?

"किस बात का ?....अरे क्या सो रही है ? कल दोपहर को मन्नू साह कमेठा से संदेसा दे गया था कि नहीं।"—केहरसिंह ने खीझ से घरवाली को याद दिलाते हुए कहा। सोमा के कान खड़े हुये ! कमेठा में उसका मायका था और फिर साथ ही मन्नू साह का नाम ? भीतर से सास ने उत्तर दिया—"उसमें क्या सोचना है ? भले आदमियों ने लड़की को बुलाया है तो कैसे इनकार करोगे ? जग (पूजा) कर रहा है उसका बाप ! जग कोई रोज़-रोज़ थोड़े ही होता है ! जग में बेटे बेटियों को बुलाया ही जाता है। कैसे इनकार करोगे ?"

मंझली ने बड़ी को सुना कर आपत्ति की—"बड़े आये जग करने वाले ! बेटियाँ बेच कर जग करते हैं, बड़े धर्मात्मा हैं ! हमें तो मायके का आंगन देखे दो बरस हो गये, वही बड़ी सुलच्छनी है न !"

बड़ी ने आशंका में झमक कर कहा—"दिन भर पानी भरना और खेतों में मैल ढोना मेरे बस का तो है नहीं !"

"जब देखो बड़बड़ाया करती हैं। घर का काम है तो क्या छोटी ने ही ठेका लिया हुआ है। उसमें क्या जी-जान नहीं है ? कि उसका मायका नहीं है ? कोई बुलायगा तो कैसे नहीं जायगी ?"—ससुर ने डांटा। बूढ़े के समर्थन में सास भी बोल उठी। सास बहुओं में

जोर की कलह उठ खड़ी हुई। सोमा घूंघट में कांपती हुई वर्तन मलती रही। आज पहली दफे उसके हृदय से अपनी दोनों जेठानियों के लिये आशीर्वाद की पुकार निकल रही थी—"तुम्हारा भला हो मेरी बहनों, तुम्हारा सुहाग अचल रहे! तुम्हारे बच्चे जियें! मुझे न जाने दो! मुझे बचाओ! यहीं मरने दो! मैं तुम्हारी सब गुलामी करूंगी।"

जब सास बहुओं का झगड़ा बहुत बढ़ गया और गाली-गलौच तक नौबत पहुँची तो सास ने एक लकड़ी उठा कर मंझली बहू की पीठ पर दे मारी। मंझली चिल्ला-चिल्ला कर रोने और सास को कोसने लगी। बड़ी मकान के भीतर खिसक गई। इस प्रकार झगड़े का फैसला कर सास ने अपना निर्णय ससुर को सुना दिया—"इन कलमुहियों का क्या है? बकने दो इनको! छोटी क्या इनके मायके से आई इनकी बान्दी है? जी, तुम दो चार दिन में उसे पहुंचा देना।"

सोमा का हृदय चिल्ला रहा था: मैं नहीं जाऊंगी, मैं नहीं जाऊंगी, मेरे बाप ने मुझे बेच दिया। अब तुम बेचना चाहते हो! मुझे खाने को न दो। मैं ऐसे मर जाऊँ सो अच्छा है परन्तु मैं बिकूँगी नहीं! यह धोखा है। मैं नहीं जाऊँगी। परन्तु ससुर के सामने क्या बोलती? वह भीतर जा चौका लीपने लगी। उसका दिल धबरा रहा था और कलेजा उठ-उठ मुँह को आ रहा था। बड़ी कठिनाई से वह रुलाई रोके हुए थी।

तीसरे पर वह भैंस और कटड़ी को हांक पानी पिलाने बावड़ी की ओर चल दी। भगवान शायद आज ही उस भले परदेसी को भेज दें। बहुत देर तक उसने सड़क के किनारे के खेतों में मोटरों के गुजरने की प्रतीक्षा की। पहले बैजनाथ की ओर की मोटरें आईं और फिर मण्डी की ओर जाने वाली। सोमा ने गर्दन उठा-उठा कर, आंखों पर हाथ रख-रख कर सब ड्राइवरों को पहचानने का यत्न किया। उसके इस ढंग से ड्राइवर मुस्कराते, बोलियां बोलते, सीटियां देते और आँख के इशारे करते और मोटरों की तेज चाल से सोमा की आंखों में धूल झोंकते निकल गये परन्तु वह 'भला लोक ड्राइवर' नहीं दिखाई दिया।

सोमा अत्यन्त आतुर हो नित्य मोटरों के गुज़रने के समय सड़क पर प्रतीक्षा करती और छिप-छिप कर रोती। नित्य ही सास ससुर में उसके मायके जाने की बात होती। जेठानियाँ ताने मारतीं—"रानी के बाप के यहां जग है। रानी के लिए मायके से डोली आयेगी।" मझेरा गांव की पाँच घर की बस्ती में सब लोग जान गये कि सोमा के मायके में जग होने को है। सोमा सोचती—क्या जेठानियों से सच बात कह दे। परन्तु वे क्या सहायता करेंगी ? सास से कह देगी तो वह उल्टे उसकी हड्डियाँ तोड़ेगी।··· जब कोई गले में रस्सी बांध कर उसे ले जाने लगेगा तो देखा जायगा दैव मालिक है। कभी कभी दुखी हो कर यह भी सोचती—यहाँ ही कौन सुख पा रही हूं ? यही कौन भले लोग हैं ? मुझे खरीद कर क्या कोई बकरे की तरह काटकर मेरा मांस खा जायगा ? सिर काट ले तो और अच्छा है। झगड़ा मिट जाय ! परन्तु औरतों को काट कर थोड़े खाते हैं···आगे सोचने का साहस न था। ससुराल में कम से कम उसकी पत तो बची है ? विधवा को जो खरीदेगा वह भला आदमी तो होगा नहीं ! ब्याह के लिये कुँआरी को खरीदने की एक बात है, पर वह तो विधवा है ? उसका जो होना था, हो चुका ! अब तो केवल बरबादी है। विधवा को तो मुसलमान ही खरीदेगा ! इससे तो मर जाना अच्छा है ?

सास उसका चेहरा देख बार बार पूछती—"मरी, क्या है ? तुझे बुखार तो नहीं हो रहा ?"—सोमा का बदन छूने पर बुखार भी मालूम हुआ। सास ने और भी पूछताछ कर कहा—"गुड़ सौंफ उबाल कर पी ले ! सोंठ फांक ले !" "कुछ नहीं ज़रा सिर में दर्द है"—सोमा टाल जाती।

सास ने सोमा को सुना सहानुभूति से ससुर को कहा—"जी, छोटी को तुम एक दो दिन में कमेठ छोड़ आओ ! बेचारी का जी भी अच्छा नहीं है। ज़रा हवा पानी बदल जायगा। बेचारी ब्याह कर आई है तब से मायके गई भी तो नहीं।" सोमा ने मन ही मन अपने भाग्य को और कोसा।

* * *

धनसिंह से हुई मोटर दुर्घटना का मामला बहुत उलझता

और बढ़ता गया। यहां तक कि यह मालिकों और ड्राइवरों में और स्वयं ड्राइवरों के बीच झगड़े का कारण बन गया। पंचायत हुई और अनेक बखेड़े हुए।

ड्राइवरों का कहना था कि एक तो सड़क खराब है। बहुत लम्बा सफर और सड़क टेढ़ी-मेढ़ी ऊँची-नीची है। इस पर लड़ाई के कारण नयी मोटरें और नये पुर्जे नहीं आ रहे थे। घिसा हुआ सामान बार-बार टूटता ही है। मालिकों का ख्याल था कि ड्राइवर बड़े बेपरवाह हो रहे हैं; समझते हैं, नौकरी की क्या कमी है? कम्पनी की नौकरी नहीं तो दूसरी बीसियों जगह हैं! और कुछ नहीं तो लाम पर ही चले जायेंगे। फौज में ड्राइवरों की भर्ती अच्छी तनख्वाह पर खूब हो रही थी। पिछले महीनों से कम्पनियों को मुरम्मत पर कई हजार खर्च करने पड़ रहे थे। कम्पनी मैनेजरों ने मिल कर इसका उपाय यह निकाला कि दुर्घटना यदि ड्राइवर की बेपरवाही से हो तो मुरम्मत का आधा खर्च ड्राइवर की तनख्वाह से किश्तवार काट लिया जाय।

ड्राइवरों में दो दल थे, एक मियां कुन्दनसिंह और मोहसिन खां का और दूसरा उस्ताद मज़हर का। कुन्दनसिंह और मोहसिन ड्राइवरों की हर बात पर कम्पनी से झगड़ने के लिये तैयार हो जाते। उस्ताद मज़हर को यह पसन्द नहीं था। वह साधारणतः गिरोह बन्दी से दूर रहता। उसका कहना था, मालिक और नौकर का क्या झगड़ा! जिस का नमक खाया उस से लड़ाई कैसी? मालिक कमायेगा तो नौकर को भी देगा, कमायेगा ही नहीं तो देगा कहाँ से? यह खुदा का इन्साफ है कि कोई मालिक है और कोई नौकर। खुदा ने मालिक को परवरिश के लिए और नौकर को खिदमत के लिए बनाया है। उसके इंसाफ में क्या दखल? इन्सान है क्या चीज जो झगड़ेगा! सब्र से काम लेना चाहिये।

मज़हर का कोई खास दल नहीं था। वह दलबन्दी में पड़ना भी न चाहता था। वह मालिकों का पुराना आदमी और खैरख्वाह था। उस की सिफारिश का ख्याल किया जाता था। जो सिफ़ारिश कराना चाहता वही मज़हर के दल का हो जाता। धनसिंह मज़हर की गाड़ी पर क्लीनर रह चुका था। उसी से उसने काम सीखा था और उसी की सिफ़ारिश से वह ड्राइवर बन गया था। मज़हर के

प्रति आदर के कारण वह कुन्दनसिंह और मोहसिन खां की मिस-कोट (पंचायत) से दूर ही रहता था परन्तु इस मामले में जब मैनेजर साहब उसकी तनख्वाह से दस रुपये माहवार काटने पर तुले ही रहे तो उसे कुन्दनसिंह की शरण जाना पड़ा।

मियां कुंदनसिंह ने कम्पनी की मां-बहन को भारी-भारी गालियां देकर कहा—साले ऐसा जुल्म कैसे कर सकते हैं ? दो दिन के लिए लाइन पर गाड़ियां बन्द करा दें तो साले साठ क्या, साठ हज़ार के तले आ जायं !" परन्तु यूनियन के दूसरे ड्राइवर धन-सिंह के लिये झगड़ा करने के लिए तैयार नहीं थे क्योंकि वह यूनियन का मेम्बर नहीं था और बोधराम ड्राइवर की छुट्टी के मामले में उसने साथ नहीं दिया था।

चार पाँच दिन यों ही बीत गए। झगड़े के कारण धनसिंह को ड्यूटी नहीं दी जा रही थी। उसका नागा हो रहा था। धनसिंह और घबराया कि कहीं नौकरी से ही न जाय ! वह मज़हर के पास जाता तो वह गम्भीरता से उपदेश देता—"बेटा, मालिक से झगड़ा करना खुदा के इन्साफ से मुनकिर होना है। अल्लाह सब देखता है। सब्र करो। मालिक से माफी मांग कर उस की सज़ा बर्दाश्त करो। खुदा इंसाफ करेगा। मालिक के दिल में रहम देगा !" परन्तु धनसिंह का मन यों अपमान निगल जाने के लिये तैयार न होता।

मियां कुन्दनसिंह ने धनसिंह को घबराते देखा तो उल्टा गाली देकर फटकारा—"बहन...साले, अगर तूने जाकर कम्पनी से माफी मांगी तो काटकर खड्ड में फिकवा दूंगा; कहीं पता भी न चलेगा। रोज तेरी मोटर का एक्सीडेंट करवाऊंगा। बहन के खसम दूसरे ड्राइवरों के गले पर छुरी चलवायेगा ! आज तू दबा, कल दूसरा दबेगा। हम लोग कहीं के न रहेंगे !"—उसने अपनी मूंछ ऐंठ कर कहा—"अगर तुझे इस मामले में सजा हो जाय तो यह पेशाब से मुंड़वा दूंगा। यूनियन को तू क्या समझता है ? सौ आदमी इकट्ठे हो जांय"—कुन्दनसिंह ने मुट्ठी बांधकर दिखाई—"तो पहाड़ को धकेल दें। कम्पनी साली तो हमारी कमाई खाती है। मां के खसम मालिक तो लुगाइयों को लेकर बिस्तर में पड़े रहते हैं। जान हथेली पर रख, बरसात में खिसकते पहाड़ों पर से आदमियों को तो हमी ढोते हैं। इस कम्पनी में मैंने नौकरी की

थी तो छः मोटरें थीं। सिर्फ छः, समझे बेटा ! अब एक सौ साठ हैं ? कहां से आ गईं ? मालिकों की······में से ? साले, यह कुन्दनसिंह का खून पसीना है।"—उसने अपना सीना ठोंका—"तेरी मां का······साले, यह तेरी कमाई है ! और अकेला अकेला ड्राइवर क्या है ? जैसे गंडेरी चूसकर फेंक दो। तेरी बहन का··· खबरदार जो अपने साथियों के साथ दगा किया ! बेटा, हौंसला रख !" धनसिंह सान्त्वना और सन्तोष से कुन्दनसिंह की गालियां सुनता रहा जैसे शरण की सान्त्वना पा रहा हो और फिर यह गाली थोड़े थी, यह तो मियां जी के मन में चुभी बातें थीं।

ड्राइवर बाबूलाल धनसिंह की उम्र का ही था। उसने तसल्ली दी—"क्या घबराता है यार ! कम्पनी की माँ की ऐसी-तैसी ! भरती खुली हुई है। मेरा भाई भरती में है। जब चाहे तुझे भरती करवा दूं। खाना, वर्दी, अलग से और पैंतालिस जेब में डाल लेना !

ड्राइवरों की पंचायत में कामरेड भूषण भी पहुँचा। उसने धनसिंह को समझाया—"साथी, तुम यूनियन का भरोसा रखो ! बाबूलाल के चक्कर में मत आना। यह दोनों भाई जवानों को फौज में भरती कराकर कमीशन खाते हैं। इनसे पूछो, फौज में बहुत आराम है तो खुद क्यों नहीं भरती हो जाते ? जो लोग गये हैं, खून के आंसू रो रहे हैं। हम गैर कौमी सरकार की मदद क्यों करें ? सरकार और मालिक एक हैं। अंग्रेज हम पर गोलियां चलायें, हमें लूटें, हम इनके लिये अपनी गर्दनें दें ! तुम्हीं बताओ, सरकार ने तुम्हारे ही साथ क्या भलाई की है ? सरकार है क्या ? आज मालिक से झगड़ा हो, सरकार अपनी पुलिस लेकर मालिक की तरफ हो जायेगी।" सलाह देने वाले इतने हो गये कि धनसिंह परेशान हो गया। इन सब से तो भला कुन्दनसिंह था जो सलाह-बलाह कुछ नहीं, सीधा हुक्म देता था। उसके कहने से ड्राइवरों की पंचायत इकट्ठी हुई। बाधराम और उसके दूसरे साथियों ने कहा—"जिन लोगों ने पहले हमारा साथ नहीं दिया हम उनके लिए क्यों मरें ?" धनसिंह को भी गुस्सा आ गया। वह उठ खड़ा हुआ बोला—"मियां जी रहने दो, मेरे लिए कोई न मरे ! मैं अपनी राह देख लूँगा।"

भूषण और कुन्दनसिंह ने बीच बचाव किया। भूषण ने

मज़दूरों और मेहनत करने वालों की एकता पर बल दिया। दो ड्राइवर मान ही नहीं रहे थे। कुन्दनसिंह ने भूषण का हाथ खींच कर उसे बैठा दिया और गाली देकर बोला—"इन माँ के····को मैं समझाऊँगा। कौन माँ का खसम यूनियन का मालिक बनता है? बोले मेरे सामने! यूनियन सब ड्राइवर भाइयों की है। यूनियन को तुम क्या समझते हो? यूनियन नौकर की मालिक से लड़ाई का मोर्चा है! समझे! जब मालिक जुल्म करता है तब यूनियन बनती है। सब मालिक जुल्म करते है, जैसे सब घोड़े घास खाते हैं। समझे! जो अपनी बहन के खसम मालिकों की······में घुसते हैं वो मज़दूरों के दुश्मन हैं। जो साले समझते हैं कि मालिक हमारा बाप है, मालिक को अपनी माँ का खसम बनाने वालों पर भी जब मालिक जुल्म करता है तो वो भी यूनियन में आ जाते हैं और भाइयों से गद्दारी छोड़ ईमानदार भाई बन जाते है। कौन माँ का····है जो मजदूरों को मज़दूरों का भाई बनने से रोकना चाहता है आये मेरे सामने। कौन माँ का······है जो चाहता है कि हमारे मज़दूर भाई मालिक की में······घुसे रहें? खड़ा हो जाय जो ऐसा बेईमान है!"

कोई खड़ा नहीं हुआ कुन्दनसिंह ने ललकारा—"बस ठीक है, सब भाई एकमता (सहमत) हैं। धनसिंह की तनख्वाह कोई नहीं काट सकता। जो मालिकों का मुखबिर यहाँ बैठा हो वह जाकर अपने बापों से कह दे कि धनसिंह की तनख़्वाह कटेगी तो हड़ताल हो जायगी, लाइन पर एक गाड़ी नहीं चलेगी।" बंशीलाल ड्राइवर ने उठ कर कहा—"भाइयो, मियां जी की बात और कामरेड की बात हम सबने मानी लेकिन मालिक चालाकी कर रहे हैं। मैनेजर का कहना है कि धनसिंह की गाड़ी का एक्सीडेन्ट इसलिए हुआ कि वह बेपरवाही से गाड़ी चला रहा था। वह बकरी चराने वाली औरत से मज़ाक कर रहा था। यह बयान मैनेज़र के सामने कर्म क्लीनर ने दिया है। पंचायत इसका भी फैसला करे।"

धनसिंह ने खड़े हो कहा—"कर्मू मेरे सामने आकर गंगाजली उठाकर कहे। मैं गंगाजली उठा कर कसम खाता हूं यह झूठ है।"

मोहसिन ने उठ कर जवाब दिया—'धनसिंह सड़क पर ऐसी कमजाती करेगा तो यूनियन उसे सौ जूते मार सकती है लेकिन

मालिकों के सामने हम सब एक हैं।" पंचायत ने फैसला किया कि जब तक कमूँ पंचायत से माफी नहीं मांग लेता उसे कोई ड्राइवर अपनी गाड़ी पर क्लीनर नहीं रखेगा।

मैनेजर साहब समझदार आदमी थे। हवा देख उन्होंने विस्मय प्रकट किया कि यह सब क्या झगड़ा है? उन्हों ने तो केवल धनसिंह की बदली कांगड़ा-कुल्लू लाइन से हटाकर पठानकोट-धर्मशाला लाइन पर कर दी है क्योंकि वहाँ की सड़क खराब है और इस लाइन का पुराना ड्राइवर गुलजारी आ गया है।

धनसिंह जुर्माने से तो बच गया लेकिन उस की लाइन बदल गई। यह उसे अच्छा न लगा। मण्डी की ओर जाने का अवसर न रहने से सोमा को देख पाने का अवसर न रहा परन्तु लाइन बदलने की शिकायत क्या करे? मालिक की मरजी है, चाहे जहाँ काम ले? चाकरी क्या और नखरा क्या? यह कहना मुश्किल था कि उस पर जुल्म हुआ है। सब ड्राइवर बीहड़, उजाड़ सड़कों की अपेक्षा "पठानकोट-कांगड़ा" और पठानकोट-धर्मशाला" लाइन को ज्यादा पसन्द करते थे। दोनों सिरों पर अच्छे बड़े शहर होने से खाने-पीने, ठहरने और तमाशबीनी की सुविधा रहती थी; जरूरत की सब चीज़ें मिल जाती हैं। जाहिल, पसीने से गंधाती सवारियों की अपेक्षा फैशनेबल और सभ्य लोगों से सरोकार रहता है। कुछ दिलचस्पी भी रहती है परन्तु धनसिंह इस बदली से सन्तुष्ट नहीं था। वह मन ही मन घुटता रहता।

पठानकोट और धर्मशाला में कई कम्पनियाँ और लाइनों के ड्राइवर इकट्ठे होते हैं। मोटरें छूटने का समय होने से पहले वे लोग जाड़े के घाम में इकट्ठे हो मूंगफली खाते या सिगरेट फूंकते हुये गप्पबाजी करते रहते हैं। इस बातचीत का विषय सड़कों पर हुई घटनायें, कुछ पढ़े लिखे ड्राइवरों द्वारा अखबार में पढ़े लड़ाई के समाचार, यूनियन के झगड़े या सवारियों में आती जाती स्त्रियाँ होती हैं। अमीर स्त्रियों को देखकर वे दबे स्वर में उनके रूप, शरीर, कपड़ों और व्यवहार की अलोचना करते हैं और गरीब स्त्रियों की ऊँचे निर्भय स्वर में। ऐसी बातचीत के लिये उन के अपने सांकेतिक शब्द हैं। किसी बहुत अमीर जान पड़ने वाली रोबीली स्त्री को देखते तो कहते—'रोल्स' आ रही है। किसी मोटी और भारी

औरत को देख कहते—"हटजा हटजा, ट्रक आ रहा है।" किसी का नाम हवाई जहाज रख लेते। किसी को 'हावे की घोड़ी' और किसी को 'बार की भैंस' पुकारते। किसी को पतंग और कनकौवा बताते औ डोर कटाने, खींचने और थमाने के लिये आवाजें कसते। धनसिंह भी ऐसी आलोचना में भाग लेता आया था लेकिन अब उसे यह अच्छा न लगता। मन में अनुचित सा लगता—ऐसे कोई सोमा का मज़ाक करे तो ?

* * *

मण्डी–बैजनाथ की सड़क पर किसान लड़की से धनसिंह की आशनाई का किस्सा ड्राइवरों में फैल गया था उधर गाड़ी ले जाने, लाने वाले प्रायः सभी ड्राइवर उस लड़की को सड़क किनारे प्रतीक्षा में खड़ा देख भी आये थे। वे धनसिंह से मजाक करने लगे—"कहो बेटा, बड़े भगत बनते हो, हम लोग तो आँखें ही सेकते रह जाते हैं, तुम हाथ भी सेकने लगे।" कोई कहता—"असली शिकारी है। उड़ती चिड़िया गिरा ली।" दूसरे पूछते—"कसम से सच कहना दोस्त, रात कैसी बीती ?" और कुचेष्टा पूर्ण संकेत करने लगते। यामीन ने कहा—"दोस्त, कहो तो साली को एक रोज माल के ट्रक में बोरियों में छिपा कर ले आयें ?"

पहले तो धनसिंह झेंपता और चुप रह जाता लेकिन फिर वह चिड़ने लगा। ड्राइवर गुरचरन के अधिक अश्लील मज़ाक करने पर वह उसे मार बैठा। इस पर दूसरे ड्राइवर बिगड़ उठे—"यह साला मारने वाला कौन होता है ? वो मादर···क्या इसकी घर वाली है ? जो कोई बहन······मज़ाक भी नहीं कर सकता। यह साला वहाँ रात काट आया और हम बात भी नहीं कर सकते ? यह कौन उसे भांवरे डालकर डोली में बैठा कर लाया है ? कौन मादर······ड्राइवर मज़ाक नहीं करता ? एक तो इस बहन···· के लिये मालिकों से लड़ाई सिर लें तिस पर यह बड़े "राजा संसार चन्द" हो गये कि बकरी चराती पहाड़िन से आँख क्या लग गई, उसे रानी बना बैठे ? हाँ भाई, तुम्हारी माँ बहन हो, घर की औरत हो हम कुछ कहें तो गुनाहगार हैं। ड्राइवर लोग ऐसे मुँह-आँख पर पट्टी बाँधने लगें, हर बात से डरने, परवाह करने लगें तो दो रोज में मर जाँय। यह भी कोई ज़िंदगी है बहन······! गांव

घर से दूर, सुबह यहाँ तो शाम को दो सौ मील परे ! हर वक्त धूल-गर्द, न वक्त का खाना न सोना। अपनी औरत की शक्ल देखे महीनों बीत जाते हैं बहन ......! और मादर......दुनियाँ भर की हूरों-परियों को ढोते फिरते हैं, दिलों पर छुरियाँ चल जाती हैं। बहन......दो बातें बोल दिल हलका कर लेते हैं और क्या !"

ड्राइवर बलाकीराम भी हमीरपुर की तहसील का रहने वाला था। आयु में वह धनसिंह से लगभग बीस बरस बड़ा था। दूसरे ड्राइवरों को उसे परेशान करते देखता तो बीच बचाव कर देता। एकांत में उसने भी धनसिंह के कंधों पर हाथ रख कर समझाया—"छोटे भाई, यह सब पागलपन है। यह इश्क का मर्ज़ पालना ग़रीब ड्राइवर के बूते की बात नहीं। ड्राइवर का क्या है ? मौसमी पंछी है। हर वक्त जान जोखिम में। नशे और औरत के वस में होना ग़लती है। वक्त है, फुर्सत है, पैसा है, तफरीह कर लो ! पर फंसो नहीं ! ज़र, जोर, जमीन को वही सम्भाल सकता है जो जम कर इन पर बैठ जाय। ड्राइवर इन्हें कैसे सम्भालेगा ? वह तो उड़ता पंछी है पंछी ! जो चोंच भर दाना पानी मिल जाय वही उसके भाग का। पंछी तो तभी उड़ सकता है जब उसके पर खुलें और साबित रहें, जाल में नहीं फंसे ! एक बार चाहे जो खिलादो, लुटादो ! लेकिन उम्र भर का रोग नहीं पालना ! यह बाल कुछ धूप में सफ़ेद नहीं किये हैं, समझे भैया ! यहाँ घर की, बाजार की, गाँव की, शहर के सब देखे बैठे हैं। सब शराब की तरह मज़ा देती हैं, समझे ! जब तक अपने बस में रहो उसका मज़ा है। जब उसके बस में हो जाओ, बरबाद हो जाओ !" धनसिंह सोचता यह नौकरी छोड़ कर लाम पर चला जाय लेकिन फिर सोमा कहाँ मिलेगी ?

धनसिंह पठानकोट से तीसरे पहर की सर्विस लेकर धर्मशाला जा रहा था। नूरपुर में सवारियों के उतरने चढ़ने के लिये गाड़ी रोक वह सड़क किनारे की दूकान से एक गिलास लस्सी पीने लगा। अपने कन्धे पर किसी का हाथ अनुभव कर उसने घूम कर देखा, मंडी-लाइन का ड्राइवर बाबूलाल था—"सुनो तो ?" बाबूलाल धनसिंह का हाथ थाम एक ले गया, जहाँ कोई उनकी बात न सुन सके और बोला—"तेरी मोटर का एक्सीडेन्ट

पालटा से परे वाली हलकी चढ़ाई पर हुआ था ?'''जहाँ टीले पर एक आमले का पेड़ और बांस की झाड़ियाँ हैं ?" धनसिंह ने हामी भर ली।

बाबूलाल ने बताया—"मालूम होता है, वह लड़की या तो किसी मुसीबत में है या पागल हो गई है। जब देखो सड़क किनारे दिखाई देती है। मोटरों में झांकती रहती है। कुछ रोई-रोई सी खोई-खोई सी जान पड़ती है। भैया, नाम तो नहीं बताऊंगा लेकिन ऐसे भी साले गुण्डे बदमाश हैं जो उसे उड़ा लाने की सोच रहे हैं। सलाह कर रहे हैं कि उसे मंडी ले जायं या धर्मशाला ले आयें। भैया, यह बुरी बात है। साले, हरामी चार दिन उससे खेलेंगे और फिर छोड़ जायंगे। तुम से क्या पर्दा। साला बिहारी और अफ़ज़ल यह तिकड़म कर रहे हैं इसीलिये बिहारी अपनी ड्यूटी माल की लारी पर लगवाने की फ़िक्र में है। मेरा नाम तो न बताना नहीं हां, तुझे कह दिया कि इन्तजाम करले।"

धनसिंह के लिए आगे मोटर सम्भालना कठिन हो गया। जैसे तैसे धर्मशाला पहुंचा और लारी अड्डे पर छोड़ कम्पनी के दफ्तर में जा उसने चार रोज की छुट्टी की दरखास्त दे दी। धनसिंह एक घण्टे तक कभी इस पांव पर और कभी उस पांव पर बोझा दिए प्रतीक्षा करता रहा लेकिन मैनेजर ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। आखिर धनसिंह बोला,--"हुजूर, छुट्टी चाहिए।"

"हूं ?" –मैनेजर ने कागजों पर नज़र लगाये ही पूछा।"

"कल सुबह गांव जाना है, जरूरी काम है।"

"नौकरी है कि तमाशा है ?"—मैनेजर ने धनसिंह की ओर देखा--"शाम को आकर सरकार हुक्म दे रहे हैं कल सुबह छुट्टी चाहिए। तुम्हारा काम जरूरी है, कम्पनी का काम जरूरी नहीं है ? मियां जी, यहां''''''में सौ रुपये की ठुक जायगी। नोटिस होता है छुट्टी का मालूम नहीं है ?"

"जनाब क्या मालूम था, घर से खबर आ जायगी ?"—धनसिंह ने खुशामद की।

ऐसी छुट्टी चाहिए तो एवज़ी दो !"—मैनेजर फिर काम में लग गया।

"साहब मैं कहाँ से एवज़ी ला सकता हूँ ? अभी पठानकोट से आया हूँ तो घर पर बीमारी की खबर मिली है। क्या मालूम होता है किसी को कि बीमारी आ पड़ेगी ?"

"सिर मत खाओ जी, एक दफ़े जवाब दे दिया। देखते नहीं हो कुल्लू तक की पचास गाड़ियों का हिसाब पड़ा है। तुम्हारा ही काम ज़रूरी हो गया। बस, तुम्हारे ही तो टुकड़े खाते हैं। आ गए बड़े साहब बन कर ज़रूरत वाले।" मैनेजर ने फिर धनसिंह की ओर नहीं देखा। धनसिंह आधा मिनट खड़ा रहा और फिर होंठ काट बाहर निकल आया। समीप की ही दुकान पर मोहसिन खाँ अपनी पगड़ी के शमले में कांच का गिलास थामें चाय सुड़कता हुआ शमसुल से बात कर रहा था। धनसिंह ने रुआंसे होकर शिकायत की—"क्यों खाँ साहब, किसी के घर बीमारी हो जाय तो छुट्टी नहीं मिलेगी ?"

"क्या बात है"—मोहसिन ने पूछा

धनसिंह ने मैनेजर से हुई बात और उसके एवजी के तकाज़े की बात सुनाई। शमसुल ने मज़ाक किया—"अबे तेरे घरवाली ही कहाँ है जो घर में बीमारी हो गई ?"

मोहसिनखाँ ने खुद ही दूसरों को सुना कर जवाब दिया—"मादर···घरवाली नहीं है तो घर तो है। बहन···आखिर क्या यह आसमान से गिरा था ? जहाँ आदमी पैदा होता है वह घर ही होता है।"—उसने धनसिंह की ओर देखा—"क्यों रे, बहानेबाज़ी है कि मादर···सच बात है ? मियां, तुझ पर रंग चढ़ रहा है। उस रोज़ मोटर का यूनिवर्सल जाइन्ट तोड़ लाया शेर। कम्पनी की···में सवा सौ का डंडा कर दिया। आज छुट्टी चाहिए बिना एवज़ी के ! साला एक ही हरामी है।" मोहसिन आत्मीयता से मुस्करा दिया।

बहुत विनीत स्वर में धनसिंह ने उत्तर दिया—"खां साहब, यह तो मजबूरी है। इस में कोई क्या कर सकता है।"

"पर भाई एवज़ी तो चाहिए। मादर······कम्पनी साली बिना आदमी के मोटर चलाएगी कैसे ? यह साले कम्पनी वाले स्पेयर भी तो नहीं रखते इनकी मां······!" मोहसिन ने समझाया।

"है तो स्पेयर !"—शमसुल ने टोका।

"तो किसकी जगह काम कर रहा है ? कौन है छुट्टी पर ?"

अपनी मूंछों पर ताव देकर शमसुल ने कहा—"हमारी जगह।" तू छुट्ट जा रहा है ? तुझे क्या काम है ?" मोहसिन ने पूछा।

"उस्ताद, है एक काम ! बहुत जरूरी !"—शमसुल ने आँखें मटकाईं।

चाय का खाली गिलास अलग रख, पगड़ी के शमले से मूछें पोंछते हुये मोहसिन ने पूछा—"आखिर मालूम तो हो, क्या ज़रूरी काम है ?"

"उस्ताद तबीयत कुछ परेशान है ?" - शमसुल मुस्कराया। शमसुल के पीछे खड़ा हरनाम मुस्करा कर बोला--"उस्ताद, कह दूं क्या काम है !"

शमसुल ने धमकाया—"साले चुप ! तुझे क्या मालूम ? मेरा प्राइवेट काम है। उस्ताद, यह झूठ बोलता है। इसे नहीं मालूम।"

मोहसिन ने हरनाम की ओर देखा। "उस्ताद, यह बटाले वाली मीरन रंडी के यहां जा रहा है। आज मण्डी से देसी शराब की बोतल ले आया है।"—हरनाम ने भंडा फोड़ दिया।

शमसुल ने अत्याचार का विरोध करने के स्वर में दुहाई दी—'ईमान की कसम उस्ताद, यह झूठ बोल रहा है, इसे नहीं मालूम !" मोहसिन चार पांच भारी गालियाँ एक ही सांस में बक गया—"तेरी मां का···? मालेज (भत्ता) बहुत जुड़ गया है ? हरामी रंडीबाजी करेगा ? अबे हरनाम, निकाल ला साले की बोतल ! साला रंडी को पिलायेगा ? उसकी मां···! वह तो साले तुझे पी जायगी। एक भाई की मदद नहीं करेगा अपनी कमाई रण्डी को देगा। साले, आतशिक लग जायगा फिर उस भैन······चेतू की तरह······थामे-थामे फिरना !" शमसुल हाय तोबा करता रह गया। मोहसिनखाँ के इशारे पर हरनाम और जवाहर ने उसकी बोतल निकाल ली।

मोहसिन ने धनसिंह को आश्वासन दिया—"बेटा घबराओ नहीं। कह दो साले मैनेजर से, मोहसिनखाँ एवज़ी कर लेंगे। यह साला शमसुल करेगा, एक चक्कर हम लगायेंगे। ब्लाकी का रेस्ट

है। परसों वह कर देगा। भला आदमी है बेचारा। पर बेटा, कहीं हफ्ते न लगा देना ! नहीं तो मियां कुन्दनसिंह से कान खिचवाऊँगा समझे !"

* * *

धनसिंह ने रात भर सोच-सोच कर अपनी योजना बनाई—डाकखाने में उसके सत्तर रुपये थे लेकिन रात में उन्हें निकलवा सकने का मौका नहीं था। उसने दो-दो पांच-पांच कर बीस रुपये ड्राइवरों से उधार लिये और कुल मिला कर चालीस रुपये कर लिये। दूसरे दिन सुबह ही वह दूसरी कम्पनी, बैजनाथ तक जाने वाली गाड़ी में रवाना हो गया। इस गाड़ी के दो घण्टे बाद उसकी अपनी कम्पनी की सीधी पठानकोट-कुल्लू सर्विस की गाड़ी जाती थी। वह सोचता जा रहा था, मोटरें गुज़रने के समय सोमा सड़क पर आती है। वह कुछ पहले ही पहुँच जायगा और वह उसे मिल जायगी। अगर उसने चलने से इनकार किया तो वह अपने सिर की कसम देकर कहेगा—तू जान, अब तो मरना-जीना तेरे साथ ही है।

धनसिंह जिस गाड़ी में बैजनाथ तक गया उसका इंजन ठीक न था इसलिये गाड़ी बैजनाथ आधा घण्टा लेट पहुंची। वह तुरन्त पैदल पालटा की ओर चल दिया। वह तेज चाल से चला जा रहा था। सड़क के इस भाग में सड़क संकरी होने के कारण मोटरें एक समय एक तरफा चलती हैं। पहले मण्डी से बैजनाथ की ओर और फिर बैजनाथ से मण्डी की ओर। मण्डी की ओर की मोटरें आ रही थीं। सड़क पहाड़ों की बगलों में घूम-घूम कर जाती हैं इसलिये किसी स्थान पर आंख सड़क पर केवल कुछ ही कदम देख पाती है और किसी स्थान से कई मील तक, बेपरवाही से पड़ी रस्सी की तरह दिखाई देती है। सामने से मोटर आ रही थी। धनसिंह धूल और परिचित आंखों से बचने के लिये खेतों में उतर गया। मोटरें गुज़र जाने के बाद फिर सड़क पर चढ़ आया। चढ़ाई के कारण उसे पसीना आ रहा था। चलते डेढ़ घंटे के लगभग हो गया। अब बैजनाथ से चलने वाली मोटरों के ऊपर की ओर जाने का समय हो रहा था। यदि उसकी मोटर लेट न आई होती तो अब तक वह मझेरा पहुंच गया होता। वह

ओर तेज़ चलने लगा। वह बार-बार आंखों पर हाथ रख ऊंचाई पर उस टीले को पहचानने का यत्न करता। टीला दिखाई देने लगा था परन्तु जगह अभी दो मील से कम दूर न थी। सड़क साफ दिखाई दे रही थी और उस पर चूने से पुते फर्लाङ्गों के पत्थर धूप में चमक रहे थे। पीछे से आती मोटरों के इन्जनों की गूंज सुनाई देने लगी। वह और भी तेज़ चलने लगा। उसकी सांस फूल रही थी, माथे का पसीना बह-बह कर उसके पांव जूतों मे कचकचाने लगे।

पीछे से दौड़ी चली आती मोटर समीप पहुँच रही थी। सामने सड़क पर टीले के नीचे उसे एक स्त्री भी दिखाई दी, वह आंखों को धूप से बचाने के लिये हाथ की ओट किये उसी की ओर से आती मोटरों को देख रही थी। शायद उसे वह भी दिखाई दे रहा हो! यदि उसका आना जानती तो पहचान भी लेती। मन चाह रहा था, आवाज़ देकर पुकार ले। आवाज़ इतनी दूर पहुँच न सकती थी और उचित भी न था। धनसिंह ने हाँफते हुए अपने कदमों को और तेज किया परन्तु एक मोटर धूल उड़ाती हुई समीप से गुज़र ही गई। मोटर, मोटर है और आदमी, आदमी! मोटर लोहे के फेफड़े से गैस का सांस लेती है। रक्त मांस के फेफड़े से सांस लेने वाला आदमी उसकी बराबरी कैसे करे? कुछ अन्तर से और मोटरें आईं और धनसिंह की निर्बलता पर धूल फेंकती चली गईं। वह सदा मोटर पर आता जाता था, पैदल चलतों पर ऐसे ही धूल फेंकता और अपने अस्तित्व के सामर्थ्य को भूला हुआ। सड़क भीतर की ओर मुड़ गयी। अब धनसिंह को टीला दिखाई नहीं दे रहा था। उसका हृदय आशंका से धक-धक कर रहा था। मोटरें गुज़र जायंगी। सोमा लौट न जाय! घर चली जायगी तो वहां कैसे जा सकेगा?

जब धनसिंह आड़ में से गुजरने वाली सड़क के भाग पर से फिर खुले में आया तो मोटरें अगले वाले टीले से बहुत दूर आगे जा चुकी थीं। सड़क पर उठा धूल का गुबार भी हवा के झोकों से साफ़ हो गया था। सोमा अब वहाँ नहीं थी। आड़ में होने के कारण धनसिंह यह भी न जान सका कि सोमा किस ओर गयी, घर की ओर या बावड़ी की ओर? अब और तेज चलना व्यर्थ था।

धनसिंह की गति शिथिल हो गई। तेज चाल के कारण उसे प्यास भी लग आई थी। कदम कदम चलता वह सोचने लगा—सोमा के फिर सड़क की ओर आने या पानी के लिए बावड़ी पर आने तक वह कहाँ प्रतीक्षा करेगा ?" सोचा बावड़ी पर जाकर पानी पीयेगा और समीप पेड़ों के नीचे बैठ प्रतीक्षा करेगा।

धनसिंह बावड़ी के समीप पहुँचा तो 'थप-थप, थप-थप' की आहट बावड़ी पर से सुनाई दी। समझा, कोई स्त्री लकड़ी की मोंगरी से पीट कर कपड़े धो रही है। स्त्री को अपने आने से सावधान करने के लिये उसने खांस दिया और फिर गर्दन ऊंची कर देखा ? एक जवान स्त्री शरीर को एक मैली सी ओढ़नी में लपेटे एक कंधे पर सिर डाले, अनमने भाव से धीरे-धीरे भीगे मैले कपड़ों को पीटती जा रही थी और दूसरे हाथ की अंजली से उन पर बावड़ी का पानी उलीच रही थी। स्त्री के सिर के बाल उलझे हुए थे, झुका हुआ चेहरा दिखाई नहीं पड़ रहा था। स्त्री ने धनसिंह की खांसी और जूतों की आहट नहीं सुनी। स्त्री को इस अवस्था में देख धनसिंह सकुचाया, फिर जोर से खांसकर स्त्री को शरीर का कपड़ा सम्भाल कर सिमिट जाने की सूचना दी। मोंगरी से कपड़े पीटने के शब्द के कारण स्त्री यह चेतावनी भी न पा सकी। वह फिर से खांसने को था कि ख्याल आया, सोमा ही तो नहीं ! कंधों और शरीर के आकार से सोमा ही तो जान पड़ती है। धनसिंह की आँखें, कान, नाक सभी उत्तेजित हो गए और उसके कदम पृथ्वी पर ज़ोर से आहट कर उठे।

स्त्री सहसा चौंकी। उसकी आंखें आने वाले की ओर उठीं। वह क्षण भर को सहमी और फिर पहचान कर उसका चेहरा गुलाबी और आंखें तरल हो गईं। वह अपनी ओढ़नी में बिलकुल सिमिट गई। लाज से अपना सिर घुटनों में छिपा लिया। धनसिंह एक छलांग में बावड़ी की जगत से पानी के किनारे आ पहुँचा और सोमा के उलझे केशों पर हाथ रख भरे हुए गले से उसने पुकारा—"सोमा !"

सोमा ने कांप कर कहा—"जी, कपड़े नहीं पहने हैं, हाय कोई और आ जायगा।" धनसिंह ने कपड़ों की ओर देखा और समझा। ढेर से भीगे हुए मैले कपड़े एक परात में पड़े थे और दो तीन

सोमा की मोंगरी की मार खा रहे थे। पहले वह अपने पहरने के कपड़े धो रही थी कि उन्हें घाम में डाल दे। जब तक शेष कपड़े धोएगी, इसके अपने कपड़े सूख जायंगे।

"तो पहन ले न जल्दी से।"—धनसिंह बोला।

"यह तो धो दिए। धूप में डालूंगी, सूखेंगे जरा तो पहनूंगी"—वह अपने में ही सिमिटी हुई थी। कछुए की तरह जरा गर्दन उठा उसने समझाया और उसी सांस में कह गई—"जी, मैं तुम्हारी बड़ी राह देखती रही।"

"मैं आ गया!"

"जी तुम बड़े भले लोक हो!···तुम जरा आड़ में हो जाओ मैं यह कपड़े सूखने के लिए फैला दूं।"—धनसिंह लम्बे-लम्बे सांस लेता मजनूं के पेड़ों की ओर चला गया। सोमा ने अपने गीले कपड़े बावड़ी की जगत के तपे हुए पत्थरों पर फैला दिए और शेष कपड़ों का धोना छोड़ बावड़ी के कोने में सिमिट गई।

धनसिंह बावड़ी में लौट आया और सोमा से कुछ अन्तर पर पानी के पास बैठ अंजलियों से जल पीता हुआ दबे स्वर में बोला—"तुझे लेने आया हूँ।"

सोमा ने सिर झुका जल की ओर देखते हुये उत्तर दिया—"जी, ससुर तो मुझे मण्डी में बेचने के लिये ले जाना चाहता है। मन्नू साह से उसने सलाह कर ली है।" उसकी आंखों में आंसू छलक आये···"इसीलिये मैं तुम्हें टेर रही थी।" धनसिंह विस्मय से सोमा की ओर देखता रह गया। पल भर सोच वह बोला—"छोड़ इन मरे कपड़ों को तेरे कपड़े जरा अठर जायं तो झट से पहन ले और चली चल। खेतों-खेत खड्ड की राह उधर उतर चलें। सड़क पर लोग तुझे जानते होंगे। पालटा से आगे मोटर पर बैठ जायंगे।"

सोमा ओढ़नी की खूंट से आंसू पोंछने लगी। उलझे हुए केशों से भरा उसका सिर सिसकियों से हिलने लगा। आकुल स्वर में धनसिंह ने कहा—" सोमा, मैं तुझे लेकर ही जाऊँगा। जान दे दूंगा तेरे लिये। इन कसाइयों के हाथ में तुझे न रहने दूंगा।" सोमा कुछ कह न सकी। वैसे ही रोती रही। धनसिंह ने फिर

कहा—"अब उठ, समय न खो, चल दे ! तीसरे पहर मंडी से लौटती कोई गाड़ी पालटा से नीचे पकड़ लेंगे।"

"जो मैं कहां जाऊँगी ?" सोमा ने असहाय हो कर कहा।

"दूसरे के हाथ बिकेगी ? मेरे ही साथ चल !"—कलेजे की धड़कन से धनसिंह का स्वर कांप रहा था। सोमा उठ खड़ी हुई। जगत पर फैले अपने कपड़े समेट मजनू के झुरमट में चली गई और दो मिनिट में भीगे बोझल कपड़े पहने आ गई। वे दोनों बावड़ी से बहते नाले के किनारे-किनारे खड्ड की ओर उतर गये।

धनसिंह इस स्थान से परिचित न था। सोमा आंचल से आंखें पोंछती हुई आगे राह दिखाती चल रही थी। धूप और हवा से उसके कपड़े सूख गये। पालटा से आधी फर्लाङ्ग आगे निकल वे सड़क पर आ गये, बिना राह के ऊबड़-खाबड़ चढ़ाई पर तेज़ी से चढ़ने के कारण वे दोनों ही हाँफ गये थे। उसी समय मण्डी की ओर से आती मोटरों की गूंज सुनाई दी। इस स्थान पर सड़क एक टीले का चक्कर काट कर घूम गई थी इसलिये पीछे से आती मोटरें दिखाई न देती थीं। सड़क पर टीले की छाया पड़ रही थी। वहीं वे सांस लेने के लिये ठहर गये। धनसिंह ने सोमा के चेहरे पर छलका पसीना और उसकी तेज़ चलती सांस देख कर कहा—"मोटर पर चढ़लें।" उसने सोचा भी—वर्ना पैदल चल कर वे लोग रात से पहले किसी तरह बैजनाथ नहीं पहुँच सकेंगे।

पहली मोटर समीप आने पर धनसिंह ने राह चलते मुसाफिर की तरह मोटर को रुकने का ईशारा करने के लिये हाथ उठा दिया। मोटर दिखाई दी और वह उसकी ही कम्पनी की थी। धनसिंह सहम गया परन्तु वह हाथ उठा चुका था और मोटर रुक रही थी। उसने सामने के कांच में से ड्राइवर को पहचानने का यत्न किया। सड़क के बाईं ओर होने के कारण सवारी की आड़ में बैठे ड्राइवर को वह देख न सका। मोटर कुछ कदम पर जा कर रुकी। वह मोटर की ओर बढ़ा कि इतने में मियां कुन्दनसिंह को स्वयं मोटर से उतर अपनी ओर आते देखा।

सहमती हुई आवाज़ में धनसिंह बोला—"दो सवारी की जगह चाहिये मियां जी !"

मियां ने धनसिंह की ओर बेंधती दृष्टि से देखा और गाली देकर पूछा—"यह औरत कौन है ?"

धनसिंह ने उत्तर दिया—"मियाँ जी भाबी है मेरी, इसे साथ लेकर घर जाऊँगा।"

कुन्दनसिंह ने ज़रा आवाज़ दबा कर कहा—"माँ के······ हमसे उड़ता है ? बहन के···इसीलिये बहाने से घर पर बीमारी की छुट्टी ली थी ? दूसरे तेरी जगह पत्रज़ी देकर मरें और तू माँ का·······छिनरा करता फिरे ? इसी करतूत में मोटर तोड़ी थी बहन···हरामी के पिल्ले।

"उस्ताद,·····"–धनसिंह सफाई देना चाहता था लेकिन कुन्दनसिंह ने डाँट दिया—"चुप माँ के·······अपने बाप को सिखाता है ! खबरदार किसी मोटर पर पांव रखा ? साले टांगे काट दूँगा। दूसरे ड्राइवरों को फँसायेगा ? चला जा पैदल अपनी इस अम्मा को लेकर ! और छोड़ कर आ इसके घर···।"

दो मोटरें एक के पीछे एक चली आ रही थीं। मोटरों को चाल धीमी करते देख कुन्दनसिंह ने हाथ से निकल जाने का इशारा किया और धनसिंह की कोई सफाई न सुन अपनी मोटर की ओर चल दिया। दूसरी कई मोटरें आईं और चली गईं धनसिंह को सवारी के लिये इशारा करने का साहस न हुआ। स्वयं उसका दिल डूबता जा रहा था। सोमा को उसने समझाया—"यहाँ गाड़ियों में जगह नहीं मिलेगी। बैजनाथ से मोटर में बैठ लेंगे।" सोमा चुपचाप धनसिंह से एक कदम पीछे उसके साथ चलने लगी।

वे लोग पाँच मील चल चुके थे। सूर्य पश्चिम की ओर पहाड़ियों के पीछे छिप गया। शीघ्र ही अंधेरा घना हो गया। ठंडी हवा तेज़ी से चलने लगी। चलने के कारण दोनों के पसीना आ रहा था। पसीने से तर कपड़ों में हवा बिंधने से कम्पन सी छूट जाती। अंधेरा हो जाने के कारण धनसिंह को संदिग्ध दृष्टियों का भय न रहा। कंकरीली सड़क पर इतनी दूर से नंगे पांव चुपचाप चली आती सोमा के लिये उसका मन पिघल-पिघल आता। वह उसे बार-बार न घबराने और थकावट की चिंता न करने के लिये तसल्ली दे रहा था। सोमा ने हाँफते-हांफते अपने ससुर और

मन्नू साह के षड़यन्त्र की बात ब्योरे वार सुना दी और आँखें पोंछ कर कहा—"तुम बड़े भले लोक हो जी, तुम्हारा ही सहारा है, चाहे मारो चाहे जिलाओ !"

धनसिंह ने धर्मशाला कुल्लू और पठानकोट में अंग्रेजों और दूसरे बड़े आदमियों को अपनी स्त्रियों की बांह पकड़े हाथ में हाथ डाल सहारा देकर साथ ले जाते देखा था। यह देख उसे हृदय में गुदगुदी होती थी। वह दूसरे ड्राइवरों के साथ मिल कर इस दृश्य पर अश्लील मज़ाक कर किलकारी मारता था परन्तु इस समय सहानुभूति, कर्त्तव्य और अधिकार की भावना से उसने सोमा को उसी प्रकार सहारा देने का यत्न किया। सोमा इससे सकुचा गई। सिमिट कर उसने कहा—"जी, ऐसा नहीं करते। तुम तो बड़े भले लोक हो जी।"

धनसिंह ने उसे पुचकार कर समझाया—"इसमें क्या डर है मलिये ? कौन देखता है ? तू थक गई है, ज़रा सहारा ले ले !" परन्तु सोमा से बन न पड़ा। उसे इस प्रकार चलने में अलसट लगती थी। अपनी लजाई हुई आँखें अंधेरे में धनसिंह की ओर झपक और सिमटकर उसने कहा—"ना जी" और परे हट अधिक तेज़ कदमों से धनसिंह के बराबर चलने लगी।

बैजनाथ 'पुन' और 'बिनवा' खड्डों के बीच ऊंची फैली उपजाऊ टेकरी पर बसा हुआ है। पुन खड्ड के पुल से ऊपर चढ़ाई में मोटर की सड़क चक्कर दे दे कर जाती है परन्तु पैदल मुसाफिर पत्थरों की बनी सीढ़ियाँ चढ़ जाते हैं। धनसिंह और सोमा हाँफते हुए सीढ़ियों पर चढ़ रहे थे। अँधकार, सुनसान और ठंडी हवा को चीरता हुआ बैजनाथ के थाने से घड़ियाल के बजने का स्वर सुनाई दिया, सात बज रहे थे ! दूर से तेज चाल से चले आने के कारण और फिर लम्बी सीढ़ियाँ चढ़ने से सोमा और धनसिंह दोनों ही बहुत हांफ गये। तीखी ठण्डी हवा में भी उनके माथे से पसीना बह गया। धनसिंह ने अपनी थकावट से अधिक सोमा का ख्याल कर कहा—"पल भर बैठ लो !"

दूर नीचे खड्ड के सफेद पत्थरों से भरे, बसात में बहने के लिये चौड़े पाट में सिकुड़ी, सिमिटी 'पुन' की जल धारा कल-कल कर रही थी। ऊंचाई पर पास पड़ोस की चेलियों (चीड़ के जंगलों) से

सरसाती वायु बह रही थी। सीढ़ियों की उस ऊंचाई पर धनसिंह और सोमा भी सिमटे सिकुड़े एक दूसरे को छूते हुये बैठे थे। धनसिंह के समीप और स्पर्श से सोमा अब भी सकुचा रही थी और यह भी जानती थी कि अब वही तो एक मात्र सहारा है। कुन्दनसिंह की कड़वी फटकार की स्मृति अब भी धनसिंह के मस्तिष्क में शेष थी परंतु सोमा को बगल में पाकर वह एक प्रकार की सफलता और परिपूर्णता अनुभव कर रहा था। अपनी इस सफलता और पूर्णता के लिये वह सब कुछ करने के लिये तैयार था—"सुनो !" उसने सोमा को सम्बोधन किया और सोमा ने झुका हुआ सिर हिला हामी भरी कि सुन रही है—"आगे पास ही बाजार है। खाने के लिये मिल जायगा। तू बहुत थक गई है। रात यहीं काट देंगे सराय भी है, या किसी दुकान पर चार पैसे किराया देकर खाटें ले लेंगे। और सुन, बाज़ारों के लोग अच्छे नहीं होते। कोई पूछेगा तो यही कहूँगा कि मेरी 'जणास' (मेरी पत्नि) है समझ गई। तू भी यही कहना समझी न ?"

सोमा को इस बात से रोमांच हो आया पर उसने सिर झुका हामी भर ली। अब यह बात बुरी भी नहीं लगी। वह और कह भी क्या सकती थी ?

"घर हमीरपुर की तहसील, बड़सर के थाने में बताना। हम लोग यहाँ मण्डी में रिश्तेदारी में गये थे। यहाँ से मोटर में पालमपुर हो कर घर लौट रहे हैं। धनसिंह ने समझा दिया। वे दोनों बाज़ार की ओर चले।

कुछ मकानों से दियों का धुँधला प्रकाश फैल रहा था। दुकानें प्रायः बन्द हो चुकी थीं। कुछ दुकानों में लालटेनें या मिट्टी के तेल की ढिबरियाँ जल रही थीं। वे अधिक दूर नहीं बढ़ पाये थे कि सड़क पर टहलते लम्बा कोट पहने एक आदमी ने धनसिंह को टोक कर पूछा—"कौन हो, कहाँ जा रहे हो ?"

धनसिंह समझ गया—पुलिस का सिपाही है। एक नज़र भर उसने सिपाही के चेहरे को देखा, कभी सड़क ड्यूटी पर इसे देखा है या नहीं ? पहचान न पाने पर संतोष से उत्तर दिया—"मुसाफिर हैं मालिक !"

"मुसाफिर !"—सिपाही ने गहरी नज़र से, समीप की दुकान से आते लालटेन के प्रकाश में धनसिंह के चेहरे की ओर देखा—"कैसे मुसाफिर ? इस वक्त कहाँ से आरहे हो ?"

"मण्डी से।"

'मण्डी से ? बड़ी लम्बी मंजिल मारी है भाई ! औरत को लेकर चल रहा है, कोई गठड़ी-मुठड़ी, दुजका-उजका (पीठ पर लादा हुआ बोझ) ?"

"जमादार साहब ऐसे ही चले आये ! सामान साथ के आदमी के साथ मोटर में दे दिया है"—धनसिंह ने सोच कर कहा—"पीछे गाँव में रिस्ते में मिलना था मोटर से उतर गये थे।"

"हूँ"—सिपाही ने अविश्वास से पूछा—"यह औरत कौन है ?"

सोमा धनसिंह की ओट में खड़ी थी। जमादार ने धनसिंह को बाँह से पकड़ एक ओर हटा दिया ! सोमा पर लालटेन का प्रकाश पड़ने से उसे ध्यान से देखा। आँखों पर प्रकाश पड़ने से सोमा ने उस ओर पीठ कर ली और माथे का आँचल नीचे खींच लिया। सिपाही ने धनसिंह को फिर एक बार सिर से पांव तक जाँच कर और उसके कोट पायजामे की ओर ध्यान देकर प्रश्न दोहराया—"तू तो बड़ा जंटलमैन है ? क्या करता है ?"

"धर्मशाला में नौकर हूँ !'

"नौकर ? कैसा नौकर भाई ?"

"ऐसे ही हुजूर, एक पंजाबी बाबू के यहाँ चाकरी करता हूँ।"

"यह कौन है ?"

"अपनी घरवाली है हुजूर।"

"हूं"—यहाँ रात कहाँ काटोगे ? कोई रिस्तेदार यहाँ भी हैं ?"

"जी नहीं, कहीं दुकान में, सराय में पड़े रहेंगे हुजूर।"

"ऐसी बात है तो आओ, हमारे साथ ही आओ। थाने में आराम की जगह मिल जायगी।"

"नहीं हुजूर,"—धनसिंह ने हाथ जोड़ कर कहा—"हुजूर की मेहरबानी है, यहीं कहीं पड़ रहेंगे। ग़रीब आदमी हैं।"

"ग़रीब आदमी हैं ? थाने में ग़रीब ही जाते हैं। अमीर आदमी कब जाते हैं ? चलो दोनो।"—सिपाही ने हाथ में थमी छड़ी से हुक्म दिया।

धनसिंह पुलिस की शक्ति और व्यवहार से परिचित था। इस इलाके में वह अधिक नहीं आया था। केवल पूस के महीने से ही वह आलुओं की ढुलाई में इस सड़क पर लारी चला रहा था परन्तु पठानकोट, कांगड़ा, कुल्लू, धर्मशाला और होशियारपुर की लाइनों पर अढ़ाइ बरस ड्राइवर का रोज़गार कर वह पुलिस से परिचित हो चुका था। पुलिस ड्राइवरों से ऐसे ही खेलती है जैसे बिल्ली अपने बस में आये चूहे को जब चाहे दबोच लेती है जब चाहे छोड़ देती है। कानून क्या है ? पुलिस की मर्ज़ी और हुक्म कानून है ? कहने को राज अँग्रेज का भले ही हो परन्तु राज होता है पुलिस का।

होशियारपुर के अड्डे पर सिपाहियों का हर ड्राइवर से एक रुपया माहवार बंधा हुआ था। ऐसे ही पठानकोट, कांगड़ा और धर्मशाला में भी। नहीं तो हर बात में चालान ! और कम्पनी वाले अपनी मोटर का चालान पसन्द नहीं करते। कम्पनी वाले स्वयं भी पुलिस की पूजा करते रहते हैं लेकिन वह बख़शीश और इनाम समझा जाता था। ड्राइवर को सलामी देनी होती थी। जमादार को रुपया माहवार देने से इनकार का मतलब है कि लारी महीने में चार दिन चालान में खड़ी रहे। कभी तेज चलाने का कसूर, कभी दाहिने होने का, कभी बोझ अधिक लादने का ! बोझ अधिक न हो तो भी यदि सिपाही जांच के लिये खड़ा कर ले तो दिन भर टूट गया। पुलिस से बचकर आदमी जा कहां सकता है ? यहां बल या साहस का सवाल नहीं। हाथ छुड़ाकर, धक्का देकर, मार-पीट करके भाग जाये तो कितनी दूर ? दस मील, बीस मील, सौ मील ? पुलिस तो उससे आगे भी है। पुलिस है कहां नहीं ? पुलिस के कोप से बचने का एक ही उपाय है, दीनता ! अपनी कमाई से उनकी पूजा ! यूनियन वालों ने कई बार कहा कि पुलिस को कोई ड्राइवर पैसा न दे ! परन्तु दिये बिना गुज़ारा कैसे चले ? वे मण्डी से आते समय या मण्डी जाते समत, हर बार शराब की तलाशी के लिये मोटर रोक सकते हैं !

धनसिंह बेवस हो सिपाही के साथ चला जा रहा था और सोमा सिर झुकाये उसके पीछे-पीछे। सोमा को पुलिस से कभी सरोकार नहीं पड़ा था परन्तु फिर भी वह जानती थी कि सिपाही (पुलिस) और थानेदार जो चाहें कर सकते हैं, उनसे बड़ी शक्ति कोई नहीं। भगवान हैं, परन्तु उन्हें कभी देखा नहीं। जैसे गाय को हांक कर या रस्सी गले में बांध कर ले जाने से बछड़ा स्वयं पीछे-पीछे चलता है, वैसे ही सोमा धनसिंह के पीछे-पीछे चल रही थी।

धनसिंह का दिल धड़क रहा था परन्तु वह प्रकट में साहस बनाये था। वह खुशामद करता जा रहा था—"जमादार साहब, मेरी सास सख्त बीमार है इसलिये मैं मंडी से अपनी औरत को लेने आया था। मेरा पहुँचना बहुत जरूरी है। आप मंडी में। हमीरपुर में तहक़ीकात कर लीजियेगा। हमें जाने दीजिये !"

सिपाही ने भी तसल्ली दी—"कोई बात नहीं। घबराने की क्या बात है ? थानेदार साहब के सामने कह देना। हम तो भाई नौकर हैं। हमारे बस में क्या है ?" दूसरा उपाय न देख धनसिंह ने कहा–"जमादार साहब, आप मालिक हैं। मैं बहुत ग़रीब आदमी हूं। सरकार ग़रीब की इज्ज़त मिट्टी मे मिल जायगी।"—जेब से दस रुपये का नोट निकाल उसने जमादार साहब के हाथ में दे दिया।

जमादार हंस दिया—"वाह रे बड़ा भोला है ! दस रुपये में औरत भगा ले जायगा।"—और नोट लेने से इनकार कर दिया। धनसिंह की जेब में जो कुछ था उसने निकाल दिया परन्तु जमादार ने दो गालियां देकर कहा—"अबे··· किसे उल्लू बनाता है ?"

धनसिंह के मन में आया कि सिपाही का गला दबा दे या समीप पड़े पत्थर से उसका सिर तोड़ दे परन्तु इतना कर लेने पर भी बच न सकता था। सिपाही केवल साढ़े तीन हाथ का एक आदमी ही तो नहीं, वह तो सरकार है। धनसिंह ने अपनी टोपी उतार कर सिपाही के पांव पर रख दी। यह शक्ति और सत्ता के सामने आत्मसमर्पण था परन्तु सिपाही पिघला नहीं। धनसिंह अकेला होता तो उस अंधेरे में भाग खड़ा होता परन्तु सोमा को कैसे छोड़ जाता। सिपाही के साथ-साथ उन लोगों ने थाने के

फाटक में प्रवेश किया। धनसिंह को जान पड़ा, जैसे मनुष्यों के लिये बनी 'चूहेदानी' में वह और सोमा आ फंसे हों जहाँ से निकल सकने का कोई उपाय न हो। उसके मन ने एक बार चेतावनी दी कि इस पिंजरे में पांव न रखे परन्तु सोमा के साथ जाना आवश्यक था। अपमान, मारपीट और जेल की आशंका से उसका हृदय कांप रहा था।

थाने के चौड़े आंगन में सामने के बराम्दे में एक पलंग पर स्थूल काय दारोगा साहब, शरीर कम्बल से ढंके लेटे हुए थे। वे एक बड़ा सा नेचा गुड़गुड़ा रहे थे। पलंग के समीप एक अंगीठी में कोयले दहक रहे थे। पलंग के दोनों ओर दो स्टूलों पर हरिकेन लालटेनें प्रकाश फैला रही थीं! ड्यूटी का सिपाही उनकी पिंडलियाँ सहला रहा था। एक सिपाही को एक औरत और मर्द लिए इस समय थाने में चले आते देख उन्होंने गले में इकट्ठी हुई चरबी से घर-घराते स्वर में गाली से बात आरम्भ कर पूछा—"यह मादर"'इस वक्त क्या बला पकड़ लाया हरिराम ?"

धनसिंह और सोमा को आंगन में ही खड़ा कर हरिराम ने बराम्दे से नीचे ही खड़े हो एक सलूट किया और फिर पलंग के समीप जा, धीमे स्वर में बोला—"हुजूर यह रांघड़ (राजपूत) एक पट्ठी भगाये लिये जा रहा है ?"

दारोगा साहब ने लेटे ही लेटे सुना और नेचे से धीमे-धीमे कई कश ले सुस्त सी आवाज़ में पूछा—"पट्ठी है कि खांसड़ ?"

"हजूर बिलकुल पठोरी है नयी! कहता है, मेरी जणास है! हुजूर उसके नाक में न बुलाक है न कील! अभी ताज़ी रांड हुई मालूम होती है। मर्द लड़ाई पर मरा होगा! मर्द के मरने की खबर सुनी और साली भाग चली!"

धनसिंह के सतर्क कानों ने सुना और उसके हृदय की गति बढ़ गई।

दारोगा साहब के पांव दबाने वाले सिपाही ने आगन्तुकों को ओर घूम कर ऊंचे स्वर में पुकारा—"इधर आ जाओ, बराम्दे में!"

सोमा धनसिंह की आड़ में खड़ी थी। उसके बराम्दे की ओर

बढ़ने पर वह भी पीछे पीछे चली और फिर उसकी आड़ में ही सिर झुकाए खड़ी रही।

दरोगा साहब ने धनसिंह को सम्बोधन किया—"यह औरत कौन है वे!"

—"मेरे घर की है हुजूर!"

—"हूँ, कौन लोग है?"

—"राजपूत हुजूर!"

—"इसके नाक का बुलाक कहां गिर गया?"

—"हुजूर",—अटक कर धनसिंह ने कहा—"हुजूर साह के यहां गहने (गरवी) रख दिया है, ग़रीब आदमी हैं, हुजूर!"

"अबे इसे ही रखा देता! देखें!"—दरोगा साहब ने करवट धनसिंह की ओर बदली!

सिपाही नफ़ीस ने स्टूल पर रखी लालटैन उठाली। उसने धनसिंह को बांह से थाम एक ओर हटा लालटैन सोमा के चेहरे के पास कर दी। सोमा ने लज्जा और झेंप से मुंह फेर, माथे का आंचल और नीचे खींच लिया।

"अरे, ऐसे शरमाएगी तो कैसे चलेगा?"—दरोगा साहब बोले—"देखें तो सही, है कौन?"

नफ़ीस ने सोमा की पीठ पीछे से ओढ़नी खींचली। सिर उघड़ जाने से वह लाज के मारे मुंह हाथ में छिपा बैठ गई और सिर घुटनों में छिपा लिया। धनसिंह अपने आप में न रह सका। एक ज़बरदास्त घूंसा उसने नफीस की गर्दन पर मारा। लालटेन नफीस के हाथ से छूट कर दूर जा पड़ी। दूसरे ही क्षण हरिराम नफ़ीस और जवाहर तीनों सिपाहियों ने हाथ के डंडों और पांव के जूतों से धनसिंह को गिरा दिया। सोमा चीख मार कर धनसिंह की रक्षा के लिये आगे बढ़ी। करीम ने उसे कलाई से पकड़, गाली दे पीछे धकेल दिया।

दरोगा साहब के हुकुम से धनसिंह की मरम्मत कर उसे हवालात में बन्द कर दिया गया। सोमा बराम्दे में बैठी आंचल से मुंह ढंके सिसकती रही। इस घटना से दरोगा साहब की तबीयत

खिन्न हो गई। पंजाब से उनकी बदली अभी हाल ही इस इलाके में हुई थी। उनका परिवार अभी पंजाब में ही था। यहाँ उनका मन न लगता था। जब खिन्न होते तो इस इलाके को कोसने लगते और बहुत सी पी लेते। इस घटना से उनका मन फिर वैसा ही हो गया। विक्षिप्त स्वर में बोले—"माँ के……ने तबीयत खराब कर दी। मुल्क ही साला, भैन……ऐसा है निरा बीयाबान! न कोई तफ़रीह, न कोई सोसायटी! सिपाही जवाहर ने खुशामद में समर्थन किया—"हुजूर, पंजाब के क्या कहने! यह तो बड़ा ग़रीब मुल्क है।"

"छः बजे शाम से तो भैन……यहाँ रात पड़ जाती है। करे क्या आदमी? सो कर दिन काटो तो रात नहीं कटती। साले जवाहर तू यह लाया भी क्या है? भैन……बिलकुल पानी! साले ठेकेदार को कल पकड़ कर लाओ, पानी मिला कर बेचता है।"

जवाहर ने सफ़ाई दी—"हुजूर के सामने ही मोहर तोड़ कर डाट खोली थी। हुजूर विलायती में वो बात कहाँ? विलायत वाले तो साले पानी के पैसे लेते हैं? वो तो हुजूर देसी खिंची हुई है कि मादर……घूंट गले के नीचे उतरे और आदमी गुब्बारा हो जाय।"

करीम ने दारोगा साहिब के कष्ट की सहानुभूति में कहा—"जवाहर, हुजूर को थोड़ी और डालदे न।" दरोगा साहब को इनकार न करते देख जवाहर मुंशीखाने से बोतल और गिलास उठा लाया।

दारोगा साहब सोमा की ओर देख कर बोले—"अरी, अब बस कर! रोती ही जायगी? हो गया……रोना! अच्छा, तेरे आदमी को मिला देंगे, रोना बन्द कर!"—उन्होंने अंगड़ाई ले हरिराम को आँख के संकेत से कहा—"हरिराम, तू समझा भाई इसे पानी वानी दे, मुंह धुला! कुछ खाती-पीती हो तो खिला-पिला दे। इसे ज़रा उधर लेजा कर, समझा-बुझा, कब तक रोती रहेगी!" हरिराम सोमा को बाँह से थाम पुचकारता हुआ बरामदे से परे ले गया।

जवाहर ने लालटैन की रोशनी में दारोगा साहब को दिखा कर गिलास में उड़ेली और उनकी आज्ञानुसार ज़रा कम पानी

डाल गिलास उनके हाथ में थमा दिया। दारोगा साहब ने घूंट भर कर कहा—"यह नेचा भी तो कमबख्त सो गया है, इस भैन······ को भी ज़रा जगा।"—वे फिर उस उजाड़ इलाके को कोसने लगे।

करीम दारोगा साहब के ज़िले का होने के कारण मुंह लगा था। खुशामद में बोला हुजूर—"तमाम इलाका रांडों से भर गया है। यह इस महीने तीसरा केस है! हुजूर पंजाब में भी औरत का क्या अकाल है? जाट ऐसी-ऐसी औरतें भगा कर ले जाते हैं कि हुजूर, कोई आदमी देखे तो मुंह फेर ले। इस महीने यह तीसरा केस है लेकिन बस यही एक औरत है कि कुछ समझ में आई है! ···यहां का आदमी हुजूर कुछ अजीब हैं? जंग से नहीं डरता, भेड़ बकरी की तरह भरती होकर जाता है लेकिन सरकार एक घुड़की से इनका पेशाब खता हो जाता है।"

दारोगा साहब ने एक बड़ा सा घूँट निगल कर कहा—"तू नहीं समझता यहां का आदमी डरपोक नहीं है बेवकूफ़ है। भैन··· ···तोप से नहीं डरता, कानून से डरता है; क्योंकि कानून को समझता नहीं।"

"हुजूर पठान को देखिए, साला किसी से नहीं डरता।"

"वो दूसरी बात है। उधर का आदमी जरायमपेशा है। उसकी जिंदगी जुर्म पर है। सूखा इलाका है। लूट, मार, चोरी न करे तो करे क्या? यहाँ का इलाका सरसब्ज़ है। यहाँ का आदमी अमन चाहता है इसलिए डरता है·······? गुण्डा कभी नहीं डरता, सफ़ेद पोश हमेशा डरता है।"

नफीस नेचा ताज़ा कर ले आया था। उससे कश ले दारोगा साहब ने कहा—"अब कुछ ठीक है। नफ़ीस, जा तू अब आराम कर! आज रौंद में किसका ड्यूटी है?"

हरिराम ने अपनी ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए सलूट कर कहा—"हुजूर मेरी?" दारोगा ने उसे उत्तर दिया—"हूं, तो तू ठहर।"

सिपाही जवाहरसिंह मुंशी ड्यूटी पर था। वह भी दीवार के साथ पीठ लगाये बैठा जम्हाइयां ले रहा था। उसकी ओर देख दारोगा साहब बोला—"क्या आदमी हैं इस इलाके के! सूरज

हुआ नहीं कि जंगली जानवरों की तरह मांद में घुस जाना चाहते हैं, जाओ मुंशी तुम भी जाओ !"

"हुजूर आराम नहीं करेंगे ?" जवाहर ने पूछा।

"आराम कहां है ?"—दारोगा बोले—"यहाँ पड़े हैं, घर जाकर भी पड़ रहना है।"

हरिराम ने सोमा को मुंह धुला कर बराम्दे के एक कोने में बैठा दिया था। वह घुटनों में सिर झुका इंटों के फर्श पर दृष्टि लगाये चुप बैठी थी। जब तब सिसकी से उसका शरीर तनिक हिल जाता। उसकी ओर संकेत कर जवाहर ने कहा—"हुजूर, यह यहीं रहे कि हवालात में बन्द कर जाऊं ?...इन लोगों का अन्दराज़ कल की तारीख में ही हो जायगा हुजूर ?"

"हो जायगा"—दारोगा ने उपेक्षा से उत्तर दिया—"करीम बैठा है, कर देगा या कल हो जायगा।" जवाहरसिंह ने हवालात की चाबियां स्टूल पर लालटैन के समीप रख दीं और झुक कर सलाम कर चल दिया।

अगले दिन दारोगा साहब दोपहर के बाद थाने में तशरीफ़ लाए। रपट लिखाने के लिये पाँच-सात आदमी बैठे हुये थे। मुंशी ने समीप आकर कहा—"हुजूर, उस लड़की का ससुर केहर राजपूत मंझेरा चौकीदार को साथ लेकर रपट लिखाने आया है ! कहता है; कल दोपहर से उसकी विधवा बहू लापता है।

"क्या कहता है ?"—दारोगा साहब ने प्रश्न किया।

"हजूर मैंने कहा, कुछ खर्च करो तो सिपाहियों को तहकीकात के लिये दौड़ायें ! किस पर शक है ? कहता है, जेवर लेकर भागी है। मैं गरीब आदमी हूँ। मेरे लड़के सरकार में नौकर हैं। बस दो रुपये दिखा रहा है।" दारोगा साहब ने सुनने की स्वीकृति में हुंकारा भरा और दूसरे काम में लग गये।

दिन भर प्रतीक्षा कर सूरज डूबते समय केहर ने पांच रुपये रपट लिखाई दी। उसका बयान लिख लिया गया। उसे हिदायत मिली की तहक़ीक़ात की जायगी और कुछ पता लगने पर उसे

सम्मन भेज दिया जायगा। तीसरे दिन सवेरे धनसिंह और सोमा के पकड़े जाने की रपट रोज़नामचे में लिखी गई।

*　　　*　　　*

केहरसिंह पांच दिन बाद थाने से सम्मन पाकर फिर बैजनाथ की तहसील में हाज़िर हुआ। हथकड़ी पहने धनसिंह को सोमा सहित तहसीलदार साहब के इजलास में पेश किया गया। धनसिंह को देख सोमा रो पड़ी और सोमा को देख धनसिंह की आंखों में आंसू आ गये। धनसिंह सात दिन की हजामत ठोड़ी पर लिये था और उसका रंग पीला पड़ गया था, जैसे बीमार जंगली चूहा हो। सोमा ऐसी दुबली और पीली हो गई थी जैसे लम्बे फाके और बुखार के बाद उठी हो। मुद्दई केहरसिंह ने उसे पहचान लिया। केहरसिंह की पैरवी के लिये एक मुख्तार साहब बड़ी सी पगड़ी बांधे, आंखों में काजल लगाये और बन्द गले का कोट पहने हाज़िर थे।

केहरसिंह ने बयान दिया कि उसकी बहू घर का जेवर लेकर भागी है। बहू को उसने छः सौ रुपये में खरीदा था। गवाही के लिये मन्नू साह मौजूद था। उसे एक रुपया सफर और खुराक खर्च देकर तलब किया गया था।

केहर का दावा था अभियुक्त ने उसकी बहू को भगा करके उसकी इज्जत बिगाड़ी है। उसे बिरादरी में शामिल होने के लिये पांच सौ रुपया खर्च करके जग करना पड़ेगा। अदालत उसे अभियुक्त से हर्जाना दिलाये। सोमा को वह घर वापिस ले जाने के लिये तैयार नहीं था क्योंकि उसका ईमान बिगड़ चुका था।

पुलिस को सोमा पर दया आ गयी थी। उन्होंने उसे समझा दिया था कि धनसिंह को बचाना चाहती है तो बयान दे कि ससुर के घर में उस पर मार पड़ती थी और खाना नहीं मिलता था। पिछली रात सास-ससुर ने उसे मण्डी ले जाकर बेच देने का फैसला किया था। इस डर से जब वह सुबह बावड़ी से पानी लेने के लिये गई तो भाग निकली। धनसिंह उसे सड़क पर मिल गया। उसने धनसिंह से मण्डी का रास्ता पूछा था और उसके साथ-साथ मंडी चली गई। धनसिंह को ससुर के घर की अपनी मुसीबत बतलाई

तो उसने हमदर्दी से कहा—"मेरे घर चली चल। वहां बड़ी-बूढ़ी औरतें भी हैं। तू उन्हीं के साथ रहना।" एक रात दोनों मंडी की सराय में रहे फिर वैजनाथ आ गये। पुलिस के सिपाही ने दोनों को देखा और थाने में ले गया। वह ससुर के साथ नहीं जायगी चाहे काट कर उसके टुकड़े कर दिये जायं।

धनसिंह और सोमा को गिरफ्तार करने वाले सिपाही हरिराम ने बयान दिया—"थाने में इत्तला थी कि मझेरा गांव से एक राजपूत की विधवा बहू भागी है। इसलिये मैं रौंद की ड्यूटी पर बहुत चौकस था। रात पड़ने के बाद मैंने मुजरिम को एक औरत के साथ आते देखा। औरत की नाक में गहना न होने से मुझे ख्याल हुआ कि वह बेवा है। मुजरिम से मैंने औरत के बारे में सवाल किया। जब उसने बेवा को अपनी घर वाली बताया तो मुझे शक हो गया और मैं दोनों को थाने ले गया। बाद में राजपूत केहरसिंह को इत्तला दी गई और उसने अपनी बहू को पहचान लिया। गिरफ्तारी के वक्त मुजरिम या औरत के पास कोई रकम या गहना नहीं पाया गया। मुजरिम की जेब में मुतफरिक रेज़गारी मिला कर दो रुपया साढ़े नौ आने था जो थाने में जमा कर दिया गया।"

अदालत के सामने सोमा के बयान में मंडी जाने की बात सुन धनसिंह समझ गया कि यह पुलिस की सिखाई हुई बात है। सिपाही हरिराम ने हवालात में उसे भी ऐसा बयान देने के लिये कहा था और समझाया था कि ऐसा बयान देने से ही छूट सकता है, नहीं तो सात बरस की सजा हो जायगी।

सोमा के बयान से यद्यपि यह साबित नहीं हुआ कि धनसिंह बेवा को उसके घर से बहका कर लाया था फिर भी अदालत के सामने इस बात का काफ़ी सुबूत था कि अभियुक्त ने राह चलती औरत को बहकाने की कोशिश की। भागने वाली औरत की इत्तला उसने मण्डी के थाने में नहीं दी बल्कि चोरी से उसे भगाये लिये जा रहा था। खास कर थाने में अपना गलत हुलिया देने से उसकी बदनीयती का सुबूत मिलता था। अदालत ने रहम कर उसे सिर्फ छः महीने की सज़ा दे दी।

अदालत के सामने कठिन प्रश्न यह था कि कम आयु विधवा को किसके हवाले करे? सोमा ने कहा—"चाहे हंसिये से उसका गला काट दिया जाय, वह मायके नहीं जायगी। जिस बाप ने उसे बेच दिया, उसके यहाँ वह क्यों जाय? न वह ससुर के घर जाने को तैयार थी। ससुर भी उसे घर लिवा ले जाने के लिये तैयार न था। सोमा धनसिंह के ही साथ जाना चाहती थी। उसने रो-रो कर कहा कि उसे धनसिंह के साथ ही जेल भेज दिया जाय। नादान औरत क़ानून नहीं जानती थी। बिना सज़ा पाये कोई जेल नहीं भेजा जा सकता। जेल में मर्द और औरत एक साथ नहीं रह सकते। वह अदालत की दीवार से सिर पटक रोती रही।

आर्यसमाज के मन्त्री चौधरी निर्भयराम का ज़िले भर में नाम था। उन्होंने बीसियों भगाई हुई स्त्रियों की रक्षा की थी; कइयों को वापिस उनके घर पहुँचाया था, कइयों को बदमाशों के चंगुल से बचा कर विधवाश्रम पहुंचाया था; कुछ के विवाह भी वैदिक रीति से करा दिये थे। अदालत ने चौधरी निर्भयराम को बुलवा कर सोमा का प्रबंध कर देने के लिए कहा।

सोमा कुछ समझ नहीं सकी कि अदालत का न्याय क्या है? जिस मनुष्य के साथ वह जाना और रहना चाहती थी, अदालत और लोग उसके साथ जाने से उसे रोकते थे। जिसे वह जानती-बूझती नहीं थी, उसके साथ जाने के लिये उसे मजबूर किया जा रहा था। माथे पर हाथ रख और गहरा सांस ले उसने एक ही बात समझी, जो कुछ वह चाहती है, वह नहीं हो सकता। इससे पूर्व उसके लिये चाहने का कोई अवसर ही न आया था और न उसने चाहने का साहस ही किया था। अब परिस्थितियों ने एक बार चाहने-चुनने के लिये उसे विवश कर दिया तो जो उसने चाहा या चुना है, वही करेगी; चाहे जो हो। उसे अदालत, पुलिस, चौधरी निर्भयराम सब पर संदेह था कि लोगों ने मिल कर उसे बेच डाला है। वह धनसिंह को छोड़ चौधरी साहब के साथ जाने के लिए तैयार न थी परन्तु जब पुलिस के सिपाही धनसिंह को रस्सी से बाँध कर मोटर में बैठा कर धर्मशाला ले गये और वह रोती-पीटती सड़क पर खड़ी रह गयी तो चौधरी साहब के साथ चले जाने के सिवा और उपाय न था।

चौधरी निर्भयराम ने सोमा के सिर पर हाथ रख कर पुचकारा और बेटी सम्बोधन कर साथ ले गये। जब वे उसे फूट-फूट कर रोते देखते तो सान्त्वना देते, बेटी ऐसे क्यों घबराती हो; छः महीने की ही तो बात है। छः महीने तो छः दिन में कट जाते हैं! धनसिंह कहीं दूर थोड़े ही जा रहा है। यहीं धर्मशाला में रहेगा। छः महीने बाद आ जायगा। जब सोमा को कुछ शान्त देखते तो समझाने लगते—बेटी; ऐसे जिन्दगी खराब करने से क्या फायदा! मर्दों के पीछे भागना भले घर की लड़कियों का काम नहीं है। किसी अच्छे रसे-बसे भले आदमी से तेरा व्याह करा देते हैं। उन्होंने पंजाब के एक स्कूल मास्टर को, जिसकी पहली स्त्री दो बच्चे छोड़ कर मर गई थी, तारीफ़ और ज़िक्र किया। इस बात पर सोमा को फिर रोते देख उन्होंने दो-अढ़ाई सौ पाने पाने वाले किसी स्टेशन मास्टर की बात की जिसके पास काफी जायदाद भी थी और समझाया भी कि पंजाब के लोग पहाड़ के लोगों की तरह संकीर्ण नहीं है। यहां शरीफ और अमीर विधवाओं का भी विवाह होता है लेकिन सोमा रोने लगती और कहती कि विधवा का विवाह उसने कभी सुना ही नहीं। जो बात उसकी जात में कभी नहीं हुई, वह कैसे करे?

चौधरी निर्भयराम ने सोमा के रहने का प्रबन्ध कांगड़े के एक दूसरे आर्य समाजी सज्जन, लाला गोपीचन्द सराफ़ के यहां कर दिया। लाला जी ने भी सोमा को पहली भूल भुलाकर, विधवा-विवाह कर धर्म से रहने का उपदेश दिया। उन्हें आशा थी कि लड़की कुछ दिन में राह पर आ जायगी परन्तु उनके घर की स्त्रियों ने घर में सोमा का रहना कठिन कर दिया। वे ऐसी पतित स्त्री को पानी का घड़ा या कोई दूसरी चीज़ छूने न देतीं।

लाला जी ने घर की स्त्रियों को समझाया कि जो हो यह लड़की हिन्दू है। इसे घर में नहीं रखेंगे तो वह किसी मुसलमान के हाथ पड़ जायगी, धर्म से जायगी और जात से भी! लेकिन उनके घर की बूढ़ी स्त्रियों को शेष हिन्दू स्त्रियों के जाति-धर्म की अपेक्षा अपने व्यक्तिगत स्वर्ग और पुण्य से ही अधिक प्रयोजन था। उन्हों ने सोमा को अपने यहां रहने न दिया।

चौधरी निर्भयराम ने सोचा, धर्मशाला ज़िले का मुख्य स्थान होने और वहाँ पढ़े लिखे पंजाबियों की बस्ती होने के कारण कांगड़े की अपेक्षा अधिक शिक्षित और उदार लोगों की जगह है। वहाँ सोमा के लिए कुछ दिन किसी भले गृहस्थ के यहाँ प्रबन्ध हो जाय। फिर या तो किसी से उसका विवाह करा देंगे या पंजाब के किसी विधवाश्रम में उसे भेज दिया जायगा। चौधरी साहब, लाला गोपीचन्द और दूसरे हिन्दू समाज सेवक सोमा के मुसलमानों या ईसाइयों के हाथ जा पड़ने की आशंका से तो दुखी थे लेकिन कोई सद्गृहस्थ भागी हुई औरत को अपने घर में जगह देने के लिये तैयार न था। आखिर एक उदार वकील साहब के यहाँ, जहाँ छूत-छात की असुविधा न थी, उसे रखा गया। यहाँ पास पड़ोस की स्त्रियाँ कौतूहल से सोमा को देखने के लिए इकट्ठी होने लगीं। वे एक दूसरी को सुना-सुना कर भय और आतंक से हाथ फैला कर कहतीं—"हाय मैं मर गई, कैसी दिलेर औरत है ; अपनी मर्ज़ी के मर्द के साथ जाने को कहती है?" कोई लाज से नाक पर हाथ रख कहती—"मर जाए ऐसी बेहया, यह भी क्या औरत है?" कुछ जेल जाने वाले मर्द की औरत को देखने के लिये आ जुड़तीं। एक ही मास में वकील साहब इस तमाशबीन भीड़ से घबराने लगे। उन्होंने कह दिया कि उनके घर की जवान लड़कियों पर भागी हुई स्त्री की संगत का अच्छा प्रभाव नहीं पड़ेगा, इसलिये वे विवश थे।

धनसिंह के जेल से छूटने में अभी चार मास शेष थे। दो मास तक उपदेश पाकर भी सोमा धनसिंह को छोड़ विधवा विवाह कर भली औरत बन जाने के लिये तैयार न हुई। समाज के हित और सदाचार की चिन्ता करने वाले सज्जनों ने सोचा,—बदमाश ड्राइवर धनसिंह के छूटते ही यह औरत फिर उसके पास जायगी, व्यर्थ वावेला होगा; उचित यही होगा कि उससे पहले ही इसे पंजाब के किसी विधवा आश्रम में भेज दिया जाय! अब प्रश्न यही था कि पंजाब जाने वाला ऐसा कोई विश्वासपात्र व्यक्ति हो जो सोमा को सुरक्षित पहुँचा दे।

चौधरी साहब धर्मशाला में कोतवाली बाज़ार के मोटरों के अड्डे के पास से गुजर रहे थे। उनकी नज़र कामरेड भूषण पर

पड़ी। उसे सम्बोधन कर चौधरी साहब ने पूछा—"कहो, क्या नीचे (पंजाब) जा रहे हो?"

अपने पिता के मित्र और सम्मानित चौधरी साहब को देख कर कामरेड ने न तो अपने हाथ का सिगरेट ही फेंका और न कांगड़े की प्रथा के अनुसार गुरुजन के चरण स्पर्श के लिये झुकने का कष्ट उठाया। सीधे ही उसने प्रश्न किया—"कहिये चाचाजी, क्या कुछ काम है?" इस अभद्र व्यवहार के बावजूद चौधरी साहब भूषण को विश्वास योग्य व्यक्ति समझते थे। वे जानते थे, भूषण का सम्बन्ध पंजाब आने-जाने वाले लोगों से रहता है। उन्होंने सोमा की सम्पूर्ण कहानी कह सुनाई और उसे किसी तरह लाहौर या फिरोजपुर पहुंचा देने के लिये प्रबन्ध करने का अनुरोध किया।

"वह कहां जाना चाहती है?"—भूषण ने पूछा।

"वह कहां जाना चाहती है?" चौधरी साहब परेशानी से बोले—"वह तो उसी बदमाश के पास जाना चाहती है। उसके चार एक महीने जेल से छूटने को हैं। उस से पहले ही यह यहाँ से चली जाय तभी कल्याण है, यहाँ उसे रखें भी कहाँ?"

"तो जाने दीजिये न उसी के पास"—कामरेड को इतनी निर्लज्ज बात कहते भी संकोच न हुआ। चौधरी साहब ने दुखी होकर कहा—"अब तुम लोगों का समय आया है तो यही हुआ करेगा। परन्तु हम लोग तो ऐसा अनाचार नहीं देख सकते। और अभी चार महीने उसे रखेगा कौन? कोई भला आदमी ऐसी सरकश औरत को अपने परिवार की स्त्रियों में कैसे रख सकता है?"

चौधरी साहब की खिन्नता की अवहेलना कर भूषण ने आग्रह किया—"चाचा जी, जो मर्द-औरत एक साथ रहना चाहते हैं, उन्हें जबरदस्ती दूर रखियेगा तो वे मिलने की चेष्टा में बदमाश बनेंगी ही। उन्हें एक साथ रहने दीजिये बदमाशी खतम हो जायगी!......आखिर उसे किसी मर्द के हवाले करियेगा ही? जिसे वह चाहती है, वही क्या बुरा है?"

"अरे भाई ब्याह भी तो कोई चीज है"—अपनी लाठी का

सहारा लेते हुए चौधरी जी ने समझाया—"आखिर हमारे ऋषियों और शास्त्रों ने कुछ सोच समझ कर ही तो यह सब बनाया था !"

"उसी से ब्याह कर लेगी"—कामरेड ने बात काट दी और पूछा—"तब तक उसके ठहरने के लिये इन्तजाम मैं कर दूं ?" चौधरी जी के चेहरे पर सन्देह और विस्मय का भाव देख, उनके कुछ कह सकने से पहले ही कामरेड ने कहा—"लाला ज्वाला-सहाय की कोठी पर प्रबन्ध करा दूं ? वे सम्मानित बजुर्ग हैं। उन पर तो विश्वास कीजियेगा ?"

३

भद्र समाज—

लाला ज्वालासहाय सरोला धर्मशाला में आ कर बस गये पंजाबियों में चोटी के आदमी थे। उनका ठेकेदारी का कारोबार ज़िले भर में फैला हुआ था। जंगल की लकड़ी के ठेके, पुल और सड़क बनाने के ठेके, युद्ध के समय विदेश से आये युद्ध के कैदियों के कैम्प बनाने के ठेके, सभी काम वे करते थे। स्वयं वे मध्यम स्थिति के मध्ययुगी पंजाबी व्यापारी के ढंग से ही रहना पसन्द करते थे परन्तु उनकी सन्तान ने पश्चिमीयता और आधुनिक विचारों और जीवन का ढंग बहुत अधिक अपना लिया था। उनका तीसरा पुत्र विलायत जाकर शिक्षा पा आया था। चार पुत्रों के पश्चात एक ही कन्या उनके घर हुई थी और बहुत ही लाड़ली थी। मनोरमा लाहौर कालेज में एम० ए० में पढ़ रही थी और विलायत जाने का अरमान रखती थी।

मनोरमा पतलून पहने, नंगे सिर, खूब बड़े कुत्ते को चमड़े की रस्सी से थामे, लाठी लिये, सूनी सड़कों पर सैर करती फिरती थी। धर्मशाला के पहाड़ी लोगों ने कभी उसकी आलोचना नहीं की। अपने ज़िले और बिरादरी की किसी लड़की को इस रूप में देखकर शायद पहाड़ी लोग उसका सिर काट लेने के लिये तैयार हो जाते परन्तु मनोरमा की वे प्रशंसा करते थे, लड़की कितनी साहसी है ? किसी से डरती नहीं ! यह बहुत कुछ वैसे ही था जैसे अंग्रेजी राज्य में दूसरे के पुत्र को देशभक्ति के अपराध में जेल जाते या फांसी चढ़ते देख भारतवासी उसके नाम की जय पुकारते थे और स्वयं अपनी सन्तान को यह सब करते देख दुख और विवशता से माथा पीट लेते थे।

मनोरमा, मनोरमा की मां और भाबी के कभी एक साथ बाजार में निकलने पर सामाजिक परिवर्तन की तीन पीढ़ियां उनके परिवार में एक साथ दिखाई देती थीं। मां जी काले रेशम का भारी लहँगा पहने सिर पर मलमल के दो दुपट्टे जोड़ कर आधे बालिस्त का घूंघट खींचे और पांव में सलीपर पहने चलतीं। ज्वालासहाय जी के बैरिस्टर पुत्र की पत्नी रेशमी साड़ी का आँचल सिर पर रखे, बिना घूंघट किये और नीची एड़ी का जूता पहने चलतीं और लड़की मनोरमा गर्दन पर भारी जूड़ा सम्भाले, नंगे सिर, ढीली पतलून पहने और कन्धों से बटुआ लटकाये दिखाई देती।

भूषण और मनोरमा का लाहौर से ही परिचय था। भूषण कांगड़ा ज़िले का रहने वाला था और कालिज की शिक्षा के लिये लाहौर में रहता था। चार वर्ष पूर्व जब मनोरमा के बैरिस्टर भाई जगदीशसहाय और भूषण बी० ए० में पढ़ रहे थे, मनोरमा भी कालिज में दाखिल हो गई थी। भूषण और जगदीश में विचारों का मेल और परस्पर गहरी मित्रता थी। वे कम्युनिस्ट विचारों का प्रचार करने के लिये इधर-उधर से पुस्तकें ला कर विद्यार्थियों को पढ़ाते थे और कभी-कभी मार्क्सवाद की व्याख्या के लिए क्लास भी लगाते थे। मनोरमा भी भाई की संगति से इन क्लासों में सम्मिलित होती थी।

जगदीश बी० ए० पास कर विलायत चला गया। भूषण लाहौर में ही एम० ए० में पढ़ता रहा। उसका मनोरमा से मिलना-जुलना जारी रहा। मनोरमा विद्यार्थी संघ (Student Federation) में भाग लेने लगी। लाला ज्वालासहाय लड़की की इस उग्रता के लिये चेतावनी भी देते रहते और मन ही मन उसके साहस और योग्यता के लिये प्रसन्न भी होते।

भूषण को दर्शन-शास्त्र में सम्मान सहित एम० ए० पास कर एक बैंक में क्लर्क बनना पड़ा। वह बैंक की नौकरी और कम्युनिस्ट पार्टी का काम साथ-साथ करने लगा। दोनों काम एक साथ चल नहीं पा रहे थे। भूषण ने अपने आप को इस बैंक के अयोग्य पाया। १६३६ में योरुप में युद्ध छिड़ने पर भारत के अंग्रेज शासकों ने भारत को भी युद्ध में घसीट लिया। भारत के राजनैतिक रूप से सचेत लोग सरकार के इस निर्णय का विरोध कर रहे थे।

भूषण को बैंक के काम की अपेक्षा भारत को युद्ध में घसीटे जाने का विरोध अधिक आवश्यक जंचा। वह रोजगार छोड़ सार्वजनिक राजनैतिक काम में लग गया। कांगड़े के दिहात में रहने वाले, भूषण के माता-पिता लड़के को यथासाध्य लाहौर में पढ़ा कर आशा बाँधे थे कि पढ़ाई समाप्त करते ही लड़का बहुत बड़ा अफसर बन जायगा। लड़के के सोलह वर्ष तक पढ़ कर पचहत्तर रुपये की नौकरी पाने से यों ही उनका दिल टूट रहा था; उसके यह नौकरी भी छोड़ देने से उनकी दृष्टि में लड़का बिलकुल निकम्मा और आवारा हो गया। जिस सरकार की नौकरी और सेवा करके लोग बड़े बनते हैं, उसका विरोध करने का परिणाम और होता भी क्या ?

मध्यम श्रेणी के गृहस्थ नागरिकों पर परिवार जीविका, निर्वाह की सैकड़ों जिम्मेदारियाँ रहती हैं। भूषण तथा उसके साथियों को देश की आज़ादी और युद्ध विरोधी आन्दोलन चलाने के लिये केवल विद्यार्थी समाज ही मिल सकता था। इस सिलसिले में वह अब भी सरोला साहब के बंगले पर मनोरमा से मिलने आता रहता। मनोरमा संघर्ष में अधिक भाग न ले सकने पर भी भूषण का विशेष आदर विश्वास करती थी।

जगदीश सहाय सरोला बैरिस्टर बन कर इङ्गलैण्ड से लौट आये थे। भूषण को उसके आने पर एक कर्मठ साथी का सहयोग मिलने की आशा थी परन्तु अब बैरिस्टर को लाहौर की अस्वास्थ्यकर सड़कों की धूल फांकना और असंस्कृत भीड़ से कंधे रगड़ना पसन्द न आया। इङ्गलैण्ड में रहते समय जगदीश सरोला ने जीवन के जिस नये पहलू और बौद्धिक संतोष का परिचय पाया उसका प्रभाव उन पर गहरा पड़ा था। उसके विचार समाजवादी सिद्धान्तों और दर्शन की भूल-भुलैय्या में गहरे उतर गए। वह सार्वजनिक काम की अपेक्षा ट्राट्स्की और लेनिन के विचारों की तुलना करने में ही अधिक संतोष पाता। वह दोनों की शैली और तर्क की तुलना करता। यह बहस ही उसके लिये काफ़ी हो गई। उसे जान पड़ने लगा कि कम्युनिस्टों के कार्यक्रम में विचार स्वतंत्रता की जगह शब्द प्रमाण (Dogmatism) ने ले ली है। विश्लेषण की कमी उसे बहुत अखरती। उसे खेद था कि इस देश के कम्युनिस्ट उनके गहरे अध्ययन की क़द्र नहीं करते। मनोरमा को

वह आन्दोलन से सहानुभूति प्रकट करने या उस में भाग लेने से प्रकट रूप में न रोकता परन्तु अपनी राय देता—"क्या है ? वे समझी है ?...शक्ति का अपव्यय है।"

जगदीश के व्यवहार में परिवर्तन आ जाने के कारण उसके यहाँ भूषण का आना-जाना बहुत कम हो गया। जितना मेल-मिलाप शेष था वह विचारों के साम्य के कारण नहीं केवल पुरानी मित्रता के नाते। वह मित्रता भी बैरिस्टर सरोला की शालीनता, भूषण के प्रति सहृदयता के बावजूद फीकी पड़ती जा रही थी। भूषण की दृष्टि में इन बातों का विशेष मूल्य न था, उसे इनका आनन्द लेने का समय न था। भूषण से सामना होने पर मनोरमा उसे न आने के लिये टोकती। भूषण जाता भी तो विवाद में उत्साह न दिखाता प्रायः सिर हिलाकर हूँ-हूँ करता और सिगरेट को बिना पिये ही राखदानी में झाड़ता रहता। तर्क में मनोरमा की सहानुभूति भाई की अपेक्षा भूषण के प्रति ही रहती थी। बैरिस्टर का विश्वास था मनोरमा की इस सहानुभूति का कारण तर्क की अपेक्षा भूषण के प्रति आदर ही था।

यह सम्भव न था कि इक्कीस बरस की कुमारी लड़की के घर में रहते उसके विवाह की चिन्ता न की जाती परन्तु मनोरमा को एम० ए० तक पढ़ा कर और इतनी आयु तक स्वच्छन्द रहने देकर, अब उसका विवाह केवल अपने निर्णय से कर देने का अधिकार माता-पिता खो चुके थे। अब केवल चिन्ता करते रहना ही उनके हाथ की बात रह गई थी।

जिन दिनों जगदीश विलायत में था भूषण एम० ए० में पढ़ रहा था और मनोरमा एफ० ए० में थी। भूषण को आशा थी कि जिस योग्यता से उसने बी० ए० पास किया है, उतनी ही योग्यता से एम० ए० पास करने पर वह किसी भी कालिज में प्रोफेसर की जगह पा लेगा। प्रोफेसर के जीवन में धन अधिक न सही, सम्मान और आराम तो है। एक दफे सही सीढ़ी पर कदम रख लेने के बाद आदमी निश्चय ही दैन्य-दारिद्र्य की बाढ़ से सुरक्षित जगह पर पहुंच सकता है। इस आशा में उसने झिझकते-झिझकते अपना अनुराग, शब्दों, दृष्टि और व्यवहार से मनोरमा के सम्मुख प्रकट

किया था। बचपन से अंग्रेज़ी स्कूलों में पढ़ी मनोरमा मित्रता के उस भाव से न आशंकित हुई और न सहसा उसमें बह ही गई।

एम० ए० पास कर बैंक में पचहत्तर रुपये की नौकरी करने के लिए विवश होने पर भूषण के विचारों और व्यवहार में एक कटु परिवर्तन आ गया। स्वयं शोषण का शिकार बन जाने पर भूषण के लिये शोषण के विरुद्ध संघर्ष और समाजवाद केवल हार्दिक उदारता और बौद्धिक विहार का साधन न रहा। उसने जीवन को निष्फल बना देने वाली व्यवस्था के प्रति सामूहिक संघर्ष के अतिरिक्त और सब कुछ उसके लिये उपेक्षा का विषय हो गया। आत्मसम्मान की भावना के कारण वह ईर्षा से घृणा करता था परन्तु वह जगदीश से अपनी तुलना किये बिना न रह सका। इस सब अन्याय का आधार क्या था? समाज में अवसर का वैषम्य! जीवन की मधुर महत्वाकांक्षाओं से हाथ धोने के साथ ही उसने मनोरमा की मित्रता से हाथ धो लिया।

भूषण का बहुत दिन उसके यहाँ न आना मनोरमा को खला। उसे यह भी सन्देह हुआ कि क्या भूषण जैसा आदमी भी दगा दे जायगा? निर्मला और सत्या उन दिनों फेडरेशन में विशेष भाग ले रही थीं। मनोराम ने सोचा...क्या भूषण से भी यह शंका की जाय? इसमें उसे अपना अपमान अनुभव हो रहा था। कुछ दिन मनोरमा ने मान किया और फिर निश्चय किया कि बात स्पष्ट हो जाना ही बेहतर है। कुछ दिन की प्रतीक्षा के बाद भूषण सड़क पर मिला। मनोरमा ने तुरन्त गाड़ी रुकवादी। पुकारा और सामना होने पर कहा "आप कहाँ रहते हैं?"—शब्द तो इतने ही थे परन्तु उसकी दृष्टि ने बहुत कुछ कह दिया।

भूषण उसके साथ ही गाड़ी पर उसकी कोठी गया। सामाजिक स्वीकृति और प्रण के अभाव में भी भूषण आत्मसम्मान के कारण अपने गत अनुराग प्रदर्शन से इनकार नहीं कर सकता था। मनोरमा ने जो मौन अभियोग उस पर लगाया था उसकी सफ़ाई देना आवश्यक था। भूषण ने जैसे स्पष्ट प्रस्ताव से अनुराग प्रकट किया था उसी के अनुकूल सफ़ाई भी दी—"....सिद्धान्त की अपेक्षा व्यक्तिगत अनुभूति अधिक तीव्र होती है। मेरे स्वप्न टूट गये हैं। अपने भ्रम और भूल को सत्य प्रमाणित करने के लिये

और बड़ी भूल करने की अपेक्षा भूल को स्वीकार कर उसे समाप्त कर देना ठीक है। मेरी जैसी स्थिति के लोग जैसे भी हों, केवल गुज़ारा करने की फिक्र करते हैं। मैं समाज की मौजूदा व्यवस्था में अपने और अपने जैसे के लिये कोई स्थान नहीं पाता। कुचले जाकर भी ज़िन्दा रहने में मैं कोई संतोष नहीं समझता। मुझे जीवन का अवसर न देने वाली व्यवस्था के विरुद्ध मैं प्राणपण से लड़ूंगा। तुम समझती हो, मेरा मूल्य पचहत्तर रुपया माहवार है ?"—वह अंग्रेज़ी में बोल रहा था और उसकी आँखें चमक रही थीं, कुछ भीगी और गुलाबी सी—"पचहत्तर रुपये माहवार में क्या जीवन हो सकता है ? मैं अपने आप को धोका नहीं देना चाहता और न किसी दूसरे को !" मनोरमा इसे भूषण के परिस्थिति से बँधे अनुराग की ईमानदारी नहीं तो और क्या समझती ?

उनके बात करते-करते सूर्यास्त हो चुका था। वे दोनों कोठी के सामने लान में बैठ कर बात-चीत कर रहे थे। बैरिस्टर सरोला भूषण को देख उनकी ओर आ गये। पीठ उस ओर होने के कारण भूषण और मनोरमा उन्हें देख नहीं पाये थे।—"मुआफ करना, मैं भी आ सकता हूँ"—आवाज़ सुन उन लोगों ने होठों में सिगार दबाये बैरिस्टर को देखा। "हाँ हाँ ज़रूर"—संक्षेप में उत्तर दे भूषण बैरिस्टर के आ जाने से संकुचित न हो कहता चला गया—"वास्तव में यह झगड़ा श्रेणियों का है। मैं निर्धन-साधनहीन श्रेणी से हूं। इस दृष्टि से मैं आप लोगों की श्रेणी का शत्रु हूं।"

बैरिस्टर मुस्करा कर उन लोगों के समीप बैठ गये। उन्हों ने अपने बढ़िया सिगार से एक लम्बा कश खींच कर छोड़ दिया। बढ़िया तम्बाकू की महक लिये धुयें की फुफकार में शराब की मीठी-तीखी गंध भी थी। जगदीश ने अंग्रेज़ी में कहा—"भूषण, तुम्हारी बात के मूल तत्व को मैं सामाजिक रूप से मानता हूँ परन्तु हम तुम भले आदमी हैं। धर्म युद्ध के नैतिक नियम हम लोगों में निभ सकते हैं। यह केवल प्राकृतिक संयोग है कि हम लोग विरोधी मोर्चों में हैं। इसकी जिम्मेवारी हम तुम पर नहीं, समाज पर है। हम अपने अपने ढंग पर समाज की व्यवस्था से लड़ सकते हैं। हम आपस में क्यों लड़ें ? क्यों मन्नो ?" भाई के आ जाने से अपने आप को वश में कर मनोरमा ने गर्दन पर झूलते

जूड़े को हिला कर मुस्कराहट से उत्तर दिया—'I don't accept his ultimatum of war. (मैं इनकी युद्ध घोषणा को स्वीकार नहीं करती)" बैरिस्टर ने एक और लम्बा कश खींच कर अपनी बात का समर्थन किया—"बिलकुल ठीक। यही तो व्यक्तिगत सहृदयता है !"

सहृदयता की इस चोट से भूषण के माथे पर बल पड़ गये—"इस कोठी के वातावरण में"—उसने कोठी की इमारत की ओर संकेत कर उत्तर दिया—"व्यक्तिगत सहृदयता निभ सकती है"—फिर उसने कोठी के एक ओर नौकरों के लिये बनी कोठरियों की ओर उंगली से दिखाया —"शायद वहाँ नहीं रह सकेगी। वहाँ केवल भय है। इस व्यक्तिगत सहृदयता के मूल में क्या है ? समाज अच्छा-अच्छा है, वह सब छीन कर तुम लोगों के भद्र-समाज की रचना कर ली गई है। जैसे कश्मीर या कुल्लू के किसी सेवों के बाग के सब वृक्षों से रूप, रस और गंध पैदा करने वाले तत्व किसी क्रिया से खींच कर दस पाँच गमलों में पौदे सजा लिये गये हों। शेष बाग़ निस्सार होकर, सड़ कर, जल कर, विरुप, निश्शक्त और निष्प्रभ हो गया हो। भद्र श्रेणी के सम्पन्न गमलों में सजा हुआ सहृदयता से महकता हुआ यह समाज अपने आप में चाहे कितना सन्तुष्ट हो परन्तु समाज के लिये तो वह अन्याय ही है।"

बैरिस्टर ने दो उंगलियों में थमे अपने सिगार से एक और लम्बा कश खींच कर कहा —"दोस्त, तुम्हारी यह कटु उपमा मुझे अच्छी लगी लेकिन तुम एक बात भूल रहे हो। यह भद्र-समाज, समाज के क्रमशः विकास की एक आवश्यक शृंखला है। आज यह भद्र-समाज संस्कृति का संरक्षक है। बाग़ के जल जाने पर जो दस-पाँच नमूने के गमले शेष रहेंगे, वही कल के समाज के लिए कलमें और बीज देंगे, समझे !"

नहीं-नहीं, हमें पूरे बाग को हरा भरा करना है"—भूषण ने आग्रह से कहा—"दस-पांच गमलों की प्रशंसा से पूरे बाग की दुरावस्था सह्य नहीं हो सकती। लेनिन ने कहा है—"हमारी संस्कृति तुम्हारे समाज की संस्कृति से अधिक विकसित होगी।"

बैरिस्टर ने आग्रह किया—"लेनिन ने यह भी कहा है कि

आज की पूंजीपति श्रेणी की संस्कृति में जो कुछ सुन्दर है, उपादेय है वह सब कुछ सर्वहारा की संस्कृति में सम्मिलित रहेगा। फिलहाल हम विश्व संस्कृति के धरोहर को सम्भाले हैं।" भूषण ने विरोध किया—"यह धरोहर की रक्षा नहीं, लूट है।"

इसके बाद बैरिस्टर और भूषण की बहस बहुत अधिक राजनैतिक हो गई। बैरिस्टर बार-बार कह रहा था—"तुम हिन्दुस्तान से बाहर जाकर देखो, संसार कितना आगे बढ़ गया है? भारत में तो अभी औद्योगीकरण ही नहीं हुआ, यहाँ अभी सर्वहारा समाज का क्रान्ति के योग्य विकास ही नहीं हुआ। यहाँ क्रांति केवल अन्तरराष्ट्रीय परिस्थिति के आधार पर ही हो सकती है। इंगलैण्ड में समाजवादी क्रान्ति के परिणाम में ही भारत में क्रान्ति हो सकेगी। तुम लोग इस समय नाज़ीवाद के विरुद्ध लड़ती इंगलैण्ड की प्रजातन्त्रात्मक शक्ति का विरोध कर रहे हो, यह भारी भूल है।

भूषण ने फिर विरोध किया—"इंगलैण्ड नाज़ीवाद की साम्राज्य लिप्सा के विरुद्ध अपने साम्राज्य की रक्षा के लिये लड़ रहा है। उसका साम्राज्य क्या है…हमारा शोषण !" हम अपनी मुक्ति के लिये लड़ रहे हैं।"

मनोरमा के लिये अपनी बात कहने का अवसर न रहा। यह अन्याय सह जाने के अतिरिक्त और उपाय न था। चुपचाप उठी और जाकर अपने कमरे में लेट गई। कुछ देर बाद भूषण चला गया। मनोरमा ने अपनी खिड़की से देखा वह विवश थी। भोजन के लिये उठने का भी उसे उत्साह न रहा। यदि वह भोजन से इनकार करती तो व्यर्थ में लम्बी चौड़ी सफ़ाई सबके सामने देनी पड़ती। मनोरमा दोनों हाथ सिर के नीचे रखे आधी-आधी रात से अधिक छत पर दृष्टि लगाये इस समस्या पर विचार करती रही। उसका मन यह जान कर कुछ हलका अवश्य हुआ कि भूषण ने उसे किसी 'दूसरी' की तुलना में ठुकराया नहीं। उसका अपमान नहीं हुआ परन्तु भूषण को उससे दूर करने वाली खाई उसके अनुमान से कहीं बड़ी थी। उसने बहुत सोचा और निश्चय किया कि उसके जीवन की धारा स्वाभाविक रूप से जिस राह पर बहनी चाहिये थी, उसमें भूषण ने अड़चन लगा दी है। वह

उस रुकावट से परास्त होकर, कायरता से और किसी भी ढलवान पर अपने जीवन को बहा देने के लिये तैयार नहीं होगी। वह अपने जीवन को नष्ट भी नहीं करेगी ! वह अपने जीवन की धारा को एक प्रबल जलशक्ति के रूप में संचित होने देगी जो समय आने पर एक उचित कार्य का साधन बन सकेगी। वह न एकान्त में बैठ दीर्घ निश्वास लेती, न अपनी उपेक्षा करती, पढ़ती और घूमने जाती। सार्वजनिक कार्य में उसका सहयोग कम हो गया था। बैरिस्टर को वह आन्दोलन मूर्खता जान पड़ रहा था। बैरिस्टर से मतभेद के कारण भूषण उसके यहाँ आता नहीं। मनोरमा सोचती, जब उसे बुलाया नहीं जाता, उस की श्रेणी स्थिति के कारण उस पर विश्वास नहीं तो वही क्यों किसी के पीछे भागे !

भूषण अपने जिले में अपनी पार्टी का संगठन जमाने के लिये धर्मशाला आया हुआ था। मनोरमा से मुलाकात होने पर वह एक-दो ही बार उसके यहाँ आया था। कभी बाहर मिल जाने पर वे एक दूसरे से कतराते न थे। भूषण का व्यवहार था :—जो हो गया सो हो गया। और मनोरमा का—तुम जानो !

उन्हीं दिनों एक दिन दोपहर बाद भूषण ने मनोरमा के समाज के अत्याचार के प्रमाण स्वरूप सिसकती हुई सोमा को लाकर उसके सामने खड़ा कर दिया। मनोरमा समाज के अत्याचार का प्रतिकार अपनी उदारता से करने के लिये प्रस्तुत हो गई। भूषण ने मित्रता का अनुचित लाभ न उठाने के लिये उत्तरदायित्व से कहा - "न हो, मां जी से पहले बात कर लो ! बाद में कुछ झंझट हो तो क्या लाभ ?" मनोरमा ने अपने भारी जूड़े को हिला कर कहा—"पूछूंगी तो वे दस बातें समझा कर एतराज करेंगी। उसे रख लूंगी तो भुनभुना कर रह जायँगी।" हुआ भी वही, मनोरमा ने सोमा को कोठी के एक कमरे में टिका दिया तो मांजी झुंझला उठीं—"मन्नो, तेरी अक्ल को क्या हो गया है ? न किसी से पूछती है न ताछती है ! ऐसी बदनाम, और निर्लज्ज औरत को घर में कैसे रख सकते हैं ? क्या हमें दुनिया में नहीं रहना ? मैं लाला जी से कहती हूँ...."

मन्नो ने इस अत्याचार के विरोध में चेहरा फुलाकर कहा—

"क्या कर लेगी दुनिया ? क्या निर्लज्जता की है उसने ? आजकल लड़कियों से बिना पूछे कौन भला आदमी उनकी शादी करता है ?... दुनिया तो सती पार्वती को पूजती है ! क्या किया था पार्वती ने ? यही तो जिद की थी कि शिवजी से ही विवाह करूँगी ? इस जिद में जल कर मर गई ? यही लड़की क्या अनर्थ कर रही है ? बस यही न कि वह ग़रीब है ?" मां जी ने फिर कोई विरोध नहीं किया। लाला जी और माँ जी दोनों का ही विश्वास था उनकी संतान दुनियादारी में चाहे जितनी कच्ची हो, बड़ी विद्वान, बुद्धिमान और ईमानदार है। फिर सोमा के दुख से मुर्झाये, बीमार से चेहरे को देख कर माँ जी का कलेजा भी पसीज गया।

सोमा को यह घर और परिवार एक दूसरा ही संसार जान पड़ा। मन्नो बीबी स्वयं उसकी आयु की, उसके जैसे शरीर की ही स्त्री थी परन्तु ऐसी स्त्री सोमा ने पहले कभी देखी न थी। मन्नो उसकी चिंता ऐसे करती थी जैसे माँ बीमार बच्चों की खबरदारी करती है।

मझेरा से भाग आने के बाद पुलिस के हाथ में पड़ कर और बाद में काँगड़ा और धर्मशाला के समाज में सोमा ने अपनी अवस्था शहर के कुत्तों से घिरी कातर बकरी सी अनुभव की थी। इस घर में आकर उसने वह देखा, अनुभव किया जिसकी आशा वह स्वप्न में भी नहीं कर सकती थी। वह अपने आपको घृणा और दुख के योग्य ही समझने लगी थी। यहाँ उसे सब ओर सहानुभूति और दया ही दिखाई देती। उसका दुर्भाग्य यहाँ अपराध और घृणा की बात न थी। कहीं किसी चीज़ या पैसे की चिन्ता नहीं। उसे यदि ईर्षा का आभास इस घर में कहीं मिलता था तो वह नौकरों, जग्गु, मोहना और नौकरानी जीवा में। इस को वह सहज ही उपेक्षा कर सकती थी।

सोमा को बचपन से ही कठिन श्रम और काम करते रहने का अभ्यास था। वह कुछ न कुछ करती रहती, नौकरों के काम में हाथ बटाती रहती। इस से माँ जी की करुणा और विश्वास उस के प्रति और भी अधिक उमड़ पड़ी। पहनने के लिये उन्हों ने कुछ नये कुछ पुराने कपड़े दे दिये। मन्नो उसे साफ़ और ढंग से कपड़े पहनने के लिये स्नेह से टोकती रहती। सोचती—अमीर लोग

सचमुच देवता होते हैं। गरीब कितने कमीने होते हैं ? इसीलिये तो दैव उन्हें दुख देता है ?

सोमा को मनोरमा के यहाँ टिका देने के बाद भूषण अपनी संरक्षिता की अवस्था जानने के लिये कई बार कोठी पर जाता। सोमा की समस्या को लेकर उनमें बात भी चली। यह समस्या उनकी अपनी बात के लिये एक पर्दा बन गयी। मनोरमा का मन भर आता। परिवार के लोगों को अपना उदास चेहरा और भीगी आँखें दिखाना उसे पसन्द न था। उसने भूषण से कहा—"चलो ज़रा बाहर घूमने चलो, वहीं बात करेंगे।" दोनों मकलोटगंज की चढ़ाई पर चढ़ते जा रहे थे। भूषण तटस्थता के भाव से बोल रहा था। वह एक ऐसे आरोप का उत्तर दे रहा था जिसे अस्वीकार न कर सकता था। मानता था कि उसने मनोरमा से प्रणय के मार्ग पर चलने का प्रस्ताव किया था। सफाई थी, जीवन के जिस नक्शे को लेकर उसने इस मार्ग की इच्छा की थी, वह नक़शा भ्रान्ति पूर्ण प्रमाणित हो चुका है। मनोरमा यह सचाई नहीं मानना चाहती तो वह क्या करे ? भूषण ने कहा—"सहृदयता जीवन की शोभा है। मनुष्य के जीवन की परिस्थितियों और व्यवहार से पृथक लड़की स्वतन्त्र वस्तु नहीं है। तुम्हारे परिवार में उस को जगह मिल सकी क्यों कि न तो तुम अभाव से पीड़ित हो और न तुम्हारी स्थिति किसी के दो बातें कह देने से गिर सकती है।"

मनोरमा ने एक दीर्घ निश्वास लिया। उसने कहा कुछ नहीं परन्तु अनुभव किया, भूषण दिन प्रतिदिन रूखा और कटु होता जा रहा है। कम्युनिज्म के श्रेणी संघर्ष के द्वेष ने उसके हृदय को झुलसा दिया है। भूषण कहता गया—"तुम सहृदयता और न्याय का समर्थन करने का रस ले सकती हो। साधनहीनों के लिये क्या यह सम्भव है ? जो जीवन याचना और आतंक में बीतता है, उसमें उदारता के अंकुर कैसे फूटें ? हम लोग पहले जीने तो पायें।" इस प्रकार 'हम लोग' कह कर वह अपने आपको मनोरमा से, मनोरमा के 'भद्र-समाज' से पृथक कर लेता था।

मनोरमा दीर्घ निश्वास लेकर मौन रह गई। वह और अधिक अपमान नहीं चाहती थी। परन्तु भूषण तुला हुआ था और बोला —"तुम्हारे जैसा लावण्य और बुद्धि इस लड़की में या सर्व

साधारण में हो कैसे सकती है ? यह तुम्हारे परिवार में कई पीढ़ी का निखार है। जैसे बढ़िया गुलाब के पेड़ को विशेष सुविधा की परिस्थितियों में रख कर उसमें कलम पर कलम लगती जाय ! लेकिन क्या शेष सब समाज सोमा ही बना रहे ? केवल सहृदयता का मोहताज ?"—"बस बहुत हो गया ! अब रहने दो !"—मनोरमा ने बात काट दी।

भूषण की अत्यन्त कटु आलोचना और रुखाई के बावजूद उसके मुख से मनोरमा के बारे में कुछ ऐसे शब्द निकल जाते थे कि मनोरमा एकान्त में उन्हें गुप्त धन की तरह गिनती और याद करती रहती—"तुम्हारी बुद्धिमत्ता, तुम्हारा लावण्य, तुम्हारा साहस और तुम्हारी सहृदयता······"—कटुता और निराशा के बावजूद उसे विश्वास था कि एक दिन मेरी सहृदयता के सामने भूषण के आत्मदमन की उष्णता अवश्य शांत होगी।

मनोरमा के माता-पिता के सामने यदि भूषण का नाम उनकी कन्या के लिये वर के रूप में आता तो वे अवश्य उसे अस्वीकार कर देते। उनकी दृष्टि में दूसरे अनेक लड़के थे। परन्तु मनोरमा को दूसरों का व्यक्तित्व कुछ जंचता ही न था ! पुरुष तो वही है जिसके सन्मुख नारी झुक सके ! मनोरमा यह भी सोचती—"हाय, यदि मैं उसकी जिद पूरी कर सकूं ?" और कल्पना में अपना एक चित्र घूम जाता, गरमी के मौसिम में धर्मशाला के पहाड़ पर फूहारों से भीगे वातावरण में गरम कपड़े पहन कर अच्छी अच्छी पुस्तकें पढ़ने और वेल्वेट कार्ड की स्लैक (पतलून, पहन, एलसेशियन कुत्ता साथ ले पहाड़ी सड़कों पर घूमने के बजाय उसे दिखाई देता कि वह एक मामूली सी साड़ी और चप्पल पहने, बगल में काग़ज़ों का बण्डल लिये धूप में लाहौर की सड़कों पर घूम रही है। उसके चेहरे पर सड़कों से उड़ी महीन धूल जमी हुई है। चेहरे पर पसीना बहने से स्थान स्थान पर से धूल बह कर उसका गोरापन प्रकट हो रहा है। इसी अवस्था में वह पार्टी आफ़िस जा पहुँची है। जहाँ बहुत से कामरेड शोर मचा कर बहस कर रहे हैं। कहीं कपड़े बदलने के लिये भी एकान्त नहीं लेकिन वह ऐसी आवश्यकता ही अनुभव न करेगी ! दिन भर कपड़े ही बदलते रहने के सिवा दूसरे ज़रूरी काम होंगे !···

जैसे निर्मला पार्टी के लिये चंदा मांगने उसके पास आती है, वैसे ही वह भी दिन भर घूमेगी ! पार्टी का साहित्य बेचेगी। जब वह लौटेगी, भूषण भी थैला लिये लौटेगा। वह कहेगा—"यू आर टायर्ड मन्नो ?" (तुम थक गई हो मन्नो) और वह मुस्करा कर उत्तर देगी—"नाट एटाल !" (नहीं तो !) अपने इस चित्र से उसे कर्मठता और शक्ति का अभिमान अनुभव होता परन्तु भूषण तो कभी इस शर्त पर भी आश्वासन नहीं देता।

चार मास लाला जी की कोठी में बिता कर सोमा ने नये अनुभव प्राप्त किये। शान्त जीवन से सोमा के रूप और व्यवहार से धूप, पाले और आंधी में पले जंगली पौधे की कड़ाई और रुखाई दूर होने लगी। उसकी मुद्रा और दृष्टि से 'चकित आतंक' का भाव दूर होने लगा। वह दीवारों की छाया में उगाये गये पौदे के समान कोमल होने लगी। उसका व्यवहार संकुचित और संयमित होने लगा। मनोरमा की देख भाल में नित्य के स्नान और बदले हुये कपड़ों में वह दूसरी ही स्त्री जान पड़ती थी। वह काम में लगी रहती। मनोरमा सहानुभूति के स्वर में उसे काम काज के लिये परेशान न होने को कहती और सांत्वना देती रहती। वह सोमा की व्यथा की गहराई को अनुभव करने की चेष्टा करती। सोमा प्रेम के साहसपूर्ण कांड की नायिका थी। मनोरमा सोचती क्या उसके जीवन में भी यही होने को है ? मनोरमा सोमा की व्यथा में प्रेम के दुख और त्याग का मिठास खोजने की चेष्टा करती। सोमा के जीवन के करुणापूर्ण नाटक को वह कल्पना में और भी दुखान्त रूप देती, यदि इसका साथी कभी भी जेल से न छूटे ? यदि वह जेल जाने की अपेक्षा दुर्घटना में मर गया होता ? सोमा प्रेम के परिणाम और मूल्य में जीवन भर का वैधव्य और संताप लिये बैठी रहे ! परन्तु यह कितना बड़ा त्याग है। यदि इसे दो रोटी की तलाश होती तो इसे यों बिसूरने की क्या ज़रूरत थी ? अशिक्षित और अर्धसभ्य हो कर भी उसमें चरित्र की महानता है। यह मनुष्य की सत्य, न्याय और औचित्य की भावना ही तो है।

सोमा के संकोच करने पर भी मनोरमा उसे जबरदस्ती पलंग या काउच पर बैठा लेती और उस की आपबीती पूछती रहती। सोमा को वह सब कुछ बताते संकोच और असुविधा होती। वह

वह बातें जान कर लोगों ने उससे घृणा ही की थी परन्तु मनोरमा का व्यवहार दूसरा था। मनोरमा उसे अपने समीप खींच उसके कंधे पर स्नेह से हाथ रख पूछती—"तुम्हें यह सब बातें याद कर, सुख और अभिमान नहीं होता।" सोमा चकित सी उस की आंखों में देखती मौन रह जाती? मनोरमा ने पूछा—"यदि धनसिंह न आये तो क्या तुम और कहीं दूसरे आदमी से व्याह कर लेगी?" सिर झुकाए सोमा की आंखों से आँसू टपक पड़े। आँचल से आंसू पोंछते हुए उसने सिर हिला कर इनकार कर दिया।

मनोरमा ने उसे समझाने के लिए कहा—"यदि धनसिंह न भी आये, वह तुम्हें भूल ही जाय तब भी तुम उससे प्रेम करती रह सकती हो? यही कितना बड़ा सुख और संतोष है?"—सोमा फूट-फूट कर रो पड़ी।—"हाय मैं कहाँ रहूँगी, क्या करूंगी?"

मनोरमा सोमा का हाथ थामें पलंग पर आड़ी लेट गई और छत की ओर दृष्टि लगाए सोचती रही? प्रेम सुख है या दुख? संतोष है या अभाव? प्रेम पात्र को पाये बिना तो प्रेम अभाव ही है। अभाव में सुख क्या? जिस प्रेम में कभी सफलता की आशा न हो; वह आत्मसमर्पण के अतिरिक्त और क्या है……? वह उसी प्रकार सोचती रह गई। सोमा उठ कर कब चली गई, उसे जान न पड़ा। मनोरमा सोमा को ऐसे स्नेह करती थी, उसका मूल्य आंकती थी जैसे भक्त, अपना मूल्य न जानने वाले, अपनी चिंता न कर सकने वाले ठाकुर की भक्ति करता है।

कई दिन बाद भूषण सोमा की बाबत पूछ-ताछ के लिए आया। मनोरमा ने अशिक्षिता लड़की की सद्भावना का और उसकी शुद्धि तथा सुघड़ता का बखान कर समवेदना पूर्ण स्वर में पूछा—"यदि जेल से छूटने के बाद उस ड्राइवर का पता न चला तो इस लड़की का क्या होगा?" भूषण ने सिगरेट का धुँआ छोड़ते हुए उत्तर दिया—"अगर वह आदमी डर जाय और किसी कारण से वापिस न आये तो लड़की के लिये समस्या वास्तव में विकट हो जायगी।……समय बीतने पर मन का यह अवसाद हलका हो जाने पर, कहीं कोई दूसरा मुनासिब आदमी मिल जाने पर, इसका विवाह हो जाना ही ठीक है। किसी पुरुष का गृहस्थ चलाने के अतिरिक्त वह निर्वाह के लिए और क्या कर सकती है?" मनोरमा

को भूषण की यह खुश्क सी; करोबारी ढंग की बात भली न लगी। उसने कहा—"क्यों, तुम ऐसी बात सोचते हो···क्या प्रेम स्वयं कुछ भी नहीं ? यदि कोई व्यक्ति एक आदर्श को चरितार्थ कर सके तो उसे क्यों गिराया जाय ?"

कुछ रूखे स्वर में भूषण ने उत्तर दिया—"वह क्या आदर्श को पूर्ण करने के लिये घर से निकली थी ? घर में जीवन सम्भव न था ; वह जीना चाहती थी ; इसलिए घर से निकली थी। प्रेम उसे घर से निकालने में सहायक हुआ। प्रेम केवल जीवन में सहायक वस्तु है। जीवन में अड़चन के रूप में प्रेम चल नहीं सकता !" मनोरमा ने ओंठ दबा कर विरोध किया—"कितने उदाहरण ऐसे हैं जहाँ व्यक्ति प्रेम के लिये जीवन को उत्सर्ग कर देते हैं। तुम्हारे विचार में वह सब पागलपन है, मूर्खता है, अस्वाभाविक और अप्राकृतिक है।" मनोरमा के स्वर में भी कुछ कटुता आ गई जैसे वह भूषण से किसी अपमान का प्रतिकार ले रही थी।

भूषण ने उस कटुता को लक्ष्य किया, उसकी अवज्ञा नहीं की और तिरस्कार भी नहीं किया। संयत स्वर में उत्तर दिया—"और सब चीज़ों की तरह जीवन में प्रेम की गति भी द्वन्द्वात्मक है। प्रेम जीवन की सफलता और सहायता के लिए है। यदि प्रेम बिलकुल छिछला और थिथला रहे तो वह असंयत वासना मात्र बन जाता है और यदि जीवन में प्रेम या आकर्षण का संयम विवेक से न हो तो वह जीवन के लिए घातक भी हो सकता है। जल को देखती हो ? उसमें से ऊष्णता बिलकुल निकल जाय तो वह बर्फ बन जाता है उसमें गति नहीं रहती। ऊष्णता एक सीमा से अधिक बढ़ जाय तो वह भाफ़ बन कर उड़ जाता है।"—"उड़ जाता है तो उड़ जाय ! निरर्थक जीवन से लाभ भी क्या ?"—उदासी से मनोरमा ने उत्तर दिया।

नया सिगरेट लगाकर भूषण बोला—"उड़ ही जाय तब भी एक बात है।···जैसे इस लड़की की ज़िन्दगी। इसका धनसिंह से प्रेम कुछ परिस्थितियों का परिणाम है और कुछ का कारण है।···· यदि इसका पति जिंदा होता ? शायद यह प्रेम हो ही न सकता और होता तो तुम उस से सुहानुभूति न करतीं।···प्रेम जीवन में शरीर की अनुभूति और आवश्यकता से पृथक क्या वस्तु है ?"

कुछ सोच कर उसने कहा—"विरह की प्रबल वेदना में प्राण दे देना एक बात है परन्तु जब प्रेम नित्य जीवन में असह्य स्थिति पैदा करने लगता है तो वह जीवन का बाधक होकर स्वयं समाप्त हो जाता है, उसकी जगह घृणा पैदा हो जाती है। एक सत्य घटना कहूँ?" मनोरमा ने हामी भरी—मेरा अपना ही मित्र है। जिस लड़की से वह स्नेह करता था, लड़की के माता-पिता विवाह करने के लिये तैय्यार नहीं थे। लड़की ने इस अत्याचार के विरोध में जहर खा लिया था। आखिर विवाह हो गया। छः बरस बीत चुके हैं। लड़का कुछ भला आदमी नहीं है। लड़की का अब यह हाल है कि पति के साथ रहने की अपेक्षा कुयें में गिर कर मरने के लिये तैय्यार है। लड़के का व्यवहार इतना बुरा है कि उसका नाम सुन कर लड़की को दौरा हो जाता है। मैं किसी व्यक्ति से चाहे जितना प्रेम करूं परन्तु उस व्यक्ति से मुझे प्रतिदिन संकट मिले तो मेरे मन में उसके प्रति विरक्ति पैदा हुये बिना कैसे रह सकती! यदि यह लड़की अत्यन्त कष्ट में न होती और धनसिंह की सान्त्वना इस की असहाय अवस्था में एक मात्र अवलम्ब न होती तो क्या यह उससे प्रेम करती? धनसिंह इस के जीवन का भौतिक अवलम्ब है।"

मनोरमा चुप रह गई। उसे जान पड़ा, भूषण संकेत कर रहा है कि हम परस्पर कभी एक या सहायक नहीं हो सकते! उसकी आँख नहीं भीगी। उस रात भी उसने बहुत देर तक जाग कर सोचा और यही निश्चय किया कि—"वह अपना अपमान क्यों कराये?"

* * *

धर्मशाला की जिला जेल से छूटते समय धनसिंह उतना ही लज्जित, निस्सहाय और हतोत्साह था जितना कि जेल में बन्द किये जाते समय। उसके हाथों की हथकड़ियां और उसे घेरे रखने वाली दीवारों के बन्धन तो दूर हो गये परन्तु संसार में उसे कोई मार्ग दिखाई नहीं दे रहा था। बदमाश और सज़ायाफ्ता बना कर, विश्वास और आदर का अधिकार छीन कर उसे जेल से निकाल दिया गया। वह कहां, किस ओर जा सकता था? यह स्वतन्त्रता ऐसी थी जैसे चिड़िया के पंख तोड़कर, चारों ओर से सुनाई देती

बिल्लियों की गुर्राहट और म्याऊँ-म्याऊँ में उसे पिंजरे से निकाल, फड़फड़ाने के लिये छोड़ दिया। दगाबाज़, बदमाश बनकर नौकरी के लिये अब फिर कम्पनी में जाना सम्भव नहीं था। यह किस्मत ही तो थी! जो अपमान के लिये पैदा हुआ है, सम्मान कैसे पा जाय! घर में दूसरे घिर्थ लड़कों की तरह बना रहता? किसी घिर्थ लड़की से ब्याह हो ही जाता। बिरादरी में सभी हो जाता है। उस ने राजपूत बन राजपूतनी से ब्याह करने की बात सोची! ल्लाकी चाचा तो कहते ही थे, औरत का फन्दा बुरा होता है।

धनसिंह दगा करना नहीं चाहता था। यदि दगा करने का विचार होता तो इतना लज्जित न होता, आगे और दगा सोचता परन्तु लोग तो उसे दगाबाज ही समझेंगे। परिचितों को क्या मुँह दिखायेगा? सोमा ही उसका विश्वास कर सकती थी। सोमा को तो लोग जाने कहां ले गये होंगे? और उस के मन का भी क्या पता? औरत तो औरत ही है।

धनसिंह एक-दो को नहीं, दस बीस ऐसे ड्राइवरों और दूसरे आदमियों को जानता था जिन्होंने पराई स्त्रियों के साथ, वेश्याओं के साथ सभी कुकर्म किये थे। ऐसे लोगों को समाज से कोई भय न था क्यों कि उन्हों ने इस अपराध में जेल नहीं काटी थी। वह तो जेल काट कर बाहर निकल रहा था। जेल में बिताये छः महीने उसने मानसिक वेदना में बिताये थे। उसे पुलिस पर क्रोध आया था। पुलिस ने उसे जीवन में सदा परेशान किया। उसके बचपन में उसका घर छीनने में मियां बजरसिंह का साथ देकर, मोटर चलाते समय चालान करने की धमकी से रिश्वत लेकर, फिर थाने में उसे पीट कर और सोमा से उसे मण्डी ले जाने का झूठा बयान दिला कर! यदि सोमा मण्डी जाने की झूठी बात न कहती तो उसे सज़ा क्यों होती? थाने में पांच दिन तक पुलिस ने न जाने सोमा के साथ क्या किया हो! और अब जाने वह कहां है?

पहले से जेल काटे हुए और कई मुकदमे झेले हुए जेल के अनुभवी साथियों ने धनसिंह से कई बार शर्त धर कर कहा था—'यह हो नहीं सकता कि पुलिस ने हवालात में औरत को खराब न किया हो!.........पुलिस वाले अपनी सगी मां को नहीं छोड़

सकते !"—उन्होंने जिरह करके समझाया—"जिस समय औरत का ससुर रपट लिखाने आया, तुम लोग थाने में थे। पुलिस ने उसे क्यों टाल दिया ? पुलिस ने तुम्हारे मण्डी जाने का किस्सा क्यों गढ़ा ? तुम्हारे और औरत के थाने में पहली दो रातें रहने की बात पुलिस क्यों गायब कर गई ? तुम्हारी गिरफ्तारी ससुर की रपट के बाद क्यों दिखाई ? कुछ समझते हो ?"—और उन्होंने उसे यह भी समझा दिया कि अब जेल से छूट कर 'दुनिया में' जाओगे तो तुम्हारा नम्बर साथ जायगा। बेटा, पुलिस हमेशा तुम्हारी निगरानी रखेगा। समझे ! जहां तक बने, शुरू में ही कन्नी काट जाना। नहीं तो बेटा महीने भर में फिर यहीं रखे हो !"

सोमा के साथ पुलिस के दुर्व्यवहार की कल्पना से धनसिंह का खून खौल उठता और मण्डी जाने की झूठी बात कह कर उसे जेल करवा देने के कारण उसे सोमा पर भी बहुत क्रोध आता परन्तु अदालत में सोमा के रोने की याद से वह क्रोध टिक न पाता। अदालत ने सोमा को चौधरी निर्भयराम के सुपुर्द कर दिया था। धनसिंह ने सोचा चौधरी के घर जाकर उसका पता लेगा। यदि पुलिस ने उसे खराब किया होगा तो वह जाकर उस थानेदार का क़त्ल कर देगा। अब की बार कोई उसे पकड़ नहीं सकेगा। तब तो वह सोमा के कारण स्वयं थाने चला गया। जेल के अनुभवी साथियों से उसने भागने, पुलिस से बचने के बीसियों उपाय सीख लिये थे और सबसे बड़ी बात सीख ली थी, अपराधी से घृणा करने वाले, स्वयं अपराध करने वाले समाज की चिन्ता न करना !

धनसिंह अपने निश्चय के अनुसार चौधरी निर्भयराम का पता लगाने के लिये जा रहा था। वह सतर्क था कि यथासम्भव कोई पूर्व परिचित उसे न मिले। बाजार में सहसा, उसे अपने नाम की पुकार सुनाई दी। घूमकर देखा, कामरेड भूषण जी थे। परिचित को देखते ही धनसिंह का मन लानत-मलामत सुनने की आशंका से संकुचित हो गया। परन्तु भूषण के व्यवहार में वह बात न थी। धनसिंह के कन्धे पर हाथ रख भूषण बोला—"मैं तुम्हारी राह देख रहा था था, छूट गये !" और फिर पूछा—"क्या लोगों से मिलने-जुलने कल्पना के दफ्तर जा रहे हो ?"

धनसिंह जेल से निश्चय कर आया था कि अपने मन की बात किसी से नहीं कहेगा। उत्तर दिया—"नहीं ऐसे ही, अभी तो आया हूँ।"

"तो क्या कांगड़े जा रहे हो ?"—भूषण ने पूछा

धनसिंह प्रश्न का अभिप्राय समझ रहा था फिर भी टालने के लिये कहा—"देखिये ! अभी क्या कहूँ !"

"कांगड़े चौधरी जी के यहाँ जाना चाहते हो न ?"—भूषण ने पूछा और उसके उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही बोला—"लड़की वहां नहीं है...।" धनसिंह कुछ निराश सा हो गया। भूषण ने उसके कंधे पर हाथ रख कर कहा—"आओ, कुछ खाओगे ? कुछ खा-पी लो, फिर चलते हैं।"

जेल के छः मास में मिठाई और फल खाने की इच्छा धनसिंह को कई बार हुई थी। इसलिये नहीं कि इन चीज़ों का उसे बहुत शौक था, केवल इसलिए कि यह चीज़ें वहां देखने के लिये भी न मिलती थीं। उसने रिहाई के बाद ऐसी चीजें मन भर खाने का निश्चय किया था। परन्तु जब कामरेड ने कुछ खाने का अनुरोध किया धनसिंह को कुछ अच्छा न लग रहा था। वह सुनना चाहता था—सोमा कहां है ? उसका क्या बना। दुकान से बाहर आकर भूषण धीमे और रहस्य के स्वर में बोला—"सुनो, लड़की यहीं है धर्मशाला में। लाला ज्वालासहाय सरोला की कोठी में है। बड़े आराम में है। चलो मिला दूं। अब देखो, समझ बूझ कर चलना है, समझे ! जो हो गया, हो गया !"

धनसिंह सरोला साहब की कोठी पर जाकर सोमा से तीन चार दिन मिला। यह मिलना हुआ कोठी के बराण्दे में जहाँ नौकर-चौकर या दूसरे व्यक्ति उन्हें दिखाई देते रहते थे। धनसिंह को सोमा और सोमा को धनसिंह कुछ बदले हुये से जान पड़ते थे। धनसिंह कुछ पथरा सा गया था। चेहरे पर एक गुस्सा मालूम होता था जिसे देख सोमा कुछ सहम सी गई। धनसिंह को भी सोमा बिलकुल बदली हुई, संकोचशील; उसमें शहरीपन सा आ गया था। चेहरे पर दुख की छाया लिये, उसका रंग पहले से अधिक साफ़, आँखें और अधिक गहरी हो गई थीं।

धनसिंह के मन में जो प्रश्न सब से ऊपर उठ रहा था उसे दबा कर उसने पहले पूछा—"कैसे रही, बड़ी तकलीफ हुई होगी ?"

"जी तुम आ गये, तो सब ठीक है। जेल में सिपाहियों ने और तो नहीं मारा ?"—सोमा की आँखें भीग गईं।

"तुम्हें पुलिसवालों ने परेशान किया होगा ?"…"धनसिंह ने गंभीर स्वर में पूछा !" सोमा सिर झुकाये चुप रही। धनसिंह के प्रश्न दोहराने पर उसने आंखों में आंसू भर उत्तर दिया—"जो अब बीत गई का क्या रोना ? तुम्हारे साथ उन्होंने क्या नहीं किया ! मैं तो रो-रो कर मर गई। कहते थे कि चिमटा लाल करके तुम्हारा बदन नोंच लेंगे। मैंने बहुत हाथ जोड़े, राक्षसों के पांव पड़ी कि मुझे जो करना हो कर लो, तुम्हें न सतायें ! तो अब उसका क्या रोना ? तुम्हें जिन्दा देख लिया, सब पा लिया।" अधिक बात कर सकना सम्भव न था। धनसिंह का खून खौल रहा था परन्तु वह कुछ निश्चय भी न कर पाता था। सोमा के शब्दों से वह अनेक अर्थ लगाने का यत्न करता। क्या इसे भी पुलिस ने मारा पीटा है ? या…? वह सोचता कि बदमाश पुलिस वालों ने मुझे मारने की धमकी सोमा को क्यों दी…? क्या डरा कर उसे वस किया ? यह सब कुछ उन लोगों ने किया है तो मुझे इस औरत से क्या मतलब ? वह सड़क पर घूमते हुए मन ही मन बैजनाथ जाकर थानेदार, हरीराम, करीम और नफ़ीस को कत्ल कर पंजाब भाग जाने की कल्पना करता रहता। इसके आगे जीवन की कोई और सार्थकता उसे दिखाई न देती थी।

सोमा प्रायः चार मास लाला ज्वालासहाय सरोला की कोठी पर रह चुकी थी। धीरे धीरे उसकी कहानी लाला जी तक भी पहुँच गई थी। उन्हें विश्वास हो गया था कि लड़की बुरी नहीं है। बदक़िस्मत है बेचारी ! परन्तु धनसिंह को वे भला, विश्वास योग्य मानने के लिये तैयार न थे। ऐसे आदमी के हाथ में अपनी दस पन्द्रह हज़ार की गाड़ी बल्कि अपनी जान सौंपना उन्हें बुद्धिमानी न जान पड़ती थी। परन्तु मन्नो ने कहा कि मैं तो उसे कह चुकी हूँ। लाला जी पन्द्रह दिन की तनखाह ख़ामुख़ाह भर कर और फिर पन्द्रह दिन तक कभी एक और कभी दूसरा काम उससे कराते रहे। मनोरमा को जब भी अकेले या माँ जी के साथ नीचे

बाज़ार तक भी जाना होता, वह धनसिंह को ही गाड़ी चलाने के लिये पुकारती।

कुछ ही दिन बाद मनोरमा पर धनसिंह और सोमा की जिम्मेवारी और भी गहरी आ पड़ी। पुलिस भूषण को युद्ध का विरोध करने के अपराध में दूसरे दो और कामरेडों के साथ गिरफ्तार कर लाहौर ले गई थी। मनोरमा को भूषण की गिरफ्तारी से बहुत दुख हुआ परन्तु मुख से कुछ कह न सकती थी। सरोला साहब की कोठी ज़रा ऊंचाई पर थी। वहां केवल एक फर्लांग गाड़ी के लिये गैराज़ था। शेष गाड़ियों और लारियों के लिये एक नीचे, कोतवाली बाज़ार से ज़रा हटकर गैराज थे। वहां कुछ कोठरियां नौकरों के लिये भी थीं। यहीं एक कोठड़ी मनोरमा ने धनसिंह और सोमा को दिला दी।

धर्मशाला में अगस्त की झड़ियां लगी हुई थीं। कोठड़ी में उन लोगों की सम्मिलित जीवन की पहली ही रात आई। सोमा ने रसोई तैयार की। दोनों ने खाई। दोपहर से लगी बारिश बरस ही रही थी। धनसिंह ने सोमा से फिर बैजनाथ के थाने में पुलिस से व्यवहार की बात पूछी। सोमा ने उत्तर दिया—"हाय जी, सब तो कह दिया अब वहां याद करा क्यों दुखी करते हो।" धनसिंह बिगड़ उठा—"तू चालाक हो गई है। बातें छिपाती है। कुछ छिपाये तो मेरा मरे का मुंह देखे।"

सोमा कांप उठी। रो रो कर उसने कहा—"कहा तो मैंने, जब उन्होंने धमकाया कि नहीं मानेगी तो चिमटा लाल करके तुम्हारा बदन नोचेंगे तो मैंने कहा कि मेरा चाहे जो करें, तुम्हें न छुयें। मुझे छुआ तो मैं रोने लगी। बड़ी प्यास लग रही थी। एक आदमी लोटे में पानी लाया। कड़वा-कड़वा और शराब की जैसी बू वाला। कहने लगे, यहां की बावड़ी में पत्ते सड़ गये हैं। पानी पिया तो सिर चकरा गया। जागी तो रोती रही।" इस बात से धनसिंह का सिर घूम गया। वह उठ खड़ा हुआ और लम्बी-लम्बी सांसें लेकर बोला—"बस इसीलिये छिपा रही थी तू? मुझे अब तुझ से कोई मतलब नहीं। अब तो उस थानेदार का कत्ल किये बिना पानी नहीं पिऊंगा। अपना धर्म ईमान तू जान।"

धनसिंह चलने लगा तो सोमा उसके पाँव से लिपट गई। धनसिंह ने उसे डाँटा, गाली दी। सोमा ने पांव न छोड़ा तो उसे पीटा और खूब पीटा। सोमा अपनी पूरी शक्ति से धनसिंह के पाँव पकड़े थी और कहे जा रही थी—"मुझ से मतलब नहीं है तो मुझे खत्म करके जाओ।...जाना है तो पहले मेरा गला काट के जाओ !"—धनसिंह विवश हो दीवार से अपना सिर फोड़ने लगा और फिर बहुत देर स्वयं भी रोता रहा।

धनसिंह दीवार से सिर लगाये बैठा रहा और सोमा उसके पाँव की बेड़ियों के रूप में पाँव को जकड़े रही। पांव ज़रा भी हिलते देखती तो पूरी शक्ति से पिंडलियां तक सीने से लगा जकड़ लेती। धनसिंह ने उसे घूसों से पीटा था। उससे उसके कंधे और कमर दर्द कर रही थी परन्तु दर्द की उसे चिन्ता न थी। इस संघर्ष में धनसिंह शिथिल हो गया। दीवार से सिर टिकाये वह सोचता रहा इसका क्या करूं, किसके आसरे छोड़ जाऊं? दुनिया तो जैसी है, इसे परेशान ही करेगी? फिर लाला जी क्या कहेंगे? भूषण जी क्या कहेंगे?......अपने पाँवों से सोमा के हाथ हटाते हुये उसने कहा—"अच्छा कह दिया नहीं जाउंगा।" आंसुओं से विरूप चेहरा और लाल आँखें उसके मुंह की ओर उठा सोमा बोली—"जी मेरे सिर की कसम?" धनसिंह ने हामी भरी। सोमा ने फिर आग्रह किया—"जी अब मुझे छोड़ कर जाना हो तो पहले मेरा गला काट जाना नहीं तो मैं रस्सी का फन्दा लगा लूंगी।"

बारिशें बहुत गहरी हो रही थीं। लाला जी प्रायः बाहर न जाते थे। धनसिंह की ड्यूटी उनकी कार पर ही थी। लाला जी दोपहर या दोपहर बाद कहीं जाते भी तो बरसात के कारण रात को सफ़र न करते। रात बाहर ही रह जाते! ऐसी अवस्था में सूनी रात में, कोठड़ी में अकेली पड़ी सोमा का दिल आशंका से दहलता रहता।

लाला ज्वाला सहाय सरोला के यहाँ अपने काम पर धनसिंह बहुत चौकन्ना रहता। बात-चीत कम करता। घर पर रहने के लिये उसे काफ़ी समय मिलता था परन्तु वह सोमा से बहुत कम बोलता। बोलता भी तो केवल काम की बात, दो टूक! न वह उसे छूता, न सुख-दुख की बात करता। जैसे उससे परहेज सा कर

रहा हो। सोमा ने इस व्यवहार की कोई शिकायत न की। कभी वह सोचती, शायद इनका स्वभाव ही ऐसा है परन्तु आदमी कभी तो हँसता है। उस दिन तो और तरह की बातें थीं! नहीं, मन में दुखी है। वह भी चुप और उदास सी बनी रहती। कभी-कभी यही ख्याल आता कि वहाँ से आ गई पर क्या दूसरे के सिर बोझ ही तो हूँ। बेचारा भला लोक है जो झेल रहा है। ऐसे विचारों से बचने के लिये दिन भर वह कुछ न कुछ किया ही करती। खाली बैठने की आदत उसे यों भी न थी। कभी बारिश थमी होने पर काम काज के लिये माँ जी उसे कोठी में बुला भेजतीं या अपने यहां से पुराने लिहाफ़ों की रूई या ऊन ही भिजवा देतीं। एक चर्खा भी उन्होंने उसके यहाँ भिजवा दिया था। धर्मशाला के चौमासे की अनवरत झड़ी लगी रहती और भीतर सोमा अपने चर्खे के घूं-घूं में माँ जी के लिए सूत या ऊन कातती रहती या अपनी रसोई की तैयारी में लगी रहती। उसका जीवन काठ की धीरे-धीरे चलने वाली मशीन जैसा था!

लाला जी कुछ दिन के लिये लाहौर गए थे। धनसिंह को गाड़ी लेकर कहीं जाना न था। पानी जोर से पड़ रहा था। वह कोठड़ी में चारपाई पर लेटा बारिश की ओर दृष्टि लगाये जाने क्या सोच रहा था। सोमा खाट के सिरहाने की ओर किसी काम में लगी थी। धनसिंह को अपने सिरहाने सिसकी का शब्द सुनाई दिया। घूम कर उसने देखा, सोमा एक हाथ खाट की पटिया पर रखे और मुंह आंचल में छिपाये रो रही है। "क्या बात है"—धनसिंह ने पूछा।

"जी तुम बड़े उदास रहते हो! मेरा तो जो होना था हो गया। तुम अपने घर से बुलालो! तुम्हारा दिल लगेगा। तुम सुखी रहो। सबसे बोलते हो, मुझ से ही दुखी हो!"—सोमा ने सिसक-सिसक कर कहा।

"मैं तुझे क्या कहता हूँ?"

"तुम बड़े भले हो जी, देव तुम्हारा भला करे। पहले तुम कितनी अच्छी तरह बोले थे। पहले भी क्या था मेरा? मैं तो रांड हूँ पर तुम क्यों बिसूरते हो?"—सोमा फूट-फूट कर रो दी।

धनसिंह के मुंह से निकला—"लोगों ने तुम्हारे साथ बुरा किया

तुम्हारा क्या कसूर है !" धनसिंह मन ही मन लज्जित हो गया कि यह बात उसे पहले क्यों न सूझी। धनसिंह ने सोमा का हाथ पकड़ कर कहा—"पागल हो ? रोती क्यों हो"—और उसे खींच खाट पर बैठा लिया। सोमा और भी अधिक वेग से रोने लगी। धनसिंह ने पुचकार कर विह्वल स्वर में कसम दी—"रोओ तो मुझे खाओ !" और बताया—"मेरा भी दुनिया में तुम्हारे सिवा और कोई नहीं !" वह उसे मनाने लगा। परेशानी से सोमा ने टोका, हाय देखो तो किवाड़ खुले हैं। उस दिन दोनों में महीने भर से चली आयी दूरी मिट गई। धनसिंह ने सोमा को अपनी खाट पर बैठा सलाह की—"सुन तो, आर्यों वाला ब्याह कर लें, चौधरी जी को कह कर ?" सोमा लजा गई—"मैं तो तुम्हारी ही हूँ,...कहीं रांडों का ब्याह होता है ?" धनसिंह ने गम्भीर स्वर में आपत्ति की—"ऐसा क्यों कहती हो, क्या मैं मर गया हूं ! मैं मरूं तो अपने को रांड कहना !"—सोमा ने उसके सिर की बला अपने ऊपर ले दैव को याद किया।

सितम्बर का महीना आ गया। धर्मशाला के चेहरे पर छाए रहने वाले मेघ टुकड़े-टुकड़े हो वायु में उड़ गये। शरत ठण्डी हवा ने उन्हें जमा देने के लिये बर्फानी चोटियों पर फेंक दिया। धर्मशाला में धूप खिलखिलाने लगी। सोमा के दिल में भी धूप खिलखिला उठी थी। मनोरमा बीबी की कालिज की छुट्टियाँ समाप्त हो गई थीं और वह लाहौर चली गई थी। जाने से पहले उसने सोमा को मिलने के लिये बुलाया। धनसिंह ही उन्हें कार में पठानकोट तक छोड़ने गया था। यह विदाई सोमा को बहुत खली थी, जैसे माँ से बिछुड़ रही हो।

सोमा जब शुरू में धर्मशाला आई थी तब भी दोपहर में या सन्ध्या समय पड़ोस से कोठी में ही और कभी ग्रामोफ़ोन पर बजते गाने सुनाई देते रहते थे। सोमा को उनके स्वर तो अच्छे लगते थे परन्तु गीतों के शब्द या भाव को वह समझ न पाती थी। अब हाथ काम में उलझे रहने पर भी उन गानों को समझने का यत्न करती और कभी-कभी वह मनोरमा बीबी से सुने हुए या ग्रामोफोन से सुने हुये गीतों के पद गुनगुनाने भी लगती। एक रोज ऐसे ही कोठी से भेजा गया सूत अटेरते समय वह गाने

लगी। आहट पा घूम कर देखा तो दरवाजे के बाहर खड़े दो आदमी सुन रहे हैं। वह लज्जा से मर गई। मायके या सुसराल में खुले खेतों में कोई स्त्री गाती रहती तो कोई ख्याल नहीं करता था। उस दिन से उस ने समझ लिया शहरों में गरीबों की भली स्त्रियां ऊंचे स्वर से नहीं गातीं।

काम से उस के हाथ कभी ही खाली रहते होंगे। काम करते रहना उसका स्वभाव ही था। मायके और ससुराल में वह उपले थापने, धान कूटने, अनाज ढोने, पानी भरने, घर भर के बर्तन मलने, कपड़े धोने और जानवर चुगाने या खेती का काम करती थी। अब पानी नल से उस के घर के सामने चला आता था। आटा धनसिंह पिसा-पिसाया बाज़ार से लाकर दे देता। खेती के नाम पर दो चार पौदे घर के दरवाज़े के सामने लगा लिये थे। केवल दो व्यक्तियों के चौके बर्तन का काम संक्षिप्त सा था। अब वह धूप में बैठ कोठी पर सीखी कुछ बुनाई, सिलाई करती रहती। पहले बहुत दिन कपड़े पहने बिना उसे मैले नहीं मालूम होते थे। अब सरोला साहब के घर के प्रभाव से वह कपड़ों को चौथे पांचवें धोने लगती। इसके अतिरिक्त अपने शरीर को सवांरने का भी काम सीख लिया। मन्नो बीबी या दूसरी स्त्रियों को देख कर एकाध बेर इच्छा हुई कि अपने केशों को उसी तरह बांधे परन्तु साहस न हुआ। स्वयं ही लजा गई। बड़े आदमियों की नकल छोटे आदमियों को शोभा नहीं देती। धनसिंह ने साबुन ला दिया था। पहाड़ की ठंडी खुश्क हवा से जब गाल चटखने लगते तो चेहरे पर कुछ चिकनाई लगाना ज़रूरी हो जाता। ससुराल में वह सास की नज़र बचा कर घी की हांडी में से उंगली भर मुँह पर मल लेती थी। धनसिंह ने क्रीम और पाउडर ला दिये थे। दूसरे लोगों की ही भांति धनसिंह को भी अपनी स्त्री को सजाने का शौक था। सोमा चिकनी कोमल और लजीली होती जा रही थी। पास-पड़ोस के मर्द गुज-रते समय उसकी ओर घूरते तो उसे आशंका सी अनुभव होती। उसने कोठड़ी के दरवाज़े पर एक चिक लगवा ली। धूप में बैठना होता तो खाट खड़ी कर राह चलने वालों से आड़ कर लेती। भले घर की स्त्रियों की यही यही राह थी।

* * *

पहाड़ों में गरमियों के आरम्भ में यातायात बहुत बढ़ जाती है। पंजाब से लोग आने लगते हैं और धर्मशाला की उजड़ी-उजड़ी ऊँघाती सी बस्ती सजग होकर किलकिलाने लगती है। सन १६-४२ में युद्ध के कारण बहुत से कैम्प खुल गये थे। रंगरूटों या छुट्टी पर आये सिपाहियों के मारे सब ओर खाकी वर्दी पहने लोग ही दिखाई देते थे। इन सिपाहियों को जीवन में न अधिक आशा थी न कोई जिम्मेवारी, न किसी का लिहाज-मुरव्वत। यह लोग मौत की परवाह न करने के खयाल में उचित-अनुचित की परवाह भी छोड़ बैठे थे। इनकी उच्छृङ्खलता से धर्मशाला में भले घर की स्त्रियों के लिये हाट-बाजार में निकलना सम्भव नहीं रहा। मेम और साहब लोग के दर्जे की स्त्रियों से यह डरते थे। गरमी के आरम्भ में ही मनोरमा बीबी लाहौर से आ गईं और उनके साथ उन की छोटी भाभी उनके दो बच्चे और बैरिस्टर भाई, जगदीश सरोला भी आये। कोठी पर काम बहुत बढ़ गया। धनसिंह को प्रायः हर सारा दिन बाहर रहना पड़ता और कभी रात को भी।

एक दिन सोमा ने धनसिंह से कहा—"जाने कैसे लोग आ गये हैं ? रात को आ कर दरवाज़ा खटखटाते हैं और बुरी-बुरी बातें कहते हैं। मुझे बहुत डर लगता है। तुम रात को बाहर न रहा करो।" धनसिंह सोच में पड़ गया। दुखी हो उसने कहा—"पराई नौकरी में क्या बस ? मैं शाम तक न आऊँ तो तू कोठरी में ताला लगा कर रात में कोठी पर चली जाया कर। दिन में भी बाहर मत बैठा कर। अपनी इज्जत अपने हाथ होती है। यह सिपाही और लारियों के ड्राइवर तो जानवर हैं और हजारों हैं ! किस-किस को पहचानें।"

बरस पूरा होकर फिर अगस्त की झड़ियों के दिन आ गये थे। सुबह नौ बजे ही आकर धनसिंह ने कहा—"लाला जी को लेकर मैं लाहौर जा रहा हूँ। रात को तो मैं लौट नहीं सकूँगा। तुम्हें ऊपर पहुंचा आऊं ?" सोमा ने उत्तर दिया। "अभी चली जाऊँगी तो घर का सब काम रह जायगा। रात भी वहीं रहना होगा। कई दिन बाद धूप निकली है; कुछ कपड़े धो लूं। मैं दोपहर बाद चली जाऊँगी।"

अपने घर का काम छोड़ कर कोठी के काम में उलझे रहना

सोमा को अच्छा न लगता था । अब कोठी पर काम भी बहुत बढ़ गया था । मन्नो बीबी और स्वयं लाला जी को छोड़ कोई व्यक्ति ऐसा न था जिसका एक न एक काम सोमा को न करना पड़ता हो । वह लज्जा के मारे किसी से कह भी न सकती कि उसका अपना पांव भारी हो रहा है । चौथा मास लग गया था । मां जी बीनने बटोरने के कामों को सफ़ाई से कराने के लिये उसकी प्रतीक्षा करती रहतीं । बैरिस्टर जगदीशसहाय सरोला की स्त्री, मनोरमा की छोटी भाभी पूर्ण रूप से बैरिस्टर साहब की प्रतिक्रिया थीं । शरीर से फैली हुई, गति में मन्द उनके दोनों बच्चों तारा और भूपी को केवल सोमा ही वश में कर सकती थी । इन बच्चों के लिये कोई न कोई बिनाई सोमा के हाथों में लगी ही रहती और सोमा के कोठी पर रहते समय बच्चों को खिलाने-पिलाने और कपड़े बदलवाने का काम भी उसे ही करना पड़ता । शुरू में सोमा ने चाव और दुलार से अपना दिल बहलाने के लिए यह काम स्वयं ही लिया था, अब इस कारण उसे घर लौटने में बहुत देर हो जाती । और तो और बैरिस्टर साहब का गुस्सा सम्भालने का काम भी सावित्री भाभी सोमा से लेने लगीं । जैसे उसे अपने घर की कोई चिन्ता ही न हो !

बैरिस्टर साहब स्वभाव से कुछ तीखे थे भी । सफाई और कायदे की कुछ बातें विलायत से ऐसी सीख आये थे कि सावित्री भाभी निभा न पातीं । उनका खास बहरा 'ऊधम' छुट्टी पर था इसलिए उनकी चाय तथा कपड़ों की व्यवस्था में गड़बड़ी रहती और वे चिढ़ते रहते, कोठी के जाहिल नौकरों को बात-बात पर डांटते रहते । सोमा एक तो उन की नौकर न थी, दूसरे लेडी । उसका लजाना-सकुचाना और आंखें नीचे झुकाये सौम्य रूप भी उन्हें पसन्द था । उस के हाथों से हुये अल्हड़पन को भी वे मुस्करा कर सह जाते । सावित्री भाभी और माँ जी को यह अच्छा उपाय बैरिस्टर साहब को वश करने का मिल गया । उन्होंने सोचा—"जब तक वह मुंह लगा कमबख्त ऊधम छुट्टी पर है, यही सही । सोमा के दोपहर बाद कोठी पर रहते या धनसिंह की गैरहाज़री में रात कोठी पर बिताने पर बैरिस्टर साहब को शाम की चाय और सुबह तड़के की चाय । Bed tea सोमा को ही पहुँचानी पड़ती ।

धनसिंह लाला जी को लेकर लाहौर जा रहा था। पठानकोट में मालूम हुआ कि पी० डब्ल्यू० डी० के चीफ इंजीनियर साहब वहीं आये हुए थे। उन से मुलाकात हो गई और लाहौर जाना आवश्यक न रहा। वर्षा थमी हुई थी और समय भी था। लाला जी ने धनसिंह को धर्मशाला लौट चलने के लिए कहा। जिस समय धनसिंह गाड़ी लेकर धर्मशाला में कोठी पर पहुंचा, रात के साढ़े आठ बज चुके थे। कोठी के मोटरखाने में दूसरी गाड़ी बन्द थी। अपनी गाड़ी को उसे नीचे के गैराज में ले जाना था। उसने नौकर बद्लू से सोमा को खबर भिजवाई। सोमा भीतर कहीं उलझी हुई थी।

धनसिंह को भूख सता रही थी। उस ने सोचा अब सोमा घर जायगी और खाना बनायेगी! इससे अच्छा है, वह बाजार से खा ले और जाकर सो रहे। कोठी के चौकीदार से उसने सोमा को कहला दिया—देर हो गई है, यहीं रहे। सुबह आकर लिवा ले जायगा। वह गाड़ी ले बाज़ार की ओर उतर गया। बाजार में राम जी की दूकान पर, जहाँ दूसरे ड्राइवर खाना खाते थे, उसने खाना खाया और गाड़ी मोटरखाने में बन्द कर अपनी कोठरी में खाट पर जा लेटा। थकावट से उसे झपकी आ ही रही थी कि किवाड़ों पर कुछ आहट जान पड़ी। पहले तो धनसिंह ने उपेक्षा की कि बाहर हवा होगी लेकिन मुंह से सीटी बजाने का शब्द और कुछ बात भी सुनाई दी। धनसिंह को सहसा याद आया, सोमा कहती थी कि रात को बदमाश लोग दरवाजा खटखटाते हैं सोचा—आज सालों... को ठीक करूंगा! सीटी और आहट फिर सुनाई दी।

धनसिंह आहट बिना किये खाट से उठा और किवाड़ों की सांध में कान लगाकार सुनने लगा। बाहर से कोई कह रहा था—"अरे बीबी जान! किवाड़ खोल दे। गरीबों से भी दो बातें कर ले? बड़े बड़े आदमियों तक तेरी पहुँच है तो क्या? हम भी तेरे आशिक हैं। क्या हमारे रुपये खोटे हैं कि नोट में काँटे लगे हैं?.... यह ले दस रुपये!"—किवाड़ की सांध में से एक कागज खिसक कर आता दिखाई दिया।

धनसिंह समझ गया कि उसे बाहर गया समझ कर बदमाश

उसकी घर वाली को परेशान करने आये हैं। आवाज़ भी उसे कुछ पहचानी सी लगी। 'धौली-धार' कम्पनी के ड्राइवर शमसुल और जग्गी थे। उसका खून खौल उठा। अपना तीव्र होता श्वास वश में कर मन में कहा—"अच्छे मौके से आये तुम आज, बहन··· समझूंगा। बाहर से सीटी और कुचेष्टापूर्ण संकेत सुनाई दे रहे थे और साथ ही शराब की तीखी उबकाई पैदा करने वाली गंध किवाड़ की सांध में से आ रही थी। धनसिंह ने कोने में रखा लोहा बँधा डंडा उठा लिया और झटाके से किवाड़ की सांकल खोल दी। बदमाशों को मौका देने से पहले ही वह दो दो हाथों से डंडा उठा दोनों पर पिल पड़ा।

दोनों में से एक दबी सी आवाज में 'हाय!' पुकार, चक्कर खाकर गिर पड़ा। दूसरा भागा परन्तु लड़खड़ा गया और गिर पड़ा। धनसिंह ने उसके भी सिर पर दो डण्डे भरपूर ज़ोर से मारे और लौट कर पहले गिर पड़े के भी और तीन-चार चोटें लगाईं। हांफता हुआ वह जाकर अपनी खाट पर बैठ गया। पल भर बाद ही ख़्याल आया, कहीं ज्यादा चोट तो नहीं आ गई? बहन···दर-वाज़े पर ही पड़े हैं। यह बुरा हुआ। बाहर सुनसान में हवा तेज़ी और फरफराहट से चल रही थी। आस-पास से कुत्तों के भोंकने की आहट आ रही थी। आकाश पर कुछ बादल भी थे, चन्द्रमा नहीं था। बाजार की सड़क पर बिजलियां जल रहीं थीं। उनके कारण अन्धकार बहुत घना नहीं था। धनसिंह ने पहले आदमी के समीप जाकर देखा, सिर से बहुत सा खून बह कर अँधेरे में आस पास की ज़मीन काली सी दिखाई दे रही थी। उसने झुक कर देखा, जग्गी था। श्वास चलता नहीं जान पड़ा। धनसिंह घबरा गया। दूसरे आदमी के सिर के समीप भी ज़मीन खून से काली हो रही थी।

सहसा उसके क्रोध का उफान बैठ गया। बदमाशों की खबर लेने के बजाय वह घबराने लगा, अब क्या होगा? उसका विचार इन लोगों को मार डालने का नहीं था। मर गया, तो जैसे एक वैसे दो। गिरफ्तारी, जेल, फाँसी! वह कांप उठा। उसने मन को शान्त कर सोचने का यत्न किया। लाशों को उठाकर दूर खड्ड में फेंक आए? लेकिन दोनों रास्तों पर बस्तियाँ पड़ती थीं, खून से तर जमीन का

क्या करे ? खोद डाले ? इतने में कोई आता-जाता देख ले तो ! इन लोगों की लाशें मिलेंगी, या तहकीकात होगी तो ?

भाग जाने के अतिरिक्त और उपाय न था। भय से उस का शरीर कांपने लगा। लाठी, छुरे का भय नहीं, पुलिस और सरकार का भय ! जिससे कोई बचाव नहीं ? सोमा को खबर दे आये ? वह घबरा जायगी। कोठी पर शोर मच जायगा। जिन्दा रहेगा तो फिर आन मिलेगा ! इस समय तो किसी तरह पुलिस से जान बचे ! उस ने कोठरी के भीतर जा जितने रुपये थे ले लिए और आत्मरक्षा के लिए लोहा बँधा डंडा हाथ में ले लिया। वह सड़क से बचता, पगडण्डियों से उतरता कांगड़े की ओर चल दिया।

*   *   *

सोमा को लाला जी के लौट आने की खबर उस समय मिली जब वह बदलू से चौंका उठवा रही थी। उसने और भी जल्दी की कि धनसिंह बाहर उसका इन्तज़ार कर रहा होगा परन्तु शिथिल शरीर भाबी-बीबी जी ने उसे पुकार लिया—"बड़ी प्यारी बहन है सोमा, लाला जी आये हैं। तरकारियाँ तो हैं ही, दो फुलके उनके लिये तू अपने हाथ से उतार दे। इतने में बदलू लाला जी के लिये गरम पानी दे आयगा। जब सोमा लाला जी के लिये फुलके सेंक कर निकली तो धनसिंह उसे सुबह ले जाने का संदेश छोड़ कर जा चुका था। सोमा को बहुत बुरा मालूम हुआ, सुबह भी भूखे गये थे, अब आये हैं तो बाज़ार मे खायेंगे। सचमुच अमीर आदमी दूसरों को नहीं समझते हैं ! सोचा कि बूढ़े माली को ले चली जाये परन्तु संकोच में रह गई कि माँ जी और भाबी कहेंगी, बड़ी बे सब्री है ! इन लोगों से वह घर की पुरखिनों की भांति आदर और संकोच करती थी।

सोमा के लिये रात को कोठी में ठहरने का मतलब था—सुबह बैरिस्टर साहब और मन्नो बीबी को 'बेड टी' उनके कमरों में देना। दोनों ही सुबह जल्दी, छः बजे उठ जाते थे। धनसिंह सुबह छः साढ़े छः बजे से पहले क्या आता ? इसलिये सोमा को उसमें कोई आपत्ति न थी। वह स्वयं जल्दी ही उठती थी।

मन्नो और बैरिस्टर दोनों का ही कहना था कि चाय बिस्तर

के पास रख कर उन्हें जगाया जाता। मझो को तो सोमा पुकारे बिना, बाँह हिलाकर जगा देती थी परन्तु बैरिस्टर साहब के कमरे में जाते उसे संकोच होता था, पुकारे तो कैसे ? वह प्याली में चम्मच खटका कर उन्हें जगा देती और उन के आँख खोलते ही भाग जाती। बैरिस्टर साहब को आँखें खोलते ही भोलेपन और संकोच की यह अदा रिझा देती ! कह देते—"लवली" Lovely। उस दिन सोमा को भागते देख बैरिस्टर साहब ने कहा—"मिसेज सिंह, एक प्याला बना दो !"—और स्वयं सिगरेट सुलगाने लगे।

मिसेज़ सिंह पुकारे जाने से सोमा सकुचाती थी। मझो भी कभी कभी उसे मिसेज़ सिंह पुकारती परन्तु वह दूसरी बात थी। सोमा पलकें झुकाए चाय बनाने लगी। बैरिस्टर साहब को संतुष्ट कर लेना इस घर में विशेष सुघड़ता का प्रमाण था। सोमा इस सफलता में गर्व भी अनुभव करती थी। सांस रोके चाय का प्याला बना सोमा ने बाहर बरामदे में आ दम लिया। नीचे बाज़ार से कोठी की ओर आती पगडण्डी और सड़क पर दृष्टि दौड़ाई कि शायद लेने आते हों। भाभो जी और बच्चों के उठने से पहले चली जाय तो अच्छा है नहीं तो कोई न कोई काम उसे उलझाने के लिये निकल आयगा। धनसिंह दिखाई न दिया। अभी काफ़ी सवेर थी। सूर्य पूर्व की ओर अभी उठा ही था।

सोमा सोच रही थी, जल्दी आ जाते तो अच्छा था। खाली हाथ क्या बैठती; वह मझो के कमरे में जा उसका खाली पलंग सहेजने लगी। सूर्य चढ़ गया परन्तु धनसिंह नहीं आया। बरामदे में खड़ी हो कर सड़क और पगडण्डी की ओर देखते रहना अच्छा नहीं मालूम होता था। कोई देखेगा तो क्या कहेगा ? सोमा पल भीतर जाती और पल बरामदे में आती। बड़ी चटकीली धूप निकल रही थी। रात भर आकाश साफ़ रहता था। बनस्पति पर गहरी ओस पड़ी थी। कोठी की छत से ओस की बूंदें टपक रही थीं। बसांत की गहरी हरियावल भीग कर सुनहरी, धुली हुई धूप में चमक रही थी। बादलों के टुकड़े बरसाने का काम छोड़ आकाश ऊंचे उठ कर पहाड़ियों पर लोट-लोट कर खेल रहे थे। निम्न श्रेणी की स्त्रियाँ घड़े ले अपने घरों से नलकों या बावड़ियों की ओर आती-जाती दिखाई दे रही थीं। भले घर की स्त्रियाँ बरसात की

अप्राप्य धूप देख घर के सीले हुए सामान को धूप में छत पर रखने का आयोजन कर रही थीं। कोठियों में रहने वाली स्त्रियाँ गुदगुदे पलंगों पर अंगड़ाइयां ले नौकरों को पुकार रही थीं। सोमा का मन छटपटा रहा था, वह भी जाय और घर को सम्भाले पर धनसिंह आ नहीं रहा था।

बच्चे जाग उठे। भूपी अपनी चाबीदार मोटर हाथ में लिये सोया था। वही मोटर लिये वह सोमा के घुटने से आ चिपका—"माछी (मौसी) इथे तला दो !" सोमा ने उसे गोद में उठा लिया और सड़क और पगडण्डी की ओर देखती रही। उसका मन खिन्न होने लगा था। ध्यान उधर से हटाने के लिये वह भूपी को हाथ-मुंह धुलाने ले गई।

आठ बज गये ! धनसिंह नहीं आया ! भाभी ने सोमा को पुकारा, "देख तो भूपी को दूध पिलादे ! और तो किसी की सुनता ही नहीं !" सोमा ये सोच रही थी, ये क्या सुबह ही कहीं ड्यूटी पर चले गये ! उसे इस ज्यादती पर क्रोध आ रहा था। भूपी को दूध पिला देना सरल काम न था। वह एक घूंट पीता और पूरा कोठी का चक्कर लगाता। दूसरा घूंट पीता और मोटर में चाबी दिलवा कर उसे चलवा कर देखता। बजते-बजते नौ भी बज गये। सोमा खिन्न हो गई। उसने बदलू और माली से पुछवाया—रात कहीं सुबह ही ड्यूटी पर जाने के बारे में कुछ कह तो नहीं गये थे ? अब वह सोच रही थी कि अकेले ही जाकर अपना घर झाड़े बुहारे। मन की खिन्नता के कारण मांजी या भाभी जी से कुछ पूछ न पाई। जाने से पहले दीपा का फ्राक बदल उसके सिर में कंघी कर फीता बांध रही थी कि बदलू ने आकर घबराहट में कहा—

"धनसिंह की लाड़ी (बहू), बाहर थाने के सिपाही आये हैं थानेदार भी है। तुझे बुला रहे हैं।" सोमा ने अवाक् फैली हुई आंखें से उसकी ओर देखा। उसके मुख से 'क्या !' भी न निकला। हाथ से दीपा के सिर में बांधने का फीता गिर गया। वह सुन्न रह गयी।

पुलिस के कोठी पर आकर सोमा को बुलाने से कोठी में हल-चल मच गई। भाबी ने घबरा कर सोमा से पूछा—"क्या हुआ ? धनसिंह कहाँ है ? क्या सुबह आया नहीं ? क्यों कहीं मोटर की

टक्कर लग गई, क्या किसी को चोट लगी है ? हाय ! हाय ! क्या बात है ? पुलिस वाले क्या कहते हैं ?"

मां जी अपने हाथों दही से मक्खन निकाल रही थीं। सुना तो वैसे ही सने हुए हाथों से आकर उन्हों ने भी इस घटना का कारण पूछा और यहां तक कह दिया—"भाई वह तो बड़ा खतरनाक आदमी है। मैं तो पहले ही डरती थी। क्या कोई जेल-वेल की बात तो नहीं है ? कोई जा कर लाला जी को खबर दो या जगदीश (बैरिस्टर) को कहो।"

मनोरमा ने सोमा के कन्धे पर हाथ रख कर पूछा—"बता तो सही, क्या बात है ?" अब सोमा रो पड़ी—"आप जानती हैं, मैं कल शाम से यहां ही हूं। मुझे तो मालूम भी नहीं रात कब आये और क्या कह गये ? सुबह से राह देख रही थी।" मनोरमा ने चिंतित स्वर में कहा—"अच्छा तू यहीं बैठ। मैं भाई से कहती हूं।"

बैरिस्टर साहब ने आकर सोमा को सलाह दी—"मिसेज़ सिंह पहले हम पुलिस से बात कर लें तभी तुम बयान देना। पुलिस के साथ जाना नहीं। एक दफे पुलिस के हाथ पड़ जाओगी तो फिर निकलना कठिन हो जायगा।" सोमा घुटनों में सिर दिये बैठी रोती रही। पुलिस के हाथ पड़ने से तो वह प्राण दे देना अच्छा समझती थी।

बैरिस्टर सरोला ने दारोगा से बात की तो मालूम हुआ कि धनसिंह की कोठड़ी के पास एक लाश पाई गई है और दूसरा आदमी भी चिंताजनक हालत में है। दोनों के सिर फटे हैं। धनसिंह की कोठड़ी का दरवाज़ा खुला है और लापता है। दारोगा साहब तहकीकात के लिये सोमा को कोतवाली में ले जाना चाहते थे। बैरिस्टर साहब ने दारोगा साहब से दलील की, मिसेज़ सिंह कल शाम से इस कोठी पर है। रात धनसिंह जिस समय लाला जी को लेकर आया, जल्दी में चला गया। उसकी मुलाकात अपनी स्त्री से नहीं हुई। क्या कहा जा सकता है कि धनसिंह ने यह कत्ल किया है या हमला करने वालों में से दो चोट खाकर गिर गये और बाकी लोग धनसिंह को मार उसकी लाश उठा ले गये हों! मिसेज़ सिंह इस बारे में क्या कह सकती है उन्होंने कहा:—

"हम भी बैरिस्टर हैं। आप कानूनन तहकीकात कीजिये। हम मदद करेंगे। लेकिन मिसेज़ धनसिंह को आप हिरासत में नहीं ले सकते! उससे तहकीकात कर सकते हैं! वह शरीफ़ औरत है। मि० धनसिंह हमारे गैराज का मैनेजर है। अगर आप को मिसेज़ धनसिंह के फ़रार हो जाने का अंदेशा है तो हम उन्हें गाड़ी में बैठाकर आपके साथ डिप्टी-कमिश्नर के बंगले पर ले जाने के लिये तैयार हैं। वे कहें तो हम जमानत देने के लिये तैयार हैं। आप क्या जमानत चाहते हैं? आप जो सवाल मिसेज़ धनसिंह से पूछना चाहें हमारे सामने पूछिये! जब उसकी हाज़िरी की ज़रूरत हो, हम अदालत में या जिस मैजिस्ट्रेट के सामने अदालत का हुक्म हो, उन्हें पेश कर देंगे।"

बैरिस्टर साहब के कहने से मनोरमा ने भीतर जा सोमा के हाथ मुंह धुला कर कंघी की और अपने कपड़े पहना कर उसे बयान देने के लिये बाहर लाई। उसके आने पर बैरिस्टर साहब एक महिला के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए कुर्सी से उठ खड़े हुए। दारोगा साहब को भी उनके साथ उठना पड़ा। बयान देने के लिये उसे कुर्सी पर बैठाया गया। उसके एक ओर मनोरमा बैठी और दूसरी ओर बैरिस्टर साहब।

दारोगा साहब बड़ी नम्रता से मिसेज़ सिंह कह कर सोमा को सम्बोधन कर रहे थे। परेशानी पैदा करने वाली कोई बात उन्हों ने नहीं की बल्कि सोमा के दुख से दुखी हो, उसके पति मिस्टर धनसिंह को ढूँढने और पूरी सहायता करने का आश्वासन उन्हों ने दिया। सोमा का केवल एक ही बयान था कि घर पर अकेली होने के कारण वह धनसिंह के रात बाहर रह जाने पर सदा ही कोठी पर आ जाती थी। सब लोग गवाह थे कि ऐसा एक बार नहीं, सदा ही होता था। वह पिछली संध्या सूर्य छिप जाने से पहले ही कोठी पर आ गई थी। इसके बाद उसे जो सूचना मिली, पुलिस से ही मिली।

सोमा बैरिस्टर साहब और मनोरमा की सहायता से जैसे-तैसे पुलिस के सामने बयान दे आई परन्तु उसका दिल बैठा जा रहा था। रह-रह कर उसके पेट में बड़े ज़ोर का दर्द उठ रहा था। वह समझ रही थी उसे कैसा दर्द है; पर किससे कहे। वह माँ जी और

भाबी से डरती और सकुचाती थी और मनोरमा क्वारी लड़की थी। कहां बैठे। पिछले वर्ष जिस कमरे में मनोरमा ने उसे टिका दिया था वहाँ अब दोनों बच्चे थे। दर्द के मारे उसके मुख से चीखें निकल जाना चाहती थीं। वह दुपट्टे का आँचल मुह में दबाये कभी इस दीवार से पीठ सटा कर बैठती, कभी उस से। मनोरमा ने यह देखा। कंधे से सहारा दे उसे अपने कमरे में ले गई। वह कुछ समझ नहीं पा रही थी। उसने माँ जी और भाबी को बुलाया।

माँ जी और भाभी ने आपस में धीमे-धीमे से बात की और मनोरमा को कहा—"मन्नो तू दूसरे कमरे में चली जा। या इसे दूसरे कमरे में पहुंचा दे।"

"इसे यहीं रहने दीजिए"—मनोरमा स्वयं बाहर निकल गई।

बैरिस्टर जगदीश ने गोलमाल देख लाला जी के मुंशी को भेज लेडी डाक्टर को तुरन्त कार पर लिवा लाने का हुक्म दे दिया। संध्या होते-होते सोमा का चार मास का गर्भ गिर गया। वह मुंह छिपाए हृदय और शरीर की वेदना से रो रही थी। मनोरमा बार-बार आकर उसके सिर पर हाथ रख सांत्वना देती। उसे बार-बार सोमा के पास देख भाबी ने डांटा भी कि कैसी लड़की है भाई! तुझे कहा तो कि अलग बैठ। यह तेरा काम नहीं है।

मनोरमा चुपचाप कोठी के दूसरी ओर जा बराण्डे में पड़ी कपड़े की कुर्सी पर दोनों हाथों का तकिया बना कर लेट गई। वर्षा नहीं हो रही थी। मनोरमा की स्थिर दृष्टि पश्चिम में अस्त होते सूर्य की अन्तिम किरणों से दीप्त 'त्रियुंड' की गुलाबी हो रही बर्फानी चोटियों पर थी। अप्रैल में बर्फानी दीवार सी दिखाई देने वाली पहाड़ियों पर बरसात से बरफ़ बहुत कुछ पिघल चुकी थी। फिर भी सूर्य की किरणों को प्रतिबिम्बित करने के लिये यथेष्ट हिम मौजूद था। बर्फानी चोटियाँ और उन पर मंडराते मेघों के टुकड़े गुलाबी हो रहे थे। सूर्यास्त की इस छटा को देखने के लिये मनोरमा पहले भी इस स्थान पर बीसियों बार बैठ चुकी थी। गत वर्ष भूषण की गिरफ्तारी से पहले यहीं बैठ कर वह अपने जीवन के भविष्य की बात सोचा करती थी। यहीं बैठ उसने निश्चय किया था कि वह लेखक बन आत्मतुष्ट जीवन को अपनायेगी। यहीं बैठ

कर ही उसने कल्पना की थी कि सूर्य और प्रकृति का वियोग भी कितने सौन्दर्य की सृष्टि कर देता है। प्रेम के विश्वास में विरह का दुख भी हृदय के धन के रूप में संजोआ जा सकता है। वह सोचती थी, सोमा की कल्पना सीमित है। वह दुख के अन्ततम में निहित सुख को नहीं पहचानती। प्रत्येक संध्या सूर्योदय का आश्वासन लेकर आती है, यही तो जीवन है।

आज यहाँ बैठ कर वह सोच रही थी—नारी के लिये प्रेम का परिणाम केवल रक्त है। हृदय का रक्त अथवा शरीर का रक्त! पुरुष केवल ठोकर मार कर चला जाता है। भूषण भी, धनसिंह भी और निर्लिप्त हो कर पश्चिम में जा छिपने वाला सूर्य भी। प्रकृति अपनी मार्मिक व्यथा से अपना रक्त फैला रही है। यही नारी का भाग्य है और यही उसका गौरव भी।

इस घटना के बाद मनोरमा और बैरिस्टर साहब ने सोमा को कोठी से जाने नहीं दिया। सोमा स्वयं भी जाने के लिए इच्छुक न थी। पुलिस के दोनों रूप उसने देखे थे, बैजनाथ के थाने में जहाँ पलंग पर लेटे दारोगा साहब के सामने खड़ी वह कांप रही थी और कौतूहल के लिये उसके सिर का आँचल हटा कर लालटैन से उसे देखा जा सकता था। जहाँ उसके रोने और इनकार का कुछ अर्थ न था। उस थाने की कोठड़ियों में बिताई पांच रातों की याद उसके जीवन की सब से भयंकर स्मृति थी। वह उसे एक दुस्वप्न मान कर भुला देने की चेष्टा करती रहती थी। पुलिस फिर आई। अब उसे कुर्सी पर बैठा कर दारोगा साहब सामने खड़े थे। बात करते थे ऐसे कि उसी के नौकर हों, और माफी माँग रहे हों। यह केवल मनोरमा और बैरिस्टर सरोला साहब की कृपा थी, वर्ना वह स्वयं क्या थी! उसकी स्थिति तो ऐसे ही थी जैसे मिठाई खाने के बाद दोने को मरोड़ कर फेंक दिया जाय! यदि उस रात वह कोठड़ी में ही होती और पुलिस उसे पकड़ कर हवालात ले जाती तो उसका क्या होता! धनसिंह के बिना जीवन असम्भव था परन्तु धनसिंह के बिना हवालात के जीवन में और सरोला साहब या मनोरमा की छाया के जीवन में अन्तर था, सोमा यह अनुभव किये बिना न रह सकती थी।

सोमा यह भी जानती थी कि इस सब झंझट से बड़े लाला

जी और माँ जी प्रसन्न नहीं थे। उन्हों ने कहा भी, खामुखा अफ़सरों से झंझट लेना ठीक नहीं। सोमा जवान औरत है। लोग हज़ारों किस्म की बात बनायेंगे लेकिन मनोरमा और बैरिस्टर साहब लोगों की और विशेष कर अपनी स्थिति से नीचे के लोगों की बात की परवाह ही क्या करते थे ? नीची स्थिति के या मध्यम श्रेणी के लोग उनकी आलोचना भी क्या करते ? निम्न-श्रेणी के लोग अपनी स्थिति के लोगों की उच्छृंखलता और अनाचार को नहीं सह सकते। बड़े लोगों के लिये वे दूसरे ही नियम और आदर्श समझते हैं। राह में चलते कोई किसी पर मुट्ठी भर धूल फेंक दे तो उसका प्रतिकार किया जाता है लेकिन यदि आंधी से सेरों धूल हमारे सिर और आँखों में आ पड़े तो केवल अपने भाग्य का दोष देकर रह जाते हैं, आँधी की आलोचना नहीं करते।

सोमा बहुत उदास रहती और यह भी अनुभव करती कि वह बिना किसी अधिकार के इन लोगों की दया पर पड़ी है। इस दया का अधिकार पाने के लिये और अपना दुख भुलाये रहने के लिये सोमा प्रतिक्षण किसी न किसी काम में लगी रहती। भाभी भी उसके इस गुण की प्रशंसा किये बिना न रह सकतीं। भाभी के लिये तो वह मानों भगवान की कृपा थी। मनोरमा इस बात पर बिगड़ती रहती। उसने कई बेर उसे बर्तन मलते समय बांह पकड़ उठा दिया और हाथ से बाल्टी और मैले कपड़े छीन कर पटक दिये। ज़बरदस्ती मैले कपड़े उतरवा कर उसे अपने कपड़े पहनने के लिये दिये और कहा, तुम नौकर नहीं हमारी मेहमान हो। सोमा की आंखों में आंसू आ जाते। मेहमान कोई कितने दिन तक रहता है ? और फिर मेहमानदारी बराबरी के लोगों में ही होती है।

मनोरमा सोमा का जी बहलाने के लिये प्रायः उसे अकेले न बैठने देकर अपने पास बैठा लेती। पढ़ने के लिये आग्रह करती। मन्नो के जीवन और समस्याओं से सम्बंध रखने वाली बातों को समझ पाना सोमा के लिये सम्भव न था। मनोरमा ऐसी बातें करने की चेष्टा करती कि सोमा समझ कर उसमे मन लगा सके। कभी वह उसे घूमने के लिये साथ चलने के लिये कहती। सोमा की अपनी कोई राय न थी। वह कातर दृष्टि से मनोरमा की ओर देखती, जैसा आप कहें ! प्रत्येक बात में सोमा की स्वीकृति से,

किसी भी बात में उसके आपत्ति या एतराज़ न करने से मन्नो खिन्न हो जाती।

सोमा पहले भी मन्नो को मनाती थी लेकिन तब यदि मन्नो उसे सैर के लिये साथ चलने के लिये कहती तो सोमा को लज्जा और हंसी आ जाती, ग़रीब छोटे आदमी कब सैर करते हैं? उसने कभी सैर न की थी, न किसी को करते देखा था। दिल बहलाना भी एक काम होता है, यह उसे मालूम न था। शादी व्याह में स्त्रियों को गीत गाते उसने देखा-सुना था, स्वयं भी गीत गाये थे परन्तु वह भी तो एक काम था। दूसरे काम छोड़ कर भी गीत गाने का काम करना पड़ता था। मन्नो को सोमा का रूप और छवि बहुत भाती थी। उसका छरहरा बदन देख; बैरिस्टर साहब के सुझाव से एक दिन मन्नो ने उसे अपनी तरह साड़ी पहरने के लिये कहा। सोमा लाज से मर गई—हाय!—उसका चेहरा लज्जा से सुर्ख हो गया, यह भी कोई पहरावा है कि नीचे बिलकुल खुला! मर जाय तब भी नहीं पहन सकती। यह भी मानने के लिये वह तैयार न थी कि मन्नो निर्लज्ज है। बात केवल यही थी कि बड़े लोगों की बात दूसरी थी लेकिन धनसिंह के ग़ायबी के दिन पुलिस के सामने जाने के लिये जब उसे मन्नो ने साड़ी पहराई तो उसने कुछ भी एतराज किये बिना पहन ली और फिर पहने रही। अब उसे न तो लाज और संकोच की फ़ुर्सत थी और न अपने मन से अच्छा-बुरा या उचित समझने की। उसे जो कुछ कहा जाता, मशीन की तरह निभा देती। यही बात मन्नो को दुखी कर देती। इस पर मन्नो आत्मीयता से बिगड़ती तो सोमा केवल आंखें पोंछ लेती।

बैरिस्टर साहब भी सोमा को सान्त्वना देते—"घबराओ नहीं मिसेज़ सिंह, मालूम होता है कोई झगड़ा हो गया! धनसिंह ने इरादे से तो कत्ल किया नहीं। कुछ दिनों में मामला दब जायगा। धनसिंह लौट आयेगा। तब तक तुम इसे अपना ही घर समझो।"

फिर अक्टूबर के सुनहले दिन धर्मशाला में आ गए; आकाश नीला, जगह जगह फूल, वायु में एक प्राणपोषक स्फूर्ति। बैरिस्टर साहब का कोर्ट छुट्टियों के बाद खुल चुका था। उन लोगों के लाहौर चले जाने की बात उठती रहती परन्तु पहाड़ में स्वास्थ्य के लिये यही ऋतु विशेष लाभकर समझी जाती है, इस लिये पहाड़

से चलने की बात परसों-नरसों पर टलती जा रही थी। बैरिस्टर साहब ने मन्नो को समझाया कि उन लोगों के चले जाने के बाद माँ जी और लाला जी का क्या पता ; सोमा को रखें या जंजाल समझ उसे अपना प्रबन्ध कर लेने के लिए कह दें। मन्नो ने कहा, नहीं हम लोग उसे साथ ही ले जायंगे।

मन्नो की भावी शरीर से भारी और शिथिल होने के कारण सोमा के परिश्रमी स्वाभाव और निर्दोष गरीबी के प्रति बहुत अनुरक्त हो गई थीं। उनके लिए दोनों बच्चों को सम्भालना और इतनी बड़ी, जंजाल पूर्ण गृहस्थी की देख रेख करना सम्भव न था। सोमा को जैसा कुछ वे देख और समझ पाई थीं, उसके विचार से अपने ढीले शरीर पर छोटी सी गर्दन से जुड़े भारी चेहरे को हिला कर उन्हों ने कहा— "हाय, उसके बिना बच्चे कैसे रहेंगे? सदा उसी को याद करते रहेंगे! मैं अकेली क्या-क्या देखूंगी? वह तो हमारे साथ जायगी ही! यहां उसे क्या करना है?"

पराई लड़की की बला अपने सिर सहेजना माँ जी और लाला जी को विशेष बुद्धिमानी न जान पड़ी परन्तु जब सारा घर एक हो कर सोमा को लाहौर ले जाने के लिए आतुर हो उठा तो उन्होंने भी कहा, हमें क्या पड़ी है तुम लोग सभी समझदार हो, सोच समझ कर जैसा उचित समझो करो!

सोमा से किसी ने राय नहीं ली। दबे-दबे बात कई बार उठ चुकी थी कि सोमा भी भावी जी और बच्चों के साथ लाहौर जायगी।

पहाड़ में अब सोमा का कोई अपना न रह गया था। पहाड़ से वह केवल दुखद स्मृतियां साथ लेकर जा रही थी, फिर भी अपना देश छोड़ते समय, ज्यों-ज्यों मोटर पहाड़ से नीचे उतरती जा रही थी, उसका मन डूबा जा रहा था। सबकी आंख बचाकर वह खूब रोई। उसका संसार बदल रहा था। वह अपना देश छोड़ कर जा रही थी। देश से एक बार पांव उखड़ जाने पर जाने फिर कहां जाकर टिक पायेंगे? परन्तु वह करती क्या? संसार के आतंक के आतप से वह मन्नो बीवी और बैरिस्टर साहब की छाया में ही शरण पा रही थी। समय के परिवर्तन से उस छाया का स्थान बदलने पर, उसके साथ सोमा का हिल जाना भी अनिवार्य था।

४

जेल से बच कर जेल में—

समुद्र तल से सात हज़ार फुट ऊंची, बादलों में छिपी रहने वाली धर्मशाला की बस्ती से धनसिंह अंधेरी रात में पगडण्डियों की राह इस तेज़ी से उतरता चला जा रहा था जैसे पहाड़ की ढलवान से उखड़ कर लुढ़कता जाने वाला कोई पत्थर हो; जिसे राह देखने, पहचानने की कोई आवश्यकता न थी। वह आन्तरिक प्रेरणा से स्वयं ही निश्चित राह से निश्चित स्थान की ओर चला जा रहा था। दो-तीन बार खड़े होकर उसने पीछे घूम कर देखा। पीछे कोई नहीं आ रहा था लेकिन इस संतोष से उसकी गति में अन्तर न आया। जिस शत्रु से वह भाग रहा था, उसकी पहुँच और शक्ति की सीमा न थी। सरकार और पुलिस पाँच क्या पचास मील तक अपनी बांह फैला कर उसकी गर्दन दबोच ले सकती थी। प्रतिक्षण उसे जान पड़ रहा था, सरकार और पुलिस की शक्ति का अदृश्य हाथ उसकी गर्दन को छुआ ही चाहता है। वह और भी वेग से भागने लगता।

धनसिंह अपने और अपनी स्त्री के सम्मान पर चोट खा कर बौखला उठा था। अपने सम्मान की रक्षा के लिए, अपने अपमान का बदला लेने के लिए, उसने भय की परवाह न की। शमशुल और जग्गी दो थे और वह अकेला। उनके पास छुरे हो सकते थे लेकिन वह डरा नहीं। अब उनके मर जाने पर वह उनसे डर रहा था। अब सरकार उनकी ओर ही थी। सड़क से जाना सुविधा-जनक अवश्य होता परन्तु उससे राह ड्योढ़ी दुगुनी हो जाती। वह कांगड़ा की बस्ती से बच कर निकल गया। जगह-जगह

उसकी गंध या आहट पा कर कुत्ते भौंकते। वह बस्तियों से दूर रहता। उसे इस समय जंगल के रीछ, बाघ और भेड़िए से भय न था, भय था आदमी से परन्तु जंगलों और खोहों में छिप कर ही उस का निर्वाह कैसे हो सकता था? वह मनुष्य था और अपने प्रत्येक काम के लिये उसे मनुष्यों की आवश्यकता थी।

अगस्त का मास होने पर भी धनसिंह के सौभाग्य से उस रात वर्षा नहीं हो रही थी। आकाश में तारे खिल रहे थे। कभी-कभी हलके से बादल आकर तारों पर फिर कर चले जाते। हवा में नमी और ठण्डक थी परन्तु तेज़ी से चलते जाने के कारण उसके शरीर से पसीना बह रहा था। दो बार गला सूखने के कारण वह कल-कल करते पहाड़ी सोतों के किनारे पानी पीने के लिए झुका और फिर चल दिया। बहुत ऊंचे पहाड़ और फिर नीचे पहाड़, वह उतरता चला जा रहा था। हवा में ठण्डक कम होती जा रही थी। पहाड़ों में छिप कर प्राण बचा पाने की कोई सम्भावना न जान पड़ती थी। जगह-जगह गिने-चुने आदमी और परिवार, जो दस-बारह कोस के पड़ोस में प्रत्येक व्यक्ति को और उसके परिवार और काम को जानते थे। किसी भी नये व्यक्ति को देखते ही वे चौंकते, यह कौन है, यहाँ क्यों आया है? धनसिंह को इस प्रश्न से भय था। ड्राइवरी के लाइसेंस के रूप में धनसिंह का नाम, धाम, पता और हुलिया, फोटो सहित उसकी जेब में मौजूद था। एक जगह सिगरेट जलाते समय उसने उसे भी जला दिया। अपने परिचय का अस्तित्व मिटा देना आवश्यक था।

जिस समय पूर्व में सूर्य उदय हुआ, धनसिंह बर्सात के कारण शरयती होगई व्यास नदी की धार के किनारे चट्टान पर खड़ा था। दूसरी ओर देहरागोपीपुर का कस्बा और थाना था। उस ओर न जा वह होशियारपुर जाने वाली सड़क पर चलता गया। बर्सात के मौसम में इन सड़कों पर मोटरों का आना जाना स्थगित हो जाता है। पहाड़ प्रायः रेतीले हैं और नदी-नालों पर पुल नहीं। धनसिंह रुका नहीं वह चलता ही गया। उसके घुटने और पाँव थक कर जड़ हो गए थे परन्तु वह चलता ही जा रहा था। सड़क पर जगह-जगह खच्चरों पर माल ढोने वाले या छोटी-मोटी गठरी उठाये मुसाफिर मिल जाते। इनमें कुछ इस या उस तहसील में

अपने मुकदमों की पेशी पर आ जा रहे थे। मुकदमों के कागज़ टीन की ढक्कनदार नाली में बन्द इनके हाथों या बगल में थमे थे। कागजों को वे स्वयं पढ़ या समझ नहीं सकते थे। इन कागजों में उनके भाग्य का निर्णय था परन्तु उसे इन लोगों के वकील, अदालत या पुलिस ही पढ़ सकते थे। यह लोग उस निर्णय को स्वीकार करने के लिये बाध्य थे। दूसरे मुसाफिर थे लम्बे, तगड़े जवान, खूब संवार कर ऐंठी हुई नाकाली पगड़ी बाँधे। यह अंग्रेज़ी फ़ौज के डोगरे सिपाही थे जो छुट्टियों पर घर आ-जा रहे थे। इनमें से छुट्टी पर आने वालों के चेहरे प्रसन्न और लौटने वालों के उदास दिखाई पड़ते। युद्ध चल रहा था। जाते समय सिपाहियों के मन में आशंका रहती, लौट कर शायद ही घर आ सकें। यह लोग सड़क के किनारे ऊंची उठी हुई मक्का और धान की फसलों को ममता भरी उदास आँखों से देखते जाते। वे अपने खेतों में ऐसी फसलें खड़ी छोड़ कर आये थे। छुट्टी के समय में उन्हों ने अपने खेत जोत कर फसल बो दी थी। उनके चले जाने पर घर के लोग फसल काटेंगे। फसल बोते समय उनके शरीर मिट्टी, कीचड़ और खाद से लथपथ हुए थे। छावनी में जाकर वे बूट और वर्दी पहनेंगे, मोटर पर चढ़ कर बन्दूक और मशीनगन चलायेंगे लेकिन मिट्टी और फसल का मोह; मैल, पसीने, घी-दूध से गंधाते बीवी बच्चों का मोह उनके पांवों को भारी किये दे रहा था। यहाँ दीन जीवन था, वहाँ रोबदार मौत का भय था! इस भय के बावजूद ये लौटने के लिये विवश थे। घर में जीवन चला सकने के लिये मौत की नौकरी आवश्यक थी। उन्हें रुपया चाहिये था जो उनके खेत की ज़मीन न दे सकती थी, पल्टन की नौकरी देती थी। घर आ कर भी यह लोग सरकार के आतंक से घर छोड़ लौट रहे थे। सरकार का आतंक कितना कड़ा और कठोर था। धनसिंह भी इसी आतंक से भागा जा रहा था।

लगातार बीस घन्टे तक छियासठ मील चल कर धनसिंह होशियारपुर पहुँच गया। थकावट से उसके शरीर का पुर्जा-पुर्जा बिखरा जा रहा था। इच्छा हो रही थी कहीं लेट जाय। इस शहर से वह परिचित था। इस लाइन पर कुछ मास मोटर चला चुका था। मोटर के अड्डे पर कोई परिचित मिल सकता था इसलिए

वह वहाँ नहीं गया। बहुत जबरदस्ती करके उसने कुछ खाना खाया। लेटने के लिए धर्मशाला में पहुँचा। चार पैसे में चारपाई किराये पर ले, लेट गया। गरमी से उसका शरीर पसीज रहा था। श्रम करने पर जैसे पसीना बह कर शरीर हलका हो जाता है वैसे नहीं। शरीर पर तेल सा फैल गया था। आस-पास खाटों पर मुसाफिर प्रायः उघाड़े बदन लेटे थे और पँखा या अंगोछा हिला-कर गरमी और मच्छरों से बचने की चेष्टा कर रहे थे। स्त्रियाँ इस गर्मी में भी ढंकी और कपड़ा ओढ़े लेटी हुई थीं। धनसिंह को गरमी से दम घुटता जान पड़ रहा था। उसका सिर घूम रहा था। थकावट की पिड़ान से उसे नींद नहीं आ रही थी। उसे याद आ रहा था—कल इसी समय, उसने उन दोनों बदमाशों को मार गिराया था। पुलिस उसे धर्मशाला, कांगड़ा पठानकोट या हमीर-पुर में ढूँढ़ रही होगी। वह बचकर निकल आया है। अगर पकड़ा जाता तो इस समय हवालात में बन्द होता। उसे बैजनाथ में लग-भग इसी समय पकड़े जाकर थाने में बन्द कर दिये जाने की बात याद आ रही थी। वहाँ उस पर पड़ी मार की अपेक्षा सोमा के साथ हुआ दुरव्यवहार ही उसे अधिक याद आ रहा था। वह सोच रहा था, यदि अब वह थानेदार मिल जाय तो एक बार उस जुल्म का बदला उससे अच्छी तरह ले। उस बहन······ने मुझे आदमी नहीं समझा! फिर उसे सोमा की याद आने लगी, अगर वह पुलिस के हाथ पड़ गई तो क्या होगा? उसने भाग कर अपनी जान बचा ली तो क्या फायदा? इससे तो कहीं अच्छा होता कि सोमा को अपनी आड़ में ले पुलिस से लड़ता हुआ मर जाता। बैजनाथ के थानेदार की भैरव-मूर्ति उसे बार-बार याद आ रही थी। वह थानेदार पहाड़ी देश को गालियाँ दे रहा था। यह है उसका देश? जहाँ दम घुटा जा रहा है। मन चाहता था, उड़ कर फिर धर्मशाला की ठण्डक में पहुंच जाय। वहाँ आदमी सांस तो ले सकता है!

एक आदमी की आवाज़ कुछ देर से उसके कानों में आ रही थी। आदमी अब जोर से बोल रहा था। धनसिंह करवट ले उसकी बात सुनने लगा। यह आदमी फौज और लड़ाई की बातें सुना रहा था कि पल्टन में कितने मज़े हैं। पूरी वर्दी, बूट मुफ्त

में मिलते हैं, खाने के लिये गोश्त-दूध और मेवे मिलते हैं, सारी तनख्वाह जेब में ! वहाँ औरतें भी बड़ी खूबसूरत हैं खुद आकर बात करतीं हैं। एक अधेर सी उम्र का आदमी उससे उलझने लगा, तूने लड़ाई देखी है कभी ? तू भरती का कमीशन खाता है ! हमने 'फ्रांस' और 'मसापटामा' की लड़ाई देखी है, तीन-तीन दिन पानी नहीं पिया। खच्चर मार-मार कर खाए ! आस-पास बैठे लोग इन दोनों के झगड़े पर हँस रहे थे।

इतने में तीन चार आदमी दो लालटेनें और एक बिजली की बत्ती लिए हुए आये। एक के हाथ में रजिस्टर था। वे लोग घूम-घूम कर मुसाफिरों को देख रहे थे और पूछ-पूछ कर रजिस्टर में दर्ज करते जा रहे थे। पल्टन के मज़े की कहानी सुनाने वाले आदमी ने जाकर इन लोगों के पास फर्याद की—"हवल्दार साहब, यह देखिये यह बागी आदमी है। लोगों को फ़ौज में भरती होने से बरगलाता है।" धनसिंह ने देखा यह लोग मामूली कपड़े पहने पुलिस के आदमी थे। क्या उसी की तलाश में आए हैं ? उसका दिल धक-धक करने लगा।

पुलिस के आदमियों ने धनसिंह की ओर ध्यान नहीं दिया। वे फ़ौज में भर्ती होने से लोगों को रोकने वाले आदमी से उलझे हुए थे। वह अधेड़ आदमी अपनी सफ़ाई दे रहा था कि वह २६ नं० डोंगरा रैफल में सिपाही है। वह अपने काग़ज़ दिखाने लगा। पुलिस वालों ने उसे बगावत फैलाने के अपराध में साथ चलने के लिए कहा। धनसिंह लेटा-लेटा पुलिस वालों की बात सुनने लगा और समझा कि वे लोग पल्टन से भागे हुए कुछ सिपाहियों और सियासी (राजनैतिक) बदमाशों की तलाश कर रहे हैं।

सुबह उठने पर उसके शरीर का जोड़-जोड़ दर्द कर रहा था। वह उठा और बाज़ार में घूमने गया। पुलिस को देख कर उसका मन घबराने लगता। पुलिस की वर्दी यहाँ भी वैसी ही थी जैसी कि धर्मशाला और कांगड़े में। वह सोचता, यहां वह क्या करेगा ? उसे एक काम आता था, मोटर चलाना। यहां पहचानने वाले मिल जायंगे। अपना ज़िला यहाँ से है ही कितना दूर ? मोटर पर कुछ घंटे ! उसने निश्चय किया, कहीं दूर चला जाय तभी वह निश्चिंत हो सकेगा। वह सोचता स्टेशन की ओर चला जा रहा

था, कहाँ जाय ? लाहौर अमृतसर ? अमृतसर और लाहौर वह लाला ज्वालासहाय की मोटरें ले जा चुका था। उसके लिये सबसे सुरक्षित स्थान वहीं था जहाँ वह कभी न गया हो।

बीस घन्टे तक लगातार पैदल सफ़र करते रहने के बाद गाड़ी में बैठे-बैठे सफर करना धनसिंह को सबसे बड़ा सुख जान पड़ा। पहली सांत्वना उसे यही थी कि वह अब आशंका से दूर चला जा रहा है। सोमा की चिंता थी, उसका क्या होगा ? लाला जी और खास कर मनोरमा बीबी अवश्य उसकी सहायता करेंगे ! मन्नो बीबी ने पहले भी उसकी सहायता की थी। वह क्या कर सकता है। उसी डिब्बे में एक स्त्री अपने मर्द के समीप बैठी थी ! लोगों के सामने संकोच के कारण दोनों आपस में बातचीत नहीं कर रहे थे और करते भी तो बहुत धीमे से। धनसिंह सोच रहा था, यदि वह सोमा को ले आता तो वह भी ऐसे ही उसके साथ चली जाती···परन्तु वह उसे कहां ले जाता ? स्वयं तो वह सराय में ही निर्वाह कर लेगा लेकिन सोमा को देख पुलिस वाले क़दम-क़दम पर टोकते।

गाड़ी में बैठे लोगों में दो व्यक्ति खद्दर के कपड़े पहने थे और अखबार पढ़ रहे हैं। उन्होंने आपस में बातचीत शुरू की, अंग्रेज लड़ाई में हार रहे हैं। जापानी बढ़े आ रहे हैं इसलिये घबरा कर सरकार ने कांग्रेस के लीडरों को पकड़ कर जेल में डाल दिया है। देश में अंगरेजों को निकाल देने के लिये बलवे हो रहे हैं। धर्मशाला में भी वह अंग्रेजों के हारने की खबरें सुना करता था। सभी लोग चाहते थे कि अंग्रेज हार जायं। लाला जी सरकार से लाखों रुपया बना रहे थे लेकिन उन के घर में भी अंग्रेजों की हार से सब लोग प्रसन्न थे। अंग्रेजी सरकार और पुलिस के अत्याचार से सभी लोग दुखी थे। स्वयं उसका सामना कर सकने का सामर्थ्य न होने के कारण सब यही चाहते थे कि जर्मनी और जापान वाले उन्हें पीट कर हिन्दुस्तान को स्वतंत्र करा दें। दूसरी ओर लाखों लोग अंग्रेजों की नौकरी कर, उनका काम और सहायता भी कर रहे थे। यह लोग ऐसा न करते तो निर्वाह कैसे करते ? कामरेड भूषण भी ड्राइवरों को चुपके-चुपके समझाया करता था कि जालिम अंग्रेज सरकार की नौकरी करना ऐसा ही है जैसे

जंगल की लकड़ी लकड़हारे की कुल्हाड़ी में दस्ता बन कर जंगल से अपने साथी पेड़ों को कटवा दे। धनसिंह केवल एक बात जानता था, अंग्रेज सरकार और पुलिस जालिम है। सब से ज्यादा जालिम पुलिस है और पुलिस ही सरकार है !

जालन्धर में उसे होशियारपुर से आई गाड़ी छोड़ कर लाहौर से आकर देहली जाने वाली गाड़ी में बैठना पड़ा। गाड़ी में भीड़ बहुत थी। अधिकांश गाड़ियों में खाकी वर्दी पहने सिपाही बैठे थे। उन गाड़ियों में घुसने का साहस दूसरे लोग न करते। सिपाही जहां चाहते घुस आते। साधारण मुसाफिरों से ठसाठस भरी गाड़ियों में जगह न थी, फिर भी लोग उन्हीं में घुसना चाहते थे। पहले से बैठे लोगों और नये आये लोगों में झगड़ा होता लेकिन यदि सिपाही उन गाड़ियों में भी बैठने के लिये आ जाते तो उन्हें कोई न रोकता। धनसिंह बड़ी कठिनाई से एक गाड़ी में घुस पाया। मन ही मन वह खिन्न था, लोग सिपाहियों से इतना डरते क्यों हैं ? डरें क्यों न ? वे सरकारी आदमी हैं !

गाड़ी चलने पर सब लोग पाये हुये स्थान से संतुष्ट हो कर आपस का झगड़ा भूल बात करने लगे। बातें लड़ाई के ही बारे में थीं। लोग अखबारों में पढ़ी बातों पर कल्पना का रंग चढ़ा कर सुना रहे थे। बर्मा में अंगरेज़ हार गये थे। कलकत्ते में जापानी बम पड़ चुके थे। कांग्रेस के नेताओं की गिरफ्तारी के विरोध में जगह जगह बलवे हो जाने की खबरें थीं। धनसिंह चुप बैठा था परन्तु इन बातों में उसे आशा की किरणें दिखाई दे रही थीं। सरकार हार जायगी, राज बदल जायगा, पुलिस का डर नहीं रहेगा और वह फिर धर्मशाला में लौट कर सोमा के साथ रह सकेगा।

धनसिंह सोमा के पास धर्मशाला पहुंचने की बात सोचता हुआ दिल्ली पहुंच गया। स्टेशन पर और स्टेशन के सब ओर पुलिस ही पुलिस दिखाई दे रही थी। धनसिंह ने किसी से राह नहीं पूछी। दूसरे मुसाफिरों के साथ चल कर वह समीप ही एक चौड़े से बाजार में पहुँच गया। दुकानें प्रायः बन्द थीं। लोग छोटे-छोटे झुण्डों में बातचीत कर रहे थे। सब जगह हथियारबंद पुलिस चौकसी पर खड़ी थी या गश्त कर रही थी। अभी एक दिन पहले बीस घंटे चलने और फिर रेल में सिमिट कर बैठे रहने की थकावट

से धनसिंह कुछ अस्वस्थ सा था। चाहता था कहीं ज़रा लेटे और शरीर को सीधा करे।

उसने एक दुकान के सामने बैठे एक व्यक्ति से धर्मशाला का पता पूछा। धर्मशाला समीप ही थी। यह धर्मशाला उसके पहाड़ी देश की धर्मशालाओं या सराय की तरह न थी कि जो आया एक ओर लेटने भर को जगह साफ़ करके पड़ रहा। यहां एक ओर खच्चर गधे या बैल भी बंधे रहते हैं और आदमी भी विश्राम करते हैं। लाल पत्थर की आलीशान इमारत। फाटक की छत देखिए तो सिर से टोपी खिसक जाय। फाटक में तख्त पर दरी बिछाये रजिस्टर और कलम-दावात लिये एक मुंशी जी बैठे थे। उन्हों ने धनसिंह को टोक दिया—"ए, कहाँ जाते हो ?"

"मुसाफिर हूँ, टिकूंगा !"

"कहाँ से आरहे हो ?"

"होशियारपुर, पंजाब से !"

मुंशी जी ने धनसिंह को सिर से पाँव तक जाँचा। उसके परेशान चेहरे को भांपा—"अकेले ही हो ?"

"हां"

"सामान, कोई गठड़ी, बिस्तरा व बक्सा ?"

"कुछ नहीं है।"

मुंशी जी ने कुछ सोचा—"नहीं, जगह खाली नहीं है। बाहर जाओ।"

धनसिंह धर्मशाला के विस्तृत आंगन और चौड़े बरामदों में खाली जगह देख रहा था। एक ओर नल से गिरती पानी की मोटी धार में एक आदमी हरिनाम जपते नहा रहा था परन्तु मुंशी जी के इनकार कर देने के कारण धनसिंह को लौट जाना पड़ा। वह फिर बाज़ार की ओर चल पड़ा। एक ढाबे (तंदूर) से आती रोटी की सोंधी गंध ने उसे आकर्षित किया। भूख थी। खाने बैठ गया। अधिक से अधिक जितनी देर हो सकता था वह ढाबे पर बैठा रहा। फिर उठ कर बन्द बाज़ारों में छितराई हुई निरुद्देश्य भीड़ में घूमने लगा। भोजन के बाद शरीर में अधिक भारीपन अनुभव

कर, घंटाघर के पास, एक बंद दुकान के समीप बातचीत करते गिरोह के पास ही वह भी दुकान के तख्तों से पीठ सटा कर बैठ गया और बातचीत सुनने लगा।

बातचीत उसकी भाषा में नहीं हो रही थी परन्तु कांगड़ा, पठानकोट और धर्मशाला में जगह-जगह के मुसाफिरों से सम्बन्ध होने के कारण वह अधिकांश बात समझ रहा था। गाड़ी में सुनी हुई बातें ही यहां भी थीं, सब लीडरों का पकड़ लिया जाना और जापान की जीत! हड़ताल लीडरों के गिरफ्तार होने के विरोध में थी। कुछ मालूम नहीं था कि सरकार लीडरों को कहाँ ले गई है? कोई कहता, गांधी जी को विलायत ले गये हैं। कोई कहता, नेहरू जी को अफ्रीका ले गये हैं। कोई कहता, कांग्रेस ने खुली लड़ाई का हुक्म दे दिया है। कोई कहता, बिना हथियारों के कैसे लड़ेंगे? जापान ही इन सालों की खबर लेगा। उसका विरोध दूसरे ने किया, तुम देखना सही क्या-क्या होता है! सनसनी थी कि पुलिस और फौज जुलूस को रोकेगी और कांग्रेस ज़रूर जुलूस निकालेगी। दिल्ली के लीडरों के भी पकड़े जाने की खबरें थीं। धनसिंह यह सब सुन रहा था और रात कहाँ बितायेगा इसकी भी चिन्ता किये जा रहा था।

सहसा इन्कलाब-जिन्दाबाद के नारे सुनाई दिये। यह शब्द पहाड़ों से लेकर समुद्र तक भारतवर्ष की सब भाषाओं में एक हो गया था। लोग चौंक कर जिस ओर से नारों का शब्द आया था उसी ओर दौड़ पड़े। इन्कलाब ज़िन्दाबाद! अँग्रेज सरकार का नाश हो! महात्मा गाँधी की जय! और भी नारे सुनाई दिये। तिरंगा झंडा लिये एक टोली घंटाघर की ओर बढ़ती चली आ रही थी। पुलिस ने उसे तुरन्त घेर लिया। पुलिस के अफ़सर ने हुक्म दिया और भीड़ पर लाठियाँ पड़ने लगीं। भीड़ के कुछ लोग भाग गये लेकिन एक गिरोह लाठियों की परवाह न कर नारे लगाता रहा—"इन्कलाब-ज़िन्दाबाद! लीडर छोड़े जाँय! अँग्रेजी सरकार का नाश हो।"

नारे लगाने वाली टोली नारे लगाती हुई लठियाँ खा रही थी परन्तु आस-पास घिर आने वाले लोगों से निहत्थों का मार खाना चुपचाप देखा न गया। वे पुलिस पर पत्थर फेंकने लगे। धनसिंह

भी उत्तेजित हो उठा। उसने पुलिस को सदा अत्याचार करते ही देखा था। वह पुलिस को गरीब का शत्रु समझता था। वह आगे बढ़ आया और जो कुछ मिला उठा कर मार खाने वालों की सहानुभूति में पुलिस पर फेंकने लगा।

पुलिस के दो दस्ते अब तक एक ओर खड़े थे। यह लोग भी भीड़ पर टूट पड़े। उसी समय गोली चलने की आवाज़ आई। लाठी की चोट का जवाब भीड़ पत्थर से देने के लिये तैयार थी। लाठी केवल ज़ख्मी करती है परन्तु गोली प्राण लेती है। भीड़ भागी और धनसिंह भी भागा; डर कर नहीं; लड़ाई में आगे बढ़ना और भाग कर बचना दोनों बातें होती हैं। बन्दूक लिये आदमियों का सामना पत्थर से करते समय भागना और बच कर पत्थर मारना उसने कायरता नहीं समझी। धनसिंह सामने के लिये फिर लौटा लेकिन कंधे पर लाठी खा कर गिर पड़ा। उसे गिरफ्तार कर लिया गया। बहुत से लोग गिरफ्तार किये गये थे—धनसिंह को भी उनके साथ खड़ा कर दिया गया। सब लोग नारे लगा रहे थे, इन्कलाब-ज़िन्दाबाद ! अंग्रेज़ी सरकार का नाश हो ! हमारे लीडरों को छोड़ो ! धनसिंह भी नारे लगाने लगा।

जाली से मढ़ी काले रंग की लारियाँ आईं। गिरफ्तार लोगों को लारियों में बन्द कर हवालात पहुँचाया गया। धनसिंह हवालात में बन्द हो गया परन्तु वह भयभीत न था। उसके साथ बत्तीस आदमी और थे। ऐसे आदमी, जो पुलीस को डांटते थे कि, हम क्या आदमी नहीं हैं ? यहां गरमी है। हवा नहीं है। हम खुली हवा में रहेंगे। शाम तक कई जगह से गिरफ्तार किये गये कई और आदमी आ पहुँचे। उनकी संख्या पचहत्तर से अधिक हो गई। गिरफ्तार लोगों का हुलिया तथा अता-पाता लिखा गया। अधिकांश साथियों ने नाम, बाप का नाम, घर का पता पूछने पर एक ही जवाब दिया—इन्कलाब-ज़िन्दाबाद ! धनसिंह के लिये यह बहुत बहुत बड़ी सहूलियत थी। उसने भी प्रत्येक प्रश्न के उत्तर में इन्कलाब-ज़िन्दाबाद का नारा लगा दिया। संध्या समय उसे और उसके साथियों को देहली जेल में पहुँचा दिया गया।

धनसिंह पुलिस के हाथ पड़ कर हवालात और जेल जाने के

भय से सोमा को छोड़, जान की बाजी लगा कर भागा था। उसे कहीं आश्रय न मिला। आखिर वह हवालात और जेल में ही आकर टिका परन्तु अब हवालात और जेल के भय से उसका हृदय कांप न रहा था। वह औरत भगाने वाला और कातिल अपराधी न था बल्कि वीरता और बलिदान के संतोष से सीना फुलाये गुलामी और अत्याचार के विरुद्ध लड़ने वाला सैनिक था।

* * *

धर्मशाला की जेल में बन्द होते समय धनसिंह को अनुभव हुआ था कि सरकार ने हाथ-पांव बांध कर उसे अंधे कुंये में डाल दिया है। देहली जेल में वह गर्व से सिर ऊँचा कर सरकारी अफसरों को अवज्ञा की दृष्टि से देखता था। यह उसकी विजय और सरकार की पराजय थी। धर्मशाला जेल में वह जंजीर में बंधे मार खाये हुये कुत्ते की तरह जेल के वार्डरों की धमकी और मार-पीट से सहमता रहता था। देहली जेल में उसके साथी जेल के अफसरों की परवा नहीं करते थे बल्कि उन्हें डांट देते थे। जेल के अफसर भी इन लोगों से तू-तड़ाक न कर आदर से बात करते थे। धनसिंह और उसके साथियों को भी दूसरे कैदियों की तरह की पोशाक, आधी बांहों, गोल गले का ऊँचा सा कुरता और टखने से ऊँचा पायजामा पहनने को दिया गया जिस पर लाल धारी पड़ी थी। परन्तु नैतिक अपराधियों (इखलाकी कैदियों) और राजनैतिक अपराधियों (सियासी कैदियों) में देखने से ही अन्तर मालूम हो जाता। राजनैतिक कैदियों के चेहरों, बोलचाल, व्यवहार में निर्भीकता थी और नैतिक कैदियों की हर बात में लज्जा और दीनता।

एक बार जेल की सज़ा पाकर जो लोग फिर अपराध कर दुबारा जेल में आते हैं उन्हें 'दुबारा' (हैबिचुअल) कहा जाता है। यह लोग पक्के और घुटे हुये बदमाश समझे जाते हैं। इन्हें दूसरे 'इकबारा' कैदियों से, जिनके सुधार की आशा की जाती है, अलग रखा जाता है। 'दुबारा' के कपड़ों पर काली या नीली धारी पड़ी रहती है। उन लोगों को देख कर धनसिंह सोचता, यदि उसके भी पहले जेल की सज़ा पाने की बात यहां के लोगों को मालूम हो जाय तो वह भी दुबारा बना दिया जायगा। धनसिंह ने अपना

वह रहस्य किसी पर प्रकट न किया। वह जेल में दूसरे राजनैतिक कैदियों की ही तरह रहता था। जन्म, देश और भाषा से भिन्न दूसरे राजनैतिक कैदियों के साथ उद्देश्य की एकता के कारण वह एक हो गया। कुछ ही दिनों में वह इन लोगों के साथ आत्मीयता अनुभव करने लगा। जेल के अधिकारियों का सामना करने में आगे बढ़ कर रहता। उसके साथी उसका विश्वास करने और उसे चाहने भी लगे। उसे यहाँ धर्मशाला के जेल की तरह चक्की पीसते, रस्सी बंटते समय पहाड़ सा दिन काटना दूभर न हो जाता था। राजनैतिक कैदी जेल के अफ़सरों की कोशिश और धमकी के बावजूद जेल के किसी काम में मेहनत करने के लिये तैयार न थे। इस पर भी उनके लिये समय बोझल न होता।

जेल के अधिकारियों की आंख बचाकर बाहर से अखबार मंगाने, बीड़ी-तम्बाकू, चीनी और दूसरी चीजें मंगाने में उनकी बुद्धि और चेष्टा लगी रहती थी। कुछ लोगों ने बाहर से ताश मंगा लिये थे और ताश खेलते रहते। कुछ किस्सा-कहानी, गप्प या कपड़े धोने में समय काटते। कुछ लोग पुस्तकें पढ़ते रहते। जेल के अधिकारी लगभग पौने दो-सौ राजनैतिक कैदियों के प्रायः एक मत होकर चलने से कुछ घबराए रहते। बखेड़े से बचने के लिए साधारणतः उनकी बातें मान लेते। जेल के कानून की अवज्ञा करने पर भी उपेक्षा कर जाते। यह देख कर धनसिंह को सन्तोष और विजय की अनुभूति होती। इसे वह अपनी धर्मशाला जेल में हुई दुर्गति का बदला समझता था। राजनैतिक कैदियों में जरा भी मतभेद देखते ही जेल के अफ़सर सम्पूर्ण सज्जनता भूल, दमन और सख्ती दिखाने के लिए तैयार हो जाते। किसी को बेड़ी, किसी को एकान्त (तनहाई) कोठड़ी की सज़ा देने लगते।

राजनैतिक कैदियों में परस्पर मतभेद और झगड़े की भी कमी न थी। सामूहिक रूप से उनका जेल अफ़सरों से झगड़ा चलता रहता। आपस में भी राजनीति और कांग्रेस के काम के बारे में या किसी व्यक्ति या दल ने कांग्रेस का काम अधिक किया है; इस बात पर प्रायः बहस होती रहती। यह बहस कभी-कभी मार-पीट तक पहुँच जाती! धनसिंह ऐसी बहस की गहराई नहीं समझ सकता था इसीलिये प्रायः चुपचाप सुना करता।

जेल में अपने संकट से आश्रय और संगति पा कर भी जब धनसिंह को राजनैतिक कैदियों की हर समय की भीड़ से एकान्त मिलता उसके मन में प्रश्न उठने लगता—आखिर छः मास बाद जेल से छूट कर वह क्या करेगा? सोमा का क्या हुआ होगा? उसे क्या वह ऐसे असहाय छोड़ भुला देगा? जेल की चारदीवारी लांघ कर जैसे समाचार आ रहे थे, उनसे इन प्रश्नों का समाधान भी स्वयं ही हो जाता था। समाचार आ रहे थे कि अंग्रेज़ वर्मा में हार गये हैं। नेताजी सुभाषचन्द्र आज़ाद-हिन्द-सेना को लेकर भारत को स्वतंत्र कराने के लिये चले आ रहे हैं। महीने-दो महीने की बात है। 'यू० पी० में, बिहार में और दक्षिण भारत की ओर अंग्रेज़ों के विरुद्ध बग़ावतें हो रही हैं। रेलें उखड़ गई हैं, थाने जला डाले गये हैं। सब ओर हिन्दुस्तानियों की अपनी सरकार कायम हो रही है।

धनसिंह का मन छटपटा कर रह जाता—ऐसे समय यदि वह कांगड़े जिले में होता तो जाकर बैज़नाथ का थाना फूंक कर उस दुष्ट थानेदार से बदला लेता। उसे और उसके अनेक साथियों के हृदय उत्साह से उछल रहे थे कि उन्हें जेल की सज़ा छः मास भी नहीं काटनी पड़ेगी। किसी दिन भी देहली की जनता आकर जेल के फाटक तोड़ उन्हें स्वतंत्र कर देगी। धनसिंह सुखमय कल्पना में खो जाता कि वह सीधा कांगड़े की ओर चल देगा।

बहस के समय अंग्रेज़ी जानने वाले लोग प्रायः अंग्रेजी में बोलते। अंग्रेज़ी जानने वालों का आदर भी अधिक था। कभी-कभी देहली के आस पास के गांवों के जाट साथी या कुछ ऐसे कार्यकर्त्ता जो अंग्रेजी नहीं जानते थे, अंग्रेजी का विरोध कर उठते। रोहतक का भूरेसिंह पुराना कार्यकर्ता था। ग्रामीण जनता में उसका प्रभाव बहुत था। जब वह खंजड़ी बजाकर हरियाना की बोली में अंग्रेज़ों से विद्रोह के गीत गाता, जनता झूम उठती और किसी बड़े से बड़े नेता की सभा से अधिक भीड़ लग जाती। भूरेसिंह अंग्रेज़ी में बहस होने पर खिन्न हो कर डांट देता—"ये क्या गिट्ट-पिट्ट करो हो जी? सिद्धे-सिद्धे बोलो। म्हारी भी समझ मां आवे! अपणे भाइयां ते किस बात का पर्दा है जी? जणता ही हमारी बात नई समझेगी तां क्या अंग्रेजां के समझाणे खातिर

अंग्रेजी मां गिट्ट-पिट्ट मारो हो ?" धनसिंह भी अंग्रेज़ी नहीं समझता था। उसे भूरेसिंह की बात बहुत जंचती। वह भी हिन्दुस्तानी में बात करने का आग्रह करता लेकिन हिन्दुस्तानी में बहस होने पर भी वह अधिक न समझ पाता। सबसे ज्यादा बहस करते कम्युनिस्ट साथी।

धनसिंह को अपने रसे-बसे साथियों की अपेक्षा स्वराज्य की आवश्यकता कहीं अधिक थी। वह उसी आशा पर जी रहा था। अंग्रेजी राज का मतलब उसके लिये जीवन भर का घर से निकाला और सोमा से जुदाई थी और पकड़े जाने का मतलब, आयु भरकी जेल या फांसी। अंग्रेजों के पराजय और स्वराज्य के लिये उसकी उत्सुकता पागलपन बन जाती। समाचारों के लिये वह बावला हो जाता। राजनैतिक कैदियों के हाते के बाहर आने जाने वाले कैदी नम्बरदारों से समाचार पूछता और उर्दू का अखबार पाने के लिये वह सब कुछ करने के लिये तैयार रहता।

जेल के कायदे से सी-क्लास के कैदियों को अखबार नहीं मिलना चाहिये था परन्तु राजनैतिक कैदियों के अहाते में अखबार पहुंच ही जाता। राधे चौधरी अखबार के बहुत शौकीन थे। इसके अतिरिक्त वे जेल के अफसरों और अपने साथियों को दिखा देना चाहते थे कि सरकार चाहे जो करले, उनका अखबार बन्द नहीं कर सकती! मकान उनका देहली में ही था। जेल के वार्डरों से उनकी सांठ-गांठ रहती थी। एक रुपये पर चवन्नी कमीशन देकर वे जेल में चोरी से रुपया मंगवा लेते और रुपये के ज़ोर जो चाहे जेल में मंगवा लेते। बीस-पच्चीस रुपया माहवार पाने वाले जेल वार्डरों को जो कैदी महीने में तीस-चालीस रुपये खिला दे, वह कैदी उसके लिये मालिक से कम न था। अखबारों में जेल में होने वाली ज्यादतियों के समाचार छप रहे थे इसलिये अफसर अखबार जेल में न पहुँचने देने के लिये विशेष सतर्क थे। कई दिन तो राधे चौधरी को इकन्नी का अखबार जेल में पहुंचाने के के लिए दो-दो रुपये तक देने पड़े परन्तु वह अपनी आन पूरी करने के लिये उससे पीछे नहीं हटे।

कुछ कम्युनिस्ट जेल में कई मास पहले से बंद थे। इन लोगों ने अपनी साठ-गांठ अलग से जमा रखी थी। कम्युनिस्ट अखबार

और किताबों के बिना रह नहीं सकते थे। राधे चौधरी का अख-बार न आ सका परन्तु कम्युनिस्टों का अखबार फिर भी आगया। किसी न किसी तरह यह खबर जेल दफ्तर में पहुंच गई और राजनैतिक कैदियों की बारिक के हाते के जमादार को फिर बदल दिया गया। उसकी जगह जेल के सब से सख्त और ईमानदार जमादार निहालसिंह को ड्यूटी पर लगाया गया।

शाम हो रही थी। जेल के कारखानों में काम बन्द होने की घन्टी बज चुकी थी। इस समय कारखानों में काम करने वाले नैतिक-कैदी और कम सजा पाये जेल से बाहर मेहनत करने के लिये जाने वाले कैदी हातों में वापिस लौटते थे। इन लोगों से खबरें मिलती थीं। राधे चौधरी का अखबार दो दिन न आ सकने के कारण धनसिंह परेशान हो इन कैदियों की प्रतीक्षा में बारिक के सामने टहल रहा था और जंगलेदार फाटक से सड़क की ओर टकटकी लगाये था। कम्युनिस्ट दीवान ने आकर धनसिंह से कहा—"ठाकुर, आज बड़ा गज़ब हो जायगा !"

"क्या ?"—धनसिंह ने प्रश्न किया।

"दो दिन से चौधरी का अखबार नहीं आ पाया। आज हमारा अखबार भी ज़रूर पकड़ लिया जायगा। अगर हमारा अखबार पकड़ लिया गया तो फिर अखबार नहीं आ सकेगा और जेल की खबर आना-जाना भी बन्द हो जायगी।"—दीवान ने कहा।

"कैसे ?"—आशंका से धनसिंह ने पूछा।

दीवानचन्द ने धनसिंह को एक ओर ले जाकर समझाया—"सुना है, यह जमादार निहालसिंह भंगियों के पीपों की भी तलाशी ले लेता है। इसने तीन नम्बर अहाते में भंगी के पीपे में से बीड़ी के बंडल पकड़वाये थे इसीलिये इसे यहाँ भेजा गया है। किसी से कहना नहीं, हमारा अखबार कुन्दन मेहतर लाता है। अगर वह पकड़ा गया तो फिर सियासी कैदियों का कोई काग़ज़ का पुर्जा भी नहीं आ-जा सकेगा ! अपना आदमी नहीं पकड़ा जाना चाहिये !"

"तो फिर ?"—धनसिंह ने प्रश्न दोहराया।

दीवानचन्द उंगलियों से इस ओर उस ओर इशारे कर उसे

कुछ समझाता रहा। एक ओर खड़े नम्बरदार की ओर भी उसने संकेत किया।

कारखानों और दूसरी जगहों में काम करने वाले कैदियों की कमानें अहाते में लौट रही थीं। जमादार निहालसिंह दो नम्बरदारों की मदद से एक-एक कैदी की तलाशी, बगलें और कमर बन्द के चारों ओर की जगह टटोल-टटोल कर और कुछ से पायजामा लंगोटी तक उतरवा कर ले रहा था। नित्य की तलाशी के बावजूद कैदियों के पास कोई न कोई आपत्तिजनक वस्तु निकल ही रही थी; किसी के पास लोहे की तेज़ की हुई पत्ति या जेबी उस्तरे का ब्लेड, किसी के पास खाने-पीने की तम्बाकू। यह सब चीज़ें वह एक नम्बरदार के हवाले किए जा रहा था।

भंगी कमान भी तलाशी की प्रतीक्षा में खड़ी थी। इस कमान के पहले आदमी कुन्दन मेहतर के आगे बढ़ते ही अहाते में चीख सुनाई दी—"मार डाला, मार डाला!" और दिखाई दिया कि दुबला-पतला दीवानचन्द भय के मारे सिर पर पांव रखे भाग रहा है और धनसिंह एक नम्बरदार का छोटा डंडा छीनकर गाली देता हुआ उसका पीछा कर रहा है। धनसिंह के पीछे एक नम्बरदार दौड़ा। दूसरी ओर से दीवान को बचाने के लिये वाजिद चिल्लाता हुआ बीच में आ पड़ा और ज़ोर ज़ोर से चिल्लाने, पुकारने और धमकाने लगा। "क्या है ? क्या है ?" पुकारते हुये हुए कई दूसरे राजनैतिक कैदी भी आ गये।

जमादार निहालसिंह फाटक पर तलाशी छोड़ सीटी बजाते हुए घटनास्थल की ओर दौड़ पड़ा। उसे जेलर की हिदायत थी कि राजनैतिक कैदियों पर सख्ती करने का अवसर मिलते ही उसका फायदा उठाये, उन्हें दंगाई और बदमाश साबित करे। जमादार की सीटी से बाहर भी सीटियां बजने लगीं। पल भर में जेल के फाटक पर लटका घंटा टन-टन कर बज उठा। "पगली! पगली! पगली हो गई?" का शोर मच गया। कैदी जल्दी-जल्दी बारकों में बंद होने के लिये दौड़ने लगे! भंगी कमान भी अपने पीपे, कनस्तर सिर पर उठा भीतर आ गई। पांच सात मिनिट में सब जेल बंद हो गया।

राजनैतिक कैदियों की वारिक में सनसनी फैल गई। राधे चौधरी और उनके साथी कह रहे थे "साले कम्युनिस्टों ने अगर धनसिंह को सज़ा दिलाई तो इनकी खबर ली जायगी!" किसी ने कहा—"सालों को कम्बल डाल कर ठीक किया जाय!" किसी ने कहा-"इन लोगों का बायकाट किया जाय!"

सुपरिंटेण्डेण्ट साहब, जेलर और दूसरे अफ़सर शान्ति की व्यवस्था करने के लिये बंदूकें लिये कुछ सिपाहियों के साथ राजनैतिक कैदियों की बारक के सामने आ खड़े हुये। धनसिंह, दीवानचन्द और वाजिद को पेशी के लिये साहब के सामने बुलाया गया। धनसिंह, वाजिद और दीवानचन्द को हथकड़ियां पहना दी गई थीं। धपले में धनसिंह को दो तीन जगह चोट भी आ गई थी।

साहब को जेलर ने समझा दिया था कि यह कम्युनिस्ट और कांग्रेसी कैदियों का झगड़ा है। साहब ने दीवानचन्द को सान्त्वना देने के स्वर में धनसिंह की ओर इशारा कर पूछा—"इस बदमाश ने तुमको मारा ?"

दीवानचन्द ने कहा—" नहीं, मुझे नही मारा।"

साहब ने होंठ सिकोड़ घूर कर दीवानचन्द की ओर देखा और फिर होंठ सिकोड़ कर उन्हों ने धनसिंह से पूछा-"तुमको इसने मारा ?"

असिस्टेंट जेलर आगे बढ़ कर बताने लगा कि धनसिंह दीवानचन्द को मार रहा था। नम्बरदार के रोकने पर धनसिंह ने नम्बरदार का डंडा छीन लिया और नम्बरदार को भी मारा। वह दीवानचन्द के पीछे भाग रहा था। वाजिद को भी धनसिंह ने मारा और दूसरे नम्बरदार किरपा के रोकने पर उसे भी मारा। दूसरे कई कांग्रेसी कैदी भी नम्बरदारों को मारने के लिये दौड़े। झगड़े में सबको पहचानना कठिन था। साहब ने सुन लिया परन्तु फिर दीवानचन्द या धनसिंह से कोई प्रश्न नहीं किया। उन्हों ने अंग्रेजी में जेलर से कहा;—"यह लोग बहुत घुटे हुये हैं। इन्हों ने आपस में समझौता कर लिया है।" असिस्टेंट जेलर ने सुझाया—"इस समय तो यह लोग समझौता कर रहे हैं लेकिन हुजूर रात

बैरक बंदी के बाद अगर मारपीट करें ? हुक्म हो तो इन तीनों को तनहाई कोठड़ियों में भेज दिया जाय !"

दीवानचन्द बोल उठा—"साहब, आप राजनैतिक कैदियों को बदनाम करने के लिये खामुख्वा दंगे का इलज़ाम लगा रहे हैं। हम लोग कसरत के लिये आपस में कबड्डी खेल रहे थे। नम्बरदारों ने डंडा चलाना शुरू कर दिया। यह सब इस जमादार की शरारत है। जेलर ने इसे यहाँ हम लोगों को परेशान करने के लिये भेजा है। जब यह जमादार इस अहाते में आता है, कोई न कोई फिसाद खड़ा हो जाता है। झूठी बात बना करके हम लोगों की बेइज्जती की जा रही है। आप फैसला करें नहीं तो हम बाहर के अधिकारियों के पास शिकायत करेंगे।" साहब क्रोध प्रकट करने के लिये बिना कुछ उत्तर दिए लौट पड़े लेकिन कुछ कदम जाकर उन्होंने जेलर से कहा—"इन लोगों को साथ रह कर आपस में लड़ने झगड़ने दो। कुछ वारदात होगी तो बाहर अदालत में मामला भेज कर इन्हें सजा कराना ही ठीक होगा।"

अहाते में यों हल्ला मचा कर राजनैतिक कैदियों के बिलकुल सजा न पाने से जेल का दबदबा बिल्कुल समाप्त हो जाता। इस लिये साहब ने दीवानचन्द, धनसिंह और वाजिद को दो दो दिन अकेले कोठरी में बन्द रहने की सजा दे दी। अब बारिक में दूसरी ही सनसनी फैल गई ! कम्युनिस्ट जैराम और सोशलिस्ट अर्जुनलाल ने कहा कि जब दीवानचन्द और धनसिंह साफ कह रहे हैं कि उनमें झगड़ा नहीं हुआ तो सजा किस बात की ? यदि जेल वाले इस तरह हमारा अपमान करते हैं तो सब लोग भूख हड़ताल करेंगे।

इस बात पर बैरिक भर के राजनैतिक कैदियों की सभा की गई। बैरिक में सब से अधिक आदर सोमनाथ जी का था। शहर में भी उनका मान था। वे कांग्रेस के पुराने नेता और कार्यकर्ता थे। उनके घर पर काफ़ी सम्पत्ति थी परन्तु दरिद्रों के दुख से कातर हो उन्हों ने अपनी इच्छा से दरिद्रों के समान जीवन अपना लिया था। सरकारी हुक्म से उन्हें "ए" क्लास दिया गया था परन्तु यह सोम बाबू के सिद्धान्त के विरुद्ध था ! वे "सी" क्लास में ही रहते थे। जेल में वे भोजन नहीं करते थे। अपने खर्च पर दो

सेर दूध और कुछ फल मंगवा लेते। मिल के सूत से बना जेल का कपड़ा भी वे नहीं पहनते थे। केवल शुद्ध खद्दर का एक अँगोछा कमर में लपेट कर पश्मीने का शाल ओढ़े रहते और दिन भर तकली से सूत कातते रहते या पढ़ते रहते। चोरी से मँगवाया हुआ अखबार पढ़ना वे उचित नहीं समझते थे। केवल खबरें सुन लेते।

लोगों के बहुत अनुरोध करने पर सोम बाबू भी सभा में आये। भूख हड़ताल के लिये अर्जुनलाल और जैराम का प्रस्ताव नौजवान लोगों को तो ठीक जंचा। नौजवान जेल वालों द्वारा अपमान के विरुद्ध लड़ना चाहते थे लेकिन राधे चौधरी इस के विरुद्ध थे। उनका कहना था इस अपमान का बदला लेने के लिये जेलर को गालियां देकर पीटना चाहिए। हम स्वयं भूखे क्यों मरें ? उन्हों ने खड़े होकर कहा—"लुगाइयों की तरह रूठने से क्या होता है कि हम खाना नहीं खायेंगे ? ऐसे तो उल्टे सरकार का अनाज बचता है।" उन्हों ने वजनी गाली देकर कहा—"कोई····हमें सजा दे तो हम साले का सिर तोड़ कर रख दें ! हम तो नेता जी की बात मानते हैं। लड़ कर अपना हक लेंगे !" राधे चौधरी के साथ ठंडाई पीने वाले चार-पांच आदमियों का गिरोह रहता था। वे लोग कसरत करते थे और महात्मा गाँधी और नेता जी की जय पुकारते थे। बाहर से मिठाई और तम्बाकू मँगा कर खाते-पीते रहते थे। वे सब उनका समर्थन कर रहे थे।

जैराम और अर्जुनलाल ने समझाना चाहा कि साहब या जेलर को गाली देकर पीटने से स्थिति सुधरेगी नहीं, बल्कि बिगड़ेगी। सरकार को हम पर लाठी चार्ज करने का बहाना मिल जायगा और जनता भी हमें दंगाई समझेगी। भूख हड़ताल कायरता नहीं है। यह सत्याग्रह का हथियार है जो महात्मा गाँधी ने हमें सिखाया है।" राधे चौधरी के साथी ताली बजा कर हो-हो कर शोर मचाने लगे—"लूलू है !" इस पर भी अधिकांश नौजवान जेल में अपमान न सहने के लिये भूख हड़ताल की माँग कर रहे थे। वे चाहते थे उनके नेता सोमा बाबू उनकी ओर से साहब को भूख हड़ताल का नोटिस दें। सोम बाबू के यह स्वीकार न करने पर अर्जुनलाल और जैराम इस बात के लिये तय्यार हो गये परन्तु अनुरोध था कि सोम बाबू भी वैरिक का साथ दें तो अच्छा है।

सोम बाबू कम्यूनिस्टों और सोशलिस्टों की यह चालाकी समझ गए। वे जानते थे कि यह लोग सदा ही उनका प्रभाव घटाने की तिकड़म करते रहते हैं। उन्होंने समझाया—"यदि जेल वाले अपने नियम के अनुसार हमें कोई सज़ा देते हैं तो हमें शान्ति से सह लेना चाहिए, यही हमारा आत्मिक बल है। अत्याचार को बढ़ लेने देने ही से उसका नाश होता है। गीता में लिखा है, जब धर्म की अत्यन्त ग्लानि हो जाती है तभी भगवान की शक्ति अवतार लेकर न्याय की स्थापना करती है। हमें यदि अनशन करना है तो जेल वालों के विरोध में नहीं करना चाहिये बल्कि आत्मिक शुद्धि के लिये करना चाहिये। गांधी जी कभी विरोध में उपवास नहीं करते, सदा प्रायश्चित में ही उपवास करते हैं। हमें जेल अफ़सरों और सरकार का हृदय परिवर्तन करना चाहिये। आप लोगों का व्यवहार हिंसा का है। आप जेल वालों को डराना चाहते हैं। गाँधी जी की आज्ञा है कि हम लोग जेल में जाकर तपस्या करें! जेल के नियमों का पालन करें परन्तु आप लोग चोरी से अखबार मंगाते हैं।"

अर्जुनलाल ने टोक दिया—"बाबू जी यदि जेल में अत्याचारी नियमों को मानना है तो जेल से बाहर ही क्यों कानून तोड़ा जाये? अंग्रेज़ सरकार का नियम है कि सब हिन्दुस्तानी वफ़ादार गुलाम बने रहें! मानिये इसी नियम को! स्वराज्य क्यों मांगते हैं आप? स्वराज्य की मांग भी तो सरकार का विरोध है? हम भूख हड़ताल करेंगे और सरकार से मांग करेंगे कि हमें अखबार मिलें! हम जानवर नहीं हैं, आदमी हैं।"

सोम बाबू ने क्रोध को संयम से दबा कर उत्तर दिया—"यदि आप लोग गांधी जी की आज्ञा के विरुद्ध आचरण करेंगे तो मैं पत्र लिख कर महात्मा जी को और सब नेताओं को इस बात की सूचना दे दूंगा कि आप लोग कांग्रेस के मेम्बर होने लायक नहीं हैं। मैं जेल वालों के प्रति आप के इस अन्याय के पश्चाताप में आमरण अनशन करूंगा। जब भी हिन्दुस्तानियों ने अंग्रेज़ों और सरकार के प्रति हिंसा और अन्याय का व्यवहार किया है, महात्मा गांधी ने सदा उपवास द्वारा उसका प्रायश्चित किया है। मुझे भी ऐसा ही करना होगा।"

जैराम, अर्जुनलाल और कम्युनिस्ट वाजिद सोम बाबू को उत्तर देना चाहते थे परन्तु राधे चौधरी के आदमियों ने ज़ोर से नारा लगा दिया—"महात्मा गाँधी की जय !" उन्हों ने किसी को बोलने नहीं दिया। कोई कुछ कहना चाहता तो वे ज़ोर से महात्मा गांधी की जय का नारा लगाने लगते। उन्होंने खुले आम धमकी दी—"जो साला स्टालिन के बेटों के कहने से अनशन करेगा उस पर कम्बल डाला जायगा।" 'कम्बल डालना' जेल में पिटाई का खास ढंग है जिसमें पिटने वाले का सांस रुक कर तकलीफ़ अधिक होती है और मार खाने वाला यह भी नहीं जान पाता कि मार कौन रहा है। बारिक में हड़ताल न हो सकी। धनसिंह को दिल्ली जेल में कभी इतना कष्ट न हुआ था जितना इस घटना से। वह चाहता था, जरा राधे चौधरी से दो-दो हाथ करके देखे परन्तु दीवानचन्द, अर्जुन और वाजिद ने मना कर दिया कि जेल वालों के सामने राजनैतिक कैदियों की छीछालेदर कराना ठीक नहीं! अब तक वह सोम बाबू के त्याग के कारण उन पर श्रद्धा करता था। अब उस के मन में इच्छा होती कि जा कर उन के मुंह पर थूक दे।

राजनैतिक कैदियों की बारिक में फूट पड़ गई। जेल वालों ने सख्ती शुरू कर दी। जिन मामूली कायदों के भंग होने की जेल वाले उपेक्षा करते थे अब उन के लिये राजनैतिक कैदियों को सजायें मिलने लगीं और राजनैतिक कैदियों को चक्की तथा रस्सी बंटने का काम करना पड़ा। दीवानचन्द ने धनसिंह को समझा दिया था कि अपना अखबार आने तथा उस दिन के झगड़े का रहस्य किसी को न बताया जाय। राजनैतिक कैदियों की बारिक में भी कई मुखबिर हैं। बारिक में फूट और अफ़सरों की सख्ती बढ़ने से दीवानचन्द का अखबार आना भी रुक गया। धनसिंह को यह कमी बहुत खलती। बाहर से देश में विद्रोह फैलने, अंग्रेजों के जापानियों से हार कर भागने की खबरें मिलना बन्द हो जाने से उसे ऐसा जान पड़ता कि स्वराज्य का खुलता हुआ द्वार सहसा बन्द हो गया। उसके भावी जीवन की आशा और सोमा से फिर मिलने की आशा मिट गई।

अखबार वाली घटना से धनसिंह, दीवानचन्द और वाजिद

आदि का मित्र बन गया। जेल में आते ही यह जान कर कि यह लोग कम्युनिस्ट कामरेड हैं, भूषण के सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार की याद से उसे उनकी ओर कुछ आकर्षण हुआ था। वह जानता था कामरेड लोग मज़दूरों के मददगार होते हैं परन्तु जेल में आते ही उसने सुना कि कम्युनिस्ट जापानियों के खिलाफ़ हैं जो कि हमारे दुश्मन अंग्रेजों से लड़ रहे हैं और रूस से हुक्म मिलने के कारण अंग्रेज़ों के सहायक बन गये हैं। अर्जुनलाल ने धनसिंह को यह सब समझाया था। अर्जुनलाल पर धनसिंह की विशेष श्रद्धा थी। उसने अर्जुन को चाँदनी चौक में जम कर लाठियाँ खाते देखा था। अर्जुनलाल पढ़ा लिखा भी था। अर्जुन ने उसे बताया था कि वह पहले कानपुर के मज़दूरों में काम करता था और दिल्ली की मिलों में मज़दूरों का नेता था। कम्युनिस्टों से उसका इसी बात पर झगड़ा हो गया कि यह लोग अंग्रेज़ों से मिल गए हैं और कांग्रेसियों को पकड़वा रहे हैं। उसने धनसिंह को कम्युनिस्टों की लम्बी चौड़ी बातें और दलीलें सुनने से मना कर दिया था और आश्वासन दिलाया था कि यदि छः मास में स्वराज्य न हो गया तो वह उसे अपने साथ ले जाकर क्रांति के काम में भाग लेने का अवसर देगा।

राधे चौधरी के पेट में दर्द रहने लगा था। वे कुछ दिन जेल के हस्पताल में रहे और फिर रिहा हो गये। बारिक में फिर से पका हो गया। अखबार फिर चोरी-चोरी मंगाया जाने लगा। अब खबरें और भी उग्र आ रही थीं। जापानी पूरा बर्मा जीत कर आसाम की सीमा पर आ पहुंचे थे। बंगाल में कई जगह और कलकत्ते में भी बम पड़ने के समाचार आ रहे थे। जेल के कैदी बहुत उत्साहित हो रहे थे कि अब जापानी सेना और आज़ाद हिंद सेना की मार से अंग्रेज़ भागने ही वाले हैं और वे लोग जेल से आज़ाद हो जायंगे।

अर्जुन और धनसिंह के छूटने के दिन नज़दीक आ रहे थे। इतने में समाचार मिला कि गाँधी जी ने उपवास कर दिया है। उपवास का कारण लोगों को कुछ समझ नहीं आ रहा था। दीवान, वाजिद आदि कम्युनिस्ट भी छूट गये थे परन्तु उनके कुछ चेले पीछे रह गये थे। उन्होंने बताया कि गाँधी जी कांग्रेस पर अंग्रेज

सरकार द्वारा हिंसा और तोड़-फोड़ का आरोप लगाने का विरोध कर रहे हैं। हम तो पहले ही कहते थे कि यह आन्दोलन कांग्रेस का नहीं है। कांग्रेस नेता ऐसी मूर्खता कैसे कर सकते थे कि दुश्मन सिर पर खड़ा हो और वे दुश्मन का सामना करने की अपनी शक्ति नष्ट कर दें ? यह तो सब अंग्रेज नौकरशाही की बदमाशी थी कि नेताओं की गैरहाजरी में जनता को दमन से भड़का कर उन्हों ने मनमानी करने के लिये बहाना ढूँढ़ लिया और सोशलिस्ट मूर्ख बन गये !

नौजवान लोग इन बातों से विचलित होने लगे। उन्हें जान पड़ा कि उनका आन्दोलन में भाग लेकर जेल आना मूर्खता ही थी। गाँधी जी इसे पसन्द नहीं करते थे। धनसिंह भी खिन्न रहने लगा। खिन्नता का सबसे बड़ा कारण था कि वह फिर गुलाम देश और अँग्रेजों की अमलदारी में ही जेल से रिहा हो रहा था। अपने देश जाकर सोमा से मिलने की कोई आशा न थी।

* * *

अर्जुनलाल और धनसिंह जेल से छूट कर बाहर आये तो सब ओर आतंक और निरुत्साह छाया हुआ था। जनता महात्मा गाँधी के उपवास के कारण भ्रम में थी। साधारणतः लोग यही समझ रहे थे कि महात्मा गांधी ने उपवास इसलिये किया है कि जेल से छूट कर फिर आन्दोलन चलायें। सरकार ने निरंकुश दमन से जनता को आंतकित कर दिया था। स्वतंत्रता का आन्दोलन या कोई सरकार विरोधी प्रदर्शन कहीं दिखाई न देता था। सामूहिक और सार्वजनिक रूप से आन्दोलन और प्रदर्शन दब चुके थे परन्तु अंग्रेज़ सरकार के प्रति घृणा जनता के हृदयों में अधिक गहरी बैठ गई थी। सरकार के प्रत्येक काम में जनता को सन्देह होता था और उसे सब ओर सरकार की निर्बलता दिखाई देती थी। अन्न की कमी के कारण लूट-मार हो जाने की आशंका दूर करने के लिये सरकार ने राशनिंग की व्यवस्था कर दी। जनता का विश्वास था कि सरकार लड़ाई के लिये अन्न बटोरने के प्रयोजन से हमें कम भोजन दे रही है।

जनवरी मास में जापानी हवाई जहाज रात में आकर कलकत्ते

में तीन बेर बम फेंक चुके थे। देहली में सरकारी इमारतों को रेत के बोरों और पर्दा दीवारों से ढक दिया गया था। जगह-जगह बम के आक्रमण से बचने के लिए रक्षास्थान बना दिये गये थे। बड़े-बड़े शहरों को आकाश से बम का निशाना बनने से बचाने के लिए सरकार ने रात में उजाला कम करने की आज्ञा दे दी थी और दुश्मन के हवाई जहाज़ सिर पर पहुंच जाने के समय नगरों में तुरन्त बिलकुल अंधकार कर देने की भी व्यवस्था की गई थी। इसके लिये कभी-कभी 'ब्लैक आउट' पूर्ण अन्धकार का अभ्यास और परीक्षण किया जाता था। जनता को इसमें सरकार की भीरुता दिखाई देती। जनता अपनी रक्षा के लिये जारी की गई इन सरकारी आज्ञाओं की अवहेलना करती और उन्हें इससे संतोष होता। जनता के हृदय जल रहे थे परन्तु इस घृणा का प्रकट रूप दिखाई न देता था!

अर्जुन धनसिंह को लेकर देहली में अपने मित्रों और परिचितों से मिलने गया। नौजवान लोग गत अगस्त में आरम्भ किये आन्दोलन को फिर से चलाना चाहते थे। अर्जुन समाजवादी नेता के पास गया। उन्होंने अपनी बीमारी की बात कर असामर्थ्य प्रकट कर दिया। गांधीवादी नेताओं ने सलाह दी—अभी प्रतीक्षा करो! गांधी जी पर विश्वास रखो! उपवास के बाद सरकार से गांधी जी का पत्र व्यवहार होगा तभी मार्ग निश्चय होगा!

देहली के रेल मज़दूरों में अर्जुनलाल का खासा प्रभाव था। जेल से छूटने के बाद वह स्थिति देखने के लिये मज़दूरों की बस्तियों में गया। वहां कम्युनिस्टों ने प्रभुत्व जमा लिया था। अर्जुनलाल के जेल जाने से पहले तक कम्युनिस्ट पार्टी गैरकानूनी थी। कम्युनिस्ट मज़दूरसभा और दूसरे कई संगठनों की आड़ में ही काम करते थे। अब वे खुला प्रचार कर रहे थे। एक नयी, रैडिकल डेमोक्रेटिक पार्टी भी पैदा हो गई थी जो लाल झण्डा लेकर अंग्रेजों की सेना में भरती होने का प्रचार कर रही थी। यह पार्टी अंग्रेजों को प्रजातंत्र का रक्षक बता कर उन्हें युद्ध में पूरी सहायता देने की सलाह दे रही थी। कम्युनिस्ट मज़दूरों को जापान के आक्रमण के समय दुश्मन का मुकाबिला ढीला न होने देने के लिये किसी भी प्रकार की हड़ताल न करने देने की सलाह दे रहे

थे और सरकार से अपने देश की रक्षा के लिये युद्ध में सहयोग देने के लिये अवसर की मांग कर रहे थे। जनता एक ही सा झण्डा लेकर चलने वाली इन दोनों पार्टियों में भेद न समझ पाती और अंग्रेज़ों की सहायता की पुकार लगाने वालों के प्रति घृणा करने लगी।

कांग्रेस समाजवादी नेता प्रायः फरार थे। उनकी खोज लगाने में उन लोगों को दो दिन लग गये। अर्जुनलाल खर्च की तंगी से भी परेशान था। युद्ध से पहले वह बारह आना रुपये में दिन काट लेता था अब महंगाई के कारण डेढ़-दो रुपये में कुछ न बनता। सब बेबस। रुपये का अठारह सेर बिकने वाला अनाज चार सेर के भाव बिक रहा था।

एक रात अर्जुन और धनसिंह ने बहुत धीमे स्वर में बोलता आज़ाद हिन्द रेडियो सुना। रेडियो पर समाजवादी नेताओं ने सलाह दी, जैसे भी हो अगस्त, ४२ की क्रान्ति को जारी रखा जाय। जापान आ रहा है। वह अंग्रेजों के जमे हुये पांव उखाड़ देगा। उसी समय भारत के आज़ाद होने का समय होगा। हमें मार खाते हुये अंग्रेज़ों को धक्का देकर अपना राज लेना है। जनता को समझाओ, सरकार से असहयोग करो! किसानों को समझाओ, सरकार को फौज के लिए और राशन के लिये अन्न न दें। इससे सरकार के विरुद्ध विद्रोह होगा। जनता के विद्रोह और जापान की मार के बीच अंग्रेज़ सरकार समाप्त हो जायगी। गांवों में जाओ! यदि गाँवों से मिलों के लिए कच्चा माल और फौजों के लिये सिपाही नहीं मिलेंगे तो अंग्रेज़ी सरकार सात दिन भी नहीं चल सकेगी। "सैगों" रेडियो से सुभाष बाबू का संदेश सुनाया गया—"भारत की करोड़ों ग्रामीण जनता इस समय क्रांति का मार्ग दिखाने वाले नवयुवक नेताओं की प्रतीक्षा कर रही है। भारतीय पुलिस और सेनाओं में इस समय अंग्रेजों के विरुद्ध घृणा और विरोध का ज्वालामुखी धधक रहा है। वे केवल जनता द्वारा बगावत शुरू करने की प्रतीक्षा कर रहे हैं।......"

दारुण परिस्थितियों में विकट संघर्ष चल रहा था। देश का भाग्य निश्चय होने का समय था परन्तु देहली के नागरिक या तो परेशानी में सिर लटकाए हुए थे या सब कुछ भुला कर किसी

तरह मन बहला रहे थे। बाज़ारों में जाने कहाँ से पैसा बरस पड़ा था। पैसे की कीमत चाहे कुछ न रही थी लेकिन लोग ऐसे खर्च कर रहे थे कि रुपया पड़ा मिल गया हो। सिनेमा के आगे ऐसी भीड़ होती जैसी कुम्भ के अवसर पर तीर्थ स्थानों में होती है। अर्जुनलाल और धनसिंह को सरकार के दमन के सामने सिर झुका देने वाले लोगों के प्रति घृणा हो रही थी। आज़ाद हिंद रेडियो का संदेश सुन उनके दिल उत्साह से फूल गए। उन्हों ने देहातों में जा कर क्राँति का कार्यक्रम चलाने का निश्चय किया।

अर्जुनलाल ने धनसिंह को समझाया—देहात में काम करना अधिक सरल होगा और वहीं काम की ज़रूरत है। भारत के गाँवों में अभी मनुष्यता और हमारी प्राचीन संस्कृति बाकी है। किसानों में अतिथि सत्कार का भाव थोड़ा बहुत शेष है। शहर की सी अवस्था नहीं है कि सब अपना ही पेट भर रहे हैं। जहाँ जायंगे, दो रोटी और छाछ का लोटा मिल ही जायगा। देहली के आस पास उसने आन्दोलनों में काम किया था। वह धनसिंह को गांव के अनुभव सुनाता रहा। खुफिया पुलिस उनका पीछा न कर सके इसलिये वे लोग रात के समय मथुरा के लिये चलने वाली गाड़ी से देहली से निकले। उनका विचार हाथरस ज़िले की ओर देहात में जाने का था। इस देहात से अर्जुनलाल का कुछ परिचय था।

अर्जुनलाल कुछ दिन हाथरस की मंडी में मुनीमी का काम कर चुका था। उसे व्यवसाय में रूचि भी थी। धनसिंह को ले वह मंडी गया। अनाज के आने का मौसिम न था परन्तु मण्डी में काफ़ी सरगर्मी थी। सरकार के एजेण्ट गल्ला खरीद रहे थे और देसी थोक व्यापारी उनसे भी तेज़ भाव में खरीद रहे थे। अर्जुनलाल को यह भी मालूम हुआ कि व्यापार के लिए अच्छा अवसर है। सरकार शहरों में राशनिंग के लिए और फौज के लिए जिस भाव मिलेगा खरीदेगी, यह सोच कर सत्तीदार लोग खूब खरीद रहे थे। वैसाख और जेठ के सौदे और भी तेजी से होरहे थे।

अफवाह थी कि मण्डियों में लोग कांग्रेस के कहने से सरकार को माल नहीं दे रहे हैं इसलिए सरकार दिहातों में अफ़सरों के ज़ोर से गल्ला खरीदवा रही है। अर्जुनलाल ने धनसिंह को

समझाया—"इस समय देहात में जा कर सरकार को गल्ला देने के विरुद्ध प्रचार करना चाहिए ताकि सरकार की आर्थिक जड़ कट जाय।" अगले दिन वे लोग सिधेरा गांव की ओर चले। खेतों में फ़सल घुटनों तक चढ़ आई थी। वे लोग मुंह अंधेरे ही पैदल चल दिये। कच्ची सड़कों की धूल घुटनों तक चढ़ चुकी थी। यद्यपि जाड़े की धूप असह्य न थी परन्तु प्यास से गला सूख रहा था। वे लोग ईख के खेतों में से पगडंडी पर सिधेरा की ओर चले जा रहे थे। सामने से पगड़ी बांधे एक अधेड़ किसान आता दिखाई दिया। इन्हें टोक कर किसान ने पूछा—"अरे ओ सहरियो, कहाँ को जाय रहे हो?"

"गाँव में जायंगे!"—अर्जुनलाल ने उत्तर दिया।

किसान का स्वर बहुत रूखा था—"सो तो दीखइ है, कौन के जाय रहे हो? कौन हो तुम?"—उसका स्वर और कड़ा हो गया।

"दद्दा"—अर्जुनलाल ने उत्तर दिया—"बिगड़ते क्यों हो? समझो तुम्हारे ही द्वारे जा बैठें तो क्या है? हमारा कौन अपना, कौन पराया? काँग्रेसी आदमी हैं। देश की बात कहने आये हैं।"

किसान ने लाठी के सिरे से वापिस राह दिखा कर कहा—"लौट जाओ जिधर तें आये हो। नहीं तो मेरे सिर आदमी की हत्या देते हो! बहुत देखे हैं तुम्हारे जैसे टोपी वाले कांग्रेसी बनिये! देहातन को नोच-नोच खाय डारो! किसानन को खरे दामों चार पैसे बनावन को तई गांव में पाँव धरो तो।"

अर्जुनलाल के मन में भय और विस्मय दोनों ही अनुभव हुये। फिर भी साहस कर बोला—"दद्दा बिगड़ते काहे हो, आठ माल पाँव पैदल चल कर आये हैं। गाँव में लोटा भर पानी तो पी लेने दो भूख लगी है। दो रोटी खा कर चले जायेंगे। नाराज़ होते हो तो लेक्चर नहीं देंगे।" बूढ़ा नहीं माना। उसने फिर धमकी दी—"गाँव की तरफ कदम बढ़ायो तो पांव तोड़ दउंगो"—उसने लाठी से इशारा किया—"चले जाओ पूरब लांग मसुरिया में। वहां तुम्हारे जैसे काँग्रेसी बहुत भरे हैं!"

मिन्नत चिरौरी करने पर भी जब बूढ़े ने उन्हें गाँव की तरफ कदम न रखने दिया तो उन्हें लौटना पड़ा। पगडंडियों से मील

मर चल सड़क पर आ एक इक्के पर वे जलेसर पहुंचे। शहर में जो कुछ मिला खा कर पानी पिया। रात धर्मशाला में काट दी। अगले दिन फिर वे दोपहर के समय खा पी कर दिहात में जाने के लिए निकले। संध्या होते-होते वे जगवाड़ा में पहुँचे। यहाँ भी गाँव के बाहर ही एक लठैत ने उनका स्वागत किया। लठैत बाइस एक बरस का जवान लड़का था। अर्जुनलाल ने उसे समझाया—"हम तो घर-बार छोड़ कर तुम्हारे ही लिये जोखिम झेल रहे हैं। चाहते हैं, गाँव आज़ाद हो जाय। किसानों को कोई लगान न देना पड़े। जमींदार का जुल्म न हो। तुम हमारा ही सिर फोड़ने को फिर रहे हो।"

नौजवान कुछ पिघला। उसने कहा—"सड़क पार खेतों में मढ़ैया है। उसी में जा छिपो। अंधेरा पड़े मैं आऊंगा तब बात होगी। इस वक्त गांव में जाओगे तो हल्ला हो जायगा। आगरे के पास कुछ लाइन-वाइन उखड़ी है। हल्ला हुआ है। तब से तहसीलदार ने गांव वालों का ही पहरा लगा दिया है कि कोई ग़ैर आदमी आए तो गांव में घुसने नहीं पाये। गाँव में कोई ग़ैर देखा जायगा तो तजीरी-पुलिस बैठ जायगी। गांव पर जुर्माना पड़ेगा। सो सब लोग घबराए हुये हैं।

रात पड़े नौजवान एक लोटा हाथ में लिये आया। उसने चद्दरे में से दो रोटियां भी निकाल कर उन लोगों को दीं। लोटे में दूध था। नौजवान ने बताया—गांव में दिशा जाने का बहाना कर लोटा हाथ में लेकर आया है। लाइन पर रात में टूंडला से सिपाहियों की रौंद चलती है। तहसीलदार ने बताया है कि पूरब में जहां-जहां लाइन उखड़ी है, लोगों ने पुलिस को परेशान किया है। वहां सरकार ने गांव फूक दिये हैं। लोग डरे हुये हैं। किसान सभा के लाल झंडे वाले दो आदमी भी आये थे। उन्हें लोगों ने घेर कर पुलिस के हवाले कर दिया।

अर्जुनलाल ने विश्वासोत्पादक ओजस्वी ढंग से नौजवान को समझाया—"अब डरने की बात नहीं है। देश के आज़ाद होने का समय आ गया है। जापानी नेता जी की सहायता कर रहे हैं। हिन्दुस्तान की सीमा पर नेता जी आज़ाद हिन्द सेना को लेकर आ पहुँचे हैं। तुम लोग सरकार को गल्ला देना बिलकुल बन्द कर दो।"

नौजवान ने टोक कर कहा—"अजी, लाल झण्डे वाले किसान-सभा के लोग तो कहते थे कि गल्ला खत्ती भरने वाले बनियों को मत दो। यह गरीबों का पेट काट रहे हैं। इन लोगों ने बंगाल को भूखा मार दिया। फौजें अपने देश को बचाने के लिये जापानियों से लड़ रही हैं। उनके लिये सरकार को अन्न बेचो। गल्ला नहीं दोगे तो शहर के मज़दूर भूखे मर जायंगे। कपड़ा और दूसरी चीजें कौन बनायेगा ?"

अर्जुनलाल ने उत्तर दिया—"लाल झण्डे वाले कम्युनिस्ट रूस के दलाल हैं। रूस अंग्रेज़ों से मिल गया है तो यह लाल झण्डे वाले भी उससे मिल गये हैं। जापान अपना दोस्त है। वह नेता जी की मदद कर रहा है कि हिन्दोस्तान आज़ाद हो जाय।"

अंग्रेज़ अब जाने की तैयारी कर रहे हैं इसलिये उन्हों ने देश से सब सोना चाँदी समेट कर निरे नोट चला दिये हैं। नोट लेकर सरकार को गल्ला दोगे तो फूटी कौड़ी हाथ नहीं लगेगी। अंग्रेज़ चले जांयगे तो उनके नोट चीथड़े बन जायंगे ? सब देसी फौजें कांग्रेस से मिल गई हैं। नेता जी के साथ पांच लाख हिन्दुस्तानी सिपाही अंग्रेजों के खिलाफ़ लड़ रहे हैं। फौजी तो इन्तज़ार कर रहे हैं कि देहात के लोग पहल करें तो वे हथियार लेकर उनकी तरफ हो जायं।"

हेमन्त के जाड़े में कपड़ों के बिना मढ़ैया के झीने छाजन के नीचे रात काटना कठिन था। नौजवान ने बताया रात के चौथे पहर हाथरस से गाड़ी टूंडला जाती है। मीठवाली का स्टेशन सड़क से तीन मील है। रेल की लाइन के साथ-साथ सड़क गई है। कोई न कोई मुसाफिर उस गाड़ी से टूंडला जाते हैं। अंधेरा पाख है लेकिन आधी रात के बाद चांद निकल आयेगा। इधर से मुसाफिर निकलेंगे तुम भी साथ हो लेना।

नौजवान के चले जाने के बाद अर्जुनलाल कुछ निराश सा हो गया। थकावट से उसका शरीर चकनाचूर हो रहा था। उसने धनसिंह से कहा "अभी तो सुबह की गाड़ी से कानपुर चलें। वहाँ दूसरे लोगों से मिल कर ही कुछ तय करेंगे।"

अंधेरा खूब घना था और जाड़ा बहुत कड़ा। दबे स्वर में

आपस में बात करते वे स्टेशन की ओर जाने वाले मुसाफिरों की प्रतीक्षा करते रहे। आधी रात के बाद सड़क पर मुसाफिरों के कदमों की आहट सुनाई दी।

धनसिंह उतावली में उठ चलने के लिए तैयार हुआ। "ठहरो" —अर्जुनलाल ने समझाया—"हम लोगों को यों मढ़ैया से निकलता देख यह लोग हमें चोर समझ कहीं चिल्ला न पड़ें, या कहीं लट्ठ ही दे मारें! इन्हें निकल जाने दो। इनके पीछे-पीछे चलेंगे।"

सड़क पर चार मुसाफिर जा रहे थे। तीन मर्द और उनके साथ एक औरत। दो मर्दों ने जाड़े से बचने के लिये भूरी सी रजाइयां ओढ़ी हुई थीं और एक ने सफ़ेद रंग की दोहर। औरत भी कोई रंगीन चीज़ ओढ़े थी। इन लोगों से तीस एक कदम पीछे आहट किए बिना वे दोनों सड़क पर निकल आए। दोनों भूरे से रंग की हल्की शाल साथ लेकर दिल्ली से चले थे। वही ओढ़े थे।

हेमन्त के कोहरे भरे आकाश में ऊपर तारे टिमटिमा रहे थे। सड़क पर अंधेरा था। कलिख सी बरस रही थी। वृक्ष और भी काले जान पड़ते थे। सिर पर मंडराता झीना कोहरा और नीचे सड़क की धूल ही कुछ धूसर जान पड़ रही थी। सड़क किनारे की झाड़ियां भी अनिश्चित आकृति की परछाइयां सी जान पड़ती थीं। अर्जुनलाल और धनसिंह से लगभग तीस-चालीस कदम आगे-आगे चलने वाले मुसाफिर भी चलती-फिरती अस्पष्ट छाया सी दिखाई पड़ रहे थे। केवल एक आदमी जो सफ़ेद चद्दर की दोहर ओढ़े था, मैले चूने से पुते हुए बन्दी के ऊंचे खम्भे की तरह आगे चला जाता जान पड़ रहा था।

जाड़े की तीखी हवा की सर्दी से ध्यान बटाने के लिये अर्जुनलाल और धनसिंह आपस में बातचीत करते जा रहे थे। सहसा अर्जुनलाल ने पूछा—"वो कौन लोग है?" सड़क से बायें हाथ धरती से ऊंचाई पर बनी रेल की लाइन पर से कुछ छायाएं सड़क की ओर उतरती दिखाई दीं। धनसिंह ने अर्जुनलाल की बांह थाम कर उत्तर दिया—"सिपाही जान पड़ते हैं। यह दोनों सड़क किनारे के एक पेड़ के नीचे से गुज़र रहे थे। आगे सिपाहियों की गाली और धमकी सुनाई दी—"चलो लाइन पर।"

अर्जुनलाल और धनसिंह पेड़ की छाया में ही ठिठक गये और एक बड़ी झाड़ी की ओट हो गये। सड़क से लाइन चालीस कदम से अधिक दूर न थी। मुसाफिर आगे-आगे और सिपाही पीछे-पीछे लाइन की ओर जाने लगे। वे लोग लाइन पर पहुंचे ही थे कि बहुत ज़ोर से बन्दूक दगने के धमाके हुए। तीन गोलियां चलीं। चीखों की आवज़ें आईं। दो गोलियां और चलीं।

अर्जुनलाल और धनसिंह सांस रोके, झाड़ी के पीछे दुबके, एक दूसरे का कंधा पकड़े, धड़कते हृदय से, आंखें फाड़कर देख रहे थे। रोने का शब्द सुनाई दिया। औरत का गला था। सिपाहियों के हँसने की आवाज़ सुनाई दी। एक सिपाही ने ऊँचे स्वर में परिहास कर पश्चिमी पंजाब की बोली में कहा—"हरामजादी, तू क्यों रो रही है ? तेरे लिये तो पाँच सांड मौजूद हैं। चुप रह ! शोर मचायेगी तो सरकार का एक कारतूस और खर्च करायेगी।" दूसरे सिपाही और ज़ोर से हँस पड़े।

अर्जुनलाल सिपाहियों की बातचीत समझ न सकता था। धनसिंह उस ओर कान लगा कर समझने की कोशिश कर रहा था। सिपाही हँस रहे थे—"अरे यार फिजूल ही परेशान हुए ! तीनों के पास कुल सत्रह रुपये निकले।"

एक और आवाज़ अधिक ऊँची सुनाई दी—"सुनो भाई, यह माले गनीमत है। खुर्शेद के पास जमा रखो ! कल खुर्जे से पांच बोतलें आयें।"—गाली देकर उसने कहा—"यहाँ लाइन पर पड़े इसी से वक्त कटेगा।" एक ने सुझाया, अरे सालों की कमर टटोलो। यह लोग कमर में रुपया बांधते हैं।

सिपाही उस औरत के बारे में अश्लील परिहास करने लगे। एक सिपाही बात करते-करते सहसा रुक गया। उसने एक माचिस जला कर अपने मुंह की ओर उठाई। ओठों में सिगरेट थामे उसका चेहरा धनसिंह को अत्यन्त भयानक लगा। उसके बाद उसने दूसरे सिपाहियों को भी सिगरेट बांट दिये। लोग सिगरेट खींचने लगे। ऐसा जान पड़ रहा था अभी मरे आदमियों की चिताओं पर चिंगारियाँ दहकने लगी हों।

वृक्षों के शिखर कुछ-कुछ उजले होने लगे। ऊँचाई पर बनी

रेल की लाइन पर खड़े सिपाहियों के चेहरे दिखाई देने लगे। पहले सिगरेट सुलगाने वाले सिपाही ने अपनी राइफ़ल ज़मीन पर पटक कर झगड़ते हुए सिपाहियों के स्वर से ऊंचे स्वर में कहा—"झगड़ने की कोई बात नहीं है, पांसा डालो जिसका नंबर निकल आये।"

चांदनी सिपाहियों के शरीर पर उतरती आ रही थी। उनकी वर्दियां घुटने तक दिखाई देने लगीं। एक सिपाही ने अपनी राइफल लाइन के सहारे टिका दी और गोली खाकर गिर पड़े दो दिहातियों के शरीर पर से रजाइयाँ झटक कर उतारने लगा। रजाइयाँ ले वह लाइन से उतर कर उसी झाड़ी की ओर चला आ रहा था जहाँ अर्जुनलाल और धनसिंह आड़ में दुबके हुये थे। इन दोनों ने अपनी सांस दबा सिर बिलकुल झुका लिये।

झाड़ियों के बीच एक खाली जगह में सिपाही ने एक के ऊपर एक, दोनों रजाइयां बिछा दीं। वह लौट कर गया और लाइन के पास बाहों में सिर छिपाये बैठी औरत को बांह से खींच रजाइयों की ओर लाने लगा।

औरत हाथ जोड़ कर रोने लगी। सिपाही ने ज़ोर से कहकहा लगा कर गाली दी और धमकाया—"अभी गोली मार दूंगा ··· को" उस गाली की नवीनता पर दूसरे सिपाही भी कहकहा लगा उठे।

सिपाही औरत को बांह से खींच कर बिछी हुई रजाइयों की ओर ले आया। फीकी-फीकी चांदनी में औरत के गालों पर बहते आँसू दिखाई दे रहे थे। सिपाही ने औरत को जबरदस्ती बाहों में ले झाड़ियों में बिछी रजाई पर गिरा दिया। रजाई का बिस्तरा अर्जुनलाल और धनसिंह से केवल तीन कदम के अंतर पर था! औरत के ठुसक-ठुसक कर रोने और सिपाही के बदहवासी में बड़बड़ाने की आवाज़ इन लोगों के कानों तक आ रही थी।

धनसिंह का शरीर बर्फीली सरसराती हवा में भी पसीना-पसीना होने लगा। सुने जाने के भय से वह अर्जुनलाल से कुछ कह भी न सकता था। शरीर में एक असह्य सी विकलता, तमतमाहट और ग्लानि अनुभव हो रही थी। सांस घुट सी रही थी। उसने अर्जुनलाल की बांह दबाई। अर्जुनलाल के देखने पर उसने सिपाही की ओर संकेत कर अपना गला दोनों हाथों से पकड़,

सिपाही को मार कर औरत को छुड़ाने का प्रस्ताव संकेतों से किया।

लाइन पर खड़े सिपाही ऊंची आवाज़ में अश्लील मजाक कर रहे थे—"अबे नौशेर के बच्चे, हमारी बारी का भी खयाल रखना। साले खबरदार! पहले सब लोग एक-एक बार जायेंगे! जल्दी कर बे, नहीं बनता तो आकर उपर से कमर पर एक लात दूँ।"

अर्जुनलाल ने उन लोगों की ओर संकेत कर उंगलियों से बंदूक का इशारा किया कि वे लोग गोली मार देंगे।

औरत को पकड़ कर लाने वाला सिपाही गाली देता हुआ झाड़ियों में उठ खड़ा हुआ और पतलून कमर पर कसता हुआ लाइन की ओर चला गया। लाइन की ओर से दूसरा सिपाही "मेरी बारी मेरी बारी" चिल्लाता हुआ इस ओर दौड़ पड़ा। इसी तरह एक के बाद एक पांचों सिपाही आये। औरत की हाय-हाय की पुकार धीमी होती जा रही थी। पांचवाँ सिपाही आया तो वह सहसा बिलकुल चुप हो गई।

पाँचवां आदमी अभी लौट नहीं पाया था कि लाइन पर खड़े सिपाही चिल्ला उठे,—"अबे कासिम! रौंद आ रही है साले, जल्दी कर!"

लाइन पर पूरब की ओर एक बड़ा सा तारा सा चमका। बहुत तेज़ टार्च के प्रकाश की तिकोन बढ़ती चली आ रही थी।

कासिम पतलून सम्हालता हुआ लाइन की ओर भाग गया। सिपाही लोग अपने ब्रान कोट और पेटियां ठीक से कसने लगे। कुछ मिनिट बाद एक मोटर ट्राली लाइन पर आकर ठहरी। पांचों सिपाहियों ने मुस्तैदी से लाइन में खड़े हो ट्राली पर बैठे अफसरों को सैल्यूट दिया।

ट्राली पर से दो अफसर उतरे, एक अंग्रेज़ और दूसरा हिन्दुस्तानी। दोनों अफ़सरों के हाथों में बिजली की लम्बी-लम्बी टार्चें थीं। टार्च जलाकर अफ़सरों ने सिपाहियों की गाली से गिरे हुए आदमियों को ध्यान से देखा। दोनों अफ़सरों ने आपस में संक्षिप्त सी बात की और हिन्दुस्तानी अफ़सर ने सिपाहियों को सम्बोधन किया—"क्या मामला हुआ!"

एक सिपाही ने एक कदम बढ़ कर जवाब दिया—"हज़ूर यह बदमाश लोग लाइन का पेच खोलता था। हम लोग उधर से रौंद पर आया। एक लम्बा परे से गोली मारा।" अंग्रेज़ अफ़सर टार्च का प्रकाश गोलाई में लाइन के चारों ओर डाल कर देख रहा था। टार्च के प्रकाश की तीखी त्रिकोण उस झाड़ी की ओर घूमती आ रही थी जहां धनसिंह और अर्जुनलाल छिपे हुए थे। वह तीखा प्रकाश उनकी आंखों में कांटों की तरह चुभ गया। वे आशंका में और भी नीचे दुबक गये। दोनों अफ़सर इस झाड़ी की ओर उतर आये।

इस स्थान पर आकर प्रकाश थम गया। धनसिंह और अर्जुनलाल के हृदय धड़कने लगे। उन्होंने देखा अंग्रेज़ अफ़सर झाड़ियों और ढेलों को रौंदता हुआ उसी ओर बढ़ता चला आ रहा है। दोनों के शरीर पर पसीना छलक आया। जान पड़ा अब उन्हें भी लाइन पर ले जाकर गोली से उड़ा दिया जायगा। हाथ की ऊंगलियों के मुक्के कस कर धनसिंह ने निश्चय किया, उनकी झाड़ी पर अफसर के कदम रखते ही वह पूरे बल से घूंसा उसकी नाक पर मार देगा और ज़ोर से भाग जायगा। उसके पीछे से चाहे गोली मार दी जाय लेकिन वह यों प्राण नहीं देगा।

अंग्रेज़ अफ़सर और उसके पीछे-पीछे हिन्दुस्तानी अफ़सर झाड़ी की ओर बढ़ते चले आ रहे थे। अब उनकी टार्चों का प्रकाश का केन्द्र-बिंदु झाड़ी से हट कर उसके आगे बिछी, रजाई थी। झाड़ी में सिर दुबकाये धनसिंह को दिखाई दे रहा था कि रजाई पर वह औरत आकाश की ओर मुँह किये पड़ी थी, गहरी नींद में या बेहोशी में, या मर चुकी थी। उसकी बाहें फैली हुई थीं और लहंगा कमर से ऊपर उलटा हुआ था।

अंग्रेज़ अफ़सर ने निगाह स्त्री के शरीर पर पड़ते ही आँखें फेर लीं और अपनी टार्च का प्रकाश दूसरी ओर कर दिया। हिन्दुस्तानी अफ़सर ने अपनी टार्च बुझा दी। दोनों अफ़सरों में बहस सी हो रही थी। अंग्रेज़ की आवाज़ ऊँची और कुछ आन पड़ती थी। हिन्दुस्तानी अफ़सर लम्बी बात कह कर उसे समझाता या जवाब देता जान पड़ रहा था।

दोनों अफ़सर लौट चले। अंग्रेज़ अफ़सर गुस्से में थूकता

जा रहा था। लाइन पर लौट कर वह कुछ नहीं बोला। जाकर ट्राली पर बैठ गया। हिन्दुस्तानी अफ़सर ने सिपाहियों को हुक्म दिया "तुम लोग इधर से अभी एक दम मार्च करके स्टेशन को जायगा। लाइन पर इसी माफिक खबरदारी रखेगा। सुबह की गाड़ी से टूण्डला पहुँच कर स्टेशन का दफ्तर में रिपोर्ट करेगा।"

अफ़सर ने जेब से एक नोट बुक निकाल उस पर कुछ लिख, पर्चा फाड़ कर टोली के नायक को थमा दिया—"यह कागज़ दफ्तर में देगा।" सिपाही चुस्ती से एक लाइन में हो गये। राइफलें उनके कन्धों पर पहुँच गईं और एक साथ बांह और कदम उठाते वे पूरब की ओर चल दिये। हिन्दुस्तानी अफ़सर के ट्राली पर बैठते ही ट्राली की मोटर का इंजन गुर्राया और वह तेज़ी से वापिस लौट चली।

अर्जुनलाल और धनसिंह झाड़ी के पीछे से उठ खड़े हुये। उनके शरीर के जोड़ इतनी देर तक बिल्कुल दबा दिये जाने के कारण सुन्न से हो रहे थे। उस जकड़न से मुक्ति पाने के लिये वे अंगड़ाई लेने के लिये शरीर को फैला रहे थे कि सामने रजाई पर बेसुध पड़ी औरत दिखाई दी। उनके सिर लज्जा से झुक गये और अंगड़ाई दब गई। उन्हों ने एक दूसरे से आंखें चुरा लीं। मुख से बोले बिना उन दोनों ने सोचा, इस बेचारी का क्या करें? यों ही कैसे छोड़ जायं! परन्तु उसकी ओर देखने और उसे छूने का साहस न हुआ।

औरत के रूंधे हुए गले से कुछ शब्द सा निकला, कुछ कांखने की सी आवाज़ आई। उसने आधी करवट ली और अपना लहंगा संभाल कर सिमिट सी गई। उसने चारों ओर देखा। साहस कर अर्जुनलाल ने भर्राई आवाज़ में कहा—"मैया चलो तुम्हें घर पहुँचा दें।" औरत ज़ोर से रो उठी। अर्जुनलाल के सान्त्वना देने और उसके घर पहुंचा देने की बात दोहराने पर स्त्री ने सिर पर हाथ मार और फूट-फूट रो कर कहा—"हाय मैं मर गई, कहाँ जाऊँगी। मैं तो अब यहीं मरूँगी उन नासपीटों को लेकर।"

अर्जुनलाल और धनसिंह भी बेबस थे। औरत को यों छोड़कर जाते न बनता था और ठहरते भी तो क्या करने के लिए?

इस पर गाड़ी के आ जाने का समय हो रहा था। बेबसी में दांतों से होंठ दबाये, डबडबाई आंखों से वे सड़क पर आ स्टेशन की ओर तेज़ी से चलने लगे। आती हुई गाड़ी के माथे की रोशनी दूर से दिखाई देने पर उन्हें कुछ दूर भागना भी पड़ा। कठिनता से वे गाड़ी में बैठ पाये।

कुछ ही देर में गाड़ी टूण्डला जंकशन पहुँची। यहां फौजियों की दोनों ओर जाने के लिये तैयार दो स्पेशल ट्रेनें खड़ी हुई थीं। स्टेशन खाकी वर्दी के लोगों से भरा हुआ था। धनसिंह को इनमें से प्रत्येक व्यक्ति देश का खूंखार हिंसक शत्रु जान पड़ता था। कुछ बोलने को उसका मन न चाहता था।

टूण्डला में गाड़ी में भीड़ और बढ़ गई। अर्जुनलाल और धनसिंह भीड़ में दबे बैठे थे। अभी और मुसाफिर भीतर धंसे आना चाहते थे। खिड़की में से किसी ने दो तीन बेर पुकारा—"पण्डित ओ पण्डित, अर्जुन भाई, अरे पहचानना ही नहीं चाहते! अरे हम हैं महफ़ूज़! देखो तो! जगह करो हमारे लिये!

अर्जुनलाल ने हाथ बढ़ा कर महफ़ूज़ को खिड़की से भीतर खींच लिया। पहले से ही कष्ट में बैठे लोग इस पर आपत्ति करने लगे। अर्जुनलाल ने उन्हें चुप कराने के लिये कहा—"अरे भाई जानते हो, यह सरकारी आदमी है चाहे तो हम सब को उतरवा दे।

"सी. आई. डी. होगा"—किसी ने कहा—"अब यों जूतियां मारोगे दोस्त!"—महफ़ूज़ ने अपने रूखे बालों पर हाथ रख कर कहा। "क्या बात करते हो!"—अर्जुनलाल हंस दिया—"कब आये देवली से! कैसी कटी?"

"अमा यार, अपना क्या है बाहर थे तो सरकार से लड़ते थे। जेल में रहे तो लड़ते रहे! अब भी सी. आई. डी. वाले पीछे-पीछे चल रहे हैं।" आस पास बैठे लोगों ने भी ध्यान दिया और धनसिंह ने भी।

अर्जुनलाल फिर हंस दिया—"खामुखाह पुलिस तुम्हारे पीछे है। तुम तो जङ्ग में अंग्रेज़ों की मदद कर रहे हो! कहते हो पीपल्स-वार है।" "है तो कहते हैं? अंग्रेज़ों की मदद तो तुम्हारा गांधी-भंडार करता है जो फ़ौज को कम्बल सप्लाई कर रहा है। हम तो

कहते हैं, जापानियों से अपने देश की रक्षा करो ! हम तो कह रहे हैं, लड़ाई हमारी है। हमारे नेताओं को जेल से छोड़ो। हम खुद जापान से लड़ेंगे। अंग्रेज़ तो मुल्क को बरबाद कर रहे हैं, लड़ ही नहीं पाते।"

राजनैतिक बहस शुरू हो गई। अर्जुनलाल ने उत्तेजित होकर कहा—"तुम कहते हो लड़ाई में अंग्रेजों का साथ दो, लो सुनो!" —उसने गत रात की घटना कह सुनाई। धनसिंह चुपचाप सुनता रहा। बार-बार उसे ख्याल आ रहा था—"रेडियो पर नेता जी ने कहा था कि हिन्दुस्तानी फौज अंग्रेजों से बग़ावत कर देश की ओर से लड़ने के लिये तैयार है। अर्जुनलाल भी देहात से यही समझ कर आ रहा है। यही है हिन्दुस्तानी फौज की देशभक्ति ! उसका ध्यान बहस से उचट कर पहाड़ों में बिछुड़ गई सोमा की ओर चला गया। उस रात यदि मैं उन बदमाशों को मार न देता...... और सोमा कोठड़ी में होती, ग़लती से किवाड़ खोल देती, तो सोमा का क्या हाल होता ?

घटना के समय धनसिंह अंग्रेज़ और हिन्दुस्तानी अफ़सर की अंग्रेज़ी में बहस समझ नहीं पाया था। अर्जुनलाल उत्तेजना में वह बहस भी सुना गया—"अंग्रेज़ अफ़सर हिन्दुस्तानी सिपाहियों की हरकत से नाराज़ होकर उन्हें वहीं सज़ा देना चाहता था। हिन्दुस्तानी अफ़सर उनकी हिमायत कर रहा था कि महीना भर से वे लाइन पर पड़े हैं। यदि यह लोग देहात की जनता से आत्मीयता और सज्जनता निभाने लगें तो स्थिति वश से बाहर हो जाय। यह लोग भी जनता के साथ मिल जायं।"

महफ़ूज़ बोल उठा—"यही है तुम्हारी क्रान्ति की तैयारी, कहो !" एक बूढ़े आदमी ने सिर हिला कर कहा—"भाई और जो कहो, इंसाफ़ तो अंगरेज के ही हाथ में है।"

महफ़ूज बिगड़ उठा—"अंगरेज अगर इंसाफ़ करने वाला होता तो दूसरे के मुल्क पर क्यों काबिज रहता ? आप लोगों के दिमाग़ पर कब्ज़ा रखने के लिये और आप लोगों के मन में अपनी इज्जत और एतबार बनाये रखने के लिये वह ऐसा इन्साफ़ दिखाता है। अंग्रेजों के गुलाम कुत्ते हिन्दुस्तानियों के सलूक से आप हिन्दुस्तानियों के कैरेक्टर का अन्दाज़ा लगाते हैं ! वल्लाह, क्या अक्ल

है आप की ! यह फौज ऐसे जुल्म इसलिये करती है कि वह अपने आप को जनता का नहीं, जनता पर जुल्म करने वाले का नौकर समझती है।" अर्जुनलाल के कंधे पर हाथ रख कर उसने पूछा—"इसी फौज का भरोसा कर आप ४२ में अंग्रेजों से बगावत करने चले थे ?"

अर्जुनलाल दूसरी बातें करने लगा। उसने देहली जेल के किस्से और महफ़ूज़ ने देवली के किस्से सुनाये। धनसिंह अपने मन में कुछ सोचता बैठा रहा।

कानपुर में अर्जुनलाल तीन दिन धनसिंह को लिये घूमता रहा। कानपुर में उसने अपने आरम्भिक राजनैतिक कार्य के दिन बिताये थे। कांग्रेस की ओर से म्युनिसिपैलिटी के चुनावों में भाग लिया था। यहाँ उसके परिचितों की संख्या काफ़ी थी। बहुत भरोसे से वह कानपुर आया था परन्तु वह भरोसा निराशा में बदलता जा रहा था।

कानपुर में देहली की अपेक्षा पुलिस का जाल कम न था। कांग्रेस के कुछ कर-धर सकने वाले लोग या तो गिरफ़्तार हो चुके थे या फरार थे। अफ़वा .रम थी कि कम्युनिस्ट कांग्रेसियों को पकड़वा रहे हैं। अर्जु मोती भाई के यहाँ पहुँचा। सन ३८ के म्युनिसिपल चुनाव में उसने मोती भाई का बहुत काम किया था। मोती भाई जब-तब अपनी आढ़त पर अर्जुनलाल के नाम दो एक सौदे करके उसकी कुछ सहायता भी कर देते थे। इसी आसरे अर्जुनलाल निश्चिंत हो राजनैतिक काम किये जाता था। देहली में रामू भाई के यहाँ मोती भाई ने ही उसे लगवा दिया था।

मोती भाई ने उस समय की शहर की दशा का ख़याल कर अर्जुन और उसके साथी को जगह देने से इनकार कर दिया। बिगड़ कर बोले—"जिसे देखो हमें खाये जाता है। बाज़ार तो सब चौपट हो गया है। सरकार सब काम अपने हाथ में ले रही है। तुम लोगों को चाहिये, गांवों में जाकर किसानों को सरकार से असहयोग करने के लिये कहो ! यह तोड़-फोड़ कांग्रेस का काम नहीं है। इसी से तो गांधी जी अनशन कर रहे हैं।"

अर्जुन और धनसिंह मोती भाई के यहाँ से निकल लाठी मोहाल

में से होकर जा रहे थे कि एक दूसरे आढ़ती मिल गये जो शहर कोतवाल की महफिल में आते-जाते रहते थे और कांग्रेस से हार्दिक सहानुभूति भी रखते थे।

अर्जुनलाल ने उन्हें जयराम जी कर पुकारा। वे कुछ सकपकाये और फिर अर्जुनलाल को अपरिचित धनसिंह से ज़रा परे खींच कर बोले—"भले आदमी, तुम यों फिर रहे हो; पुलिस तुम्हें ढूंढ़ रही है?"

अर्जुनलाल ने कहा—"मैं अभी परसों तो आया हूँ। कुछ बात भी नहीं हुई। क्या वारंट है?" "वारंट न भी हो! कोतवाल के यहाँ तुम्हारा ज़िक्र हो रहा था कि शहर में आ गये हो! आखिर पुराने कांग्रेसी हो! हड़ताल-वड़ताल करवाते रहे हो। कानपुर तुम्हारे लिये ठीक नहीं है।"

"कहां चले जायं?......अभी देहली जेल से छूटे हैं।" "अरे कहीं चले जाओ!....बम्बई चले जाओ! जब तक दिन अच्छे नहीं हैं, कुछ रोजगार ही कर लो मौका है! हमारे अपने आदमी हैं बम्बई में। उनकी आढ़त पर चले जाओ!" "फिर मिलूं आप से!" इधर-उधर देख कर उन्होंने कहा—"घर पर तो आना मत! उधर जाना हो तो हमारा नाम ले देना। शेखमेमन स्ट्रीट में ६६ नम्बर है, जगजीवन भाई!....तुम निकल जाओ कानपुर से! यहां आबहवा ठीक नहीं है। समझे!"—और वे आगे-पीछे देखते हुए चले गये।

अर्जुनलाल तिलक हाल में ही ठहरा हुआ था। उसने निश्चय किया अब वहाँ न जाना चाहिए। पर जाय तो कहाँ? गलियों में से होकर वह एक पुराने परिचित के यहां कर्नैलगंज में जाना चाहता था। गली के मोड़ पर मिल गया साइकिल ठेल कर चला आता गणेश! ऐसे समय कम्युनिस्ट से मुलाकात होना अर्जुनलाल को अच्छा न लगा परन्तु सामना हो गया था। गणेश ने अर्जुन के गले में बाहें डाल दी—"कहो दोस्त!"

गणेश से अर्जुन का पुराना मज़ाक था। दोनों ने १६३५ की हड़तालों में कुछ दिन साथ काम किया था और फिर इलेक्शनों में एक दूसरे के खिलाफ़ भी लड़े थे। अर्जुन ने पूछा—"कहो भाई, स्टैलिन का कोई खत आया? अब कौन सा फ्रंट बदलने का हुक्म

आया है ?" गणेश ने उत्तर दिया—"तोजो का खत आया है कि अंगरेज़ों को निकाल कर जापानी हुकूमत कायम कराने में जितने कांगरेसी मदद करेंगे, सब को थानेदारी या राशनशाप की परमिट दी जायगी।" "और जो कम्युनिस्ट कांग्रेसियों को गिरफ्तार करवा रहे हैं, उन्हें अंग्रेज़ क्या तहसीलदारी देंगे ?"

"किस साले ने किस साले को गिरफ्तार कराया है ? सुनो,"—गणेश ने अर्जुन का हाथ अपने हाथ में दबा कर और मुंह उसके कान के पास ले जाकर कहा—"कल सब-इंसपेक्टर चौबे तुम्हें पूछ रहा था। हमने कहा, हमसे मतलब ? तो बोला—अरे साहब शहर में आ गये हैं, आप से न मिलेंगे ? और फिर हरामी कहता है—उन दिनों तो वो लोग आपको गालियाँ दिया करते थे, न जाने कितनों को देवली भिजवा दिया। अपने लिये कहने लगा—हम तो सब को एकसा समझते रहे। आँख बचा जाते थे कि क्यों परेशान करें। आप तो जानते ही हैं। मैंने साले को डांटा—हम तुम्हें खूब जानते हैं। दूसरों से कहते हो, कम्युनिस्ट कांग्रेसियों को पकड़वाते हैं, हमसे कहते हो, कांग्रेसी कम्युनिस्टों को पकड़वाते हैं। कहो तो तुम्हारे प्रधान जी जहां छिपे हैं, मिलवा दूं ?... मिलोगे !" "हाँ मिल लेंगे"—अर्जुन ने कहा और सोचा—"मिल लें, शायद काम की कोई राह निकल आये।"

गणेश अर्जुनलाल को दो कदम एक ओर ले गया और पता बता कर कहा—"वहाँ उनका नाम न लेना। कहना 'दाउजू' से काम है।" गणेश की साइकिल ले धनसिंह को गणेश के साथ दूसरी जगह जाने के लिए कह अर्जुनलाल चला गया। धनसिंह गणेश के साथ-साथ चुपचाप गली-गली चला जा रहा था। दो बीड़ियां जेब से निकाल गणेश ने कहा—"कामरेड बीड़ी पियो !"—धनसिंह ने बीड़ी ले ली। "तुम इनके साथ ही हो ? देहली से ही आये हो ?"—गणेश ने पूछा—"देहली में क्या हाल है ?"

"हाल ऐसा ही है। अब अंगरेज़ से तो कोई लड़ता नहीं। आपस में ही लड़ रहे हैं। लीडर कहीं कोई मिलता ही नहीं। आपके साथी दीवानचंद हमारे साथ जेल में थे।"—धनसिंह ने निरुत्साह से उत्तर दिया। "अच्छा, दीवानचन्द को जानते हो ! वह यहीं है। इलाहाबाद गये हैं। दस-पन्द्रह दिन में आयेंगे। अब तुम्हारा क्या

ख्याल है ; अभी छूटे हो जेल से ! कुछ दिन देख समझ लो !" धनसिंह ने बीड़ी समाप्त कर कहा—"हाँ, अर्जुन भाई जैसे कहेंगे।"

अर्जुनलाल गणेश के बताये पते पर लौट आया। वह और भी उदास था। गणेश ने पूछा—"क्यों ? क्या बात हुई दाउजू से ?" "कहते हैं, अभी गाँधी जी का उपवास समाप्त हुआ है। जब तक उनका सरकार से पत्र व्यवहार न हो ले, प्रतीक्षा करना ठीक होगा। कहते हैं, तब तक दिहात में जाकर सरकार को गल्ला न बेचने का प्रचार करो।" अर्जुन ने उदासी से उत्तर दिया।

गणेश बोला—"ठीक है, कानपुर में जो हालत हो रही है देखते ही हो ! गल्ले के लिये चाहे जिस दिन लूट-मार हो जाय ! तुम शहर में और गल्ला न आने दो। लूट-मार मच जाय, आसाम में सामान न पहुँचे। जापानी चढ़े चले आयें ! कलकत्ते में तीन दफे बम गिर चुके हैं। चालीस लाख आदमी भाग कर आया है। कल यहाँ बम गिरेगा तो कहाँ जायंगे ? अंगरेज एक मरेगा और हिन्दुस्तानी दस हज़ार ! बर्मा ने जापानियों का स्वागत किया था। जब से जापानी आये हैं, मार्शलला लगा है। जनता भाग-भाग कर जंगलों में जा छिपी है और अपने प्राण बचाने के लिये वहाँ से लड़ रही है लेकिन यहाँ के पूँजीपति अब जापान की खुशामद में हैं। तुम्हारे सिंहानियाँ, गुप्ता, बिड़ला भी इंतजार में हैं कि तोजो को पहले सलाम कौन कर पाये ?"

अर्जुनलाल बहुत दुखी था। वह चुपचाप एक चटाई बिछा कर लेट गया। सो गया या चिन्ता करता रहा। गणेश उसकी बगल में लेट खुर्राटे लेने लगा। धनसिंह दूसरी चटाई पर लेटा था। उसे अपना जीवन निराश्रय और बरबाद जान पड़ रहा था। कुछ कर सकने का द्वार सब ओर से बन्द। अत्याचार का विरोध करने पर सरकार और पुलिस का दण्ड। सरकार और पुलिस से लड़ने के लिये कोई साथ नहीं देता। लोग सरकार से लड़ना नहीं, खेल-खेलना चाहते हैं। उसकी तो ज़िन्दगी मौत का सवाल है। वह सोमा को छोड़ आया है ? उसके बिना सोमा की क्या हालत हो गई होगी ? रेलवे लाइन पर रात में देखी घटना उसकी स्मृति में सजीव हो गई। सोमा के साथ भी यदि ऐसा ही हो ?

ऐसी हालत में यदि वह समीप हो तो कम से कम विरोध में अपनी जान तो दे दे·······!

लेकिन पिछली रात वह कुछ न कर सका! लज्जा और ग्लानि से उसका हृदय कड़वा हो गया। वह तो तैयार था, अर्जुनलाल ने रोक लिया। उसका मन अर्जुनलाल से फट गया। यह डरपोक है, लीडर है, छोटा लीडर और दूसरे बड़े लीडर! छिपे बैठे हैं कि गिरफ्तार न हो जायं। तो लड़ेंगे क्या? सब को अपनी-अपनी जान की पड़ी है। आराम से जो हैं साले!

उसे फिर सोमा की याद आ गयी—सरोला साहब के यहाँ थी। झगड़े में पड़ने के डर से यदि लाला जी ने उसे निकाल दिया हो? गुजारा कैसे करती होगी? बदमाश उसके पीछे पड़ गये होंगे? यहाँ छिपा-छिपा मैं कौन बहादुरी कर रहा हूँ···। दिन में वह अर्जुनलाल के साथ मूलगंज से गुजरा था। वहाँ छज्जों पर बैठी बेरौनक, चीथड़ा सी औरतों के चेहरे उसे याद आने लगे—उनमें से कितनों के आदमी उन्हें छोड़ आए होंगे? क्या करतीं बेचारी?"

सुबह उसकी नींद खुली तो गणेश गायब था। अर्जुनलाल चुपचाप चिन्ता में बैठा था। धनसिंह को जगा देख अर्जुन ने कहा धनसिंह भाई, अब यों चल नहीं सकेगा। हम दो चार रोज़ के लिये देहात अपने घर जायंगे और फिर सोचा है, बम्बई निकल जायं! यहां फिर से जेल जा बैठे तो क्या लाभ? अकेले में होगा भी क्या? तुम भी कहीं नौकरी-चाकरी कर लो! कानपुर में काम की कमी नहीं है। तुम्हें यहाँ पहचानता भी कौन है!"

अर्जुनलाल उठ खड़ा हुआ—"हमारे देहात के लिये लारी सुबह ही जाती है। तुम्हें जरूरत हो तो, लाठीमोहाल में मोती बाबू से मिल लेना। हमने तुम्हारी बाबत उनसे कह दिया है।" कुर्ते के नीचे से बंडी की जेब से उसने पांच-पांच रुपये के दो नोट निकाल कर धनसिंह की ओर बढ़ा दिये। लो, तब तक यह है। दो-चार दिन में कुछ कर ही लोगे।"—अधिक बात किये बिना अर्जुन मकान के तंग जीने से उतर गया।

धनसिंह की आँखों में आंसू छलछला आए। वह होंठ काटकर उन्हें पी गया। अर्जुन के दिए रुपये लेने में उसे अपमान अनुभव

हुआ परन्तु लिये बिना चारा नहीं था। इस दूर देश में अर्जुनलाल का ही उसे भरोसा था। अर्जुनलाल उसे ऐसे छोड़ कर चल दिया जैसे लम्बी कठिन राह पर थक जाने पर कोई व्यर्थ बोझ को फेंक जाय। धनसिंह के हाथों में शक्ति थी और उसके हृदय में साहस भी था परन्तु हाथों का सामर्थ्य और हृदय का साहस अवसर के बिना क्या करे? इस समय यह रुपया ही उसे भोजन, आश्रय और एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने में सहायता दे सकता था।

धनसिंह कोठरी से उठ बाहर दीवार से घिरे आँगन के फर्श पर आ बैठा। फाल्गुन की पीली-पीली धूप और फरफराती हवा बह रही थी, जैसी काँगड़े में वैसाख-जेठ में होती है। आस-पास ऊँचे-ऊँचे मकान थे। फड़फड़ाहट की आहट सुन धनसिंह ने गर्दन फेर दाँई ओर देखा। बगल की ऊंची छत पर एक स्त्री भीगी धोती को नीचे लटका सिलवट निकालने के लिये झाड़ कर सूखने डाल रही थी। दीवार के ऊपर दिखाई देते स्त्री के शरीर पर बेपरवाही से पड़े धोती के आँचल के अतिरिक्त और कुछ न था।

धनसिंह ने अपने पहाड़ी देश में स्त्री को ऐसी बेपर्दगी की अवस्था में कभी नहीं देखा था। वह स्त्री दीवार पर कोहनी टिका, झुक कर निचले मकान के आँगन में देखती रही। ऊपर निगाह करने से धनसिंह को स्त्री के आँचल के नीचे से दो खूब उभरे स्तन दिखाई दे जाते। उसने निगाहें नीची कर लीं। उसे जान पड़ा, स्त्री किसी से बात कर रही है। बातचीत वह समझ नहीं पाया। दूसरी बोलने वाली भी स्त्री ही जान पड़ती थी। ऊपर देखना उसने उचित न समझा। धनसिंह के समीप ही पट्ट-पट्ट पानी गिरने का सा शब्द हुआ। उसने निगाह फिरा कर देखा पान की पीक थी। वह एक ओर हट गया।

अपने ऊपर मज़ाक में हँसी की खिलखिलाहट की आवाज सुन उसकी निगाह क्रोध में ऊपर उठे बिना न रह सकी। देखा—धोती सूखने डालने वाली के साथ वैसी ही एक और स्त्री थी। दोनों दीवार पर कोहनियाँ टिकाए पान चबाती हुईं उस पर हँस रही थीं। धनसिंह के मन में हुआ उन्हें कुछ कड़ा उत्तर दे परन्तु ऊपर उघड़े हुये चार स्तनों के कारण उसकी नज़र ऊपर ठहर न पाती थी। घृणा से वह आँखें नीची किये चुप रह गया।

एक स्त्री ने उसे सुना कर कहा—"जाने कहां से निगोड़े, रंडुये इकट्ठे हुये हैं मुहल्ले में ? बदमास हैं। रोज़ नये-नये, न जाने कहाँ से चले आते हैं ?" दूसरी ने कहा—"भले लोग होते तो औरतें न होतीं इनके साथ ? बदमास तो हैं ही।"

स्त्री के मुख से मज़ाक और छेड़खानी सुन कर धनसिंह का ड्राइवर का अभ्यास जाग उठा। वह कहना चाहता था, यहाँ आओ तो बताऊं ? परन्तु पराये स्थान में घिरे होने की परिस्थिति का भी ध्यान आ गया और होंठो पर आ गई बात होठों में ही रह गई। वह तिलमिला कर रह गया। वहां बैठ कर अपमान सहते जाना उसके लिये सह्य न था। वह उठा और जीने से नीचे उतर गया। नीचे आकर धनसिंह की इच्छा हुई कुछ खाने, पीने की जगह देखे। वह यह भी सोचता जा रहा था कि वह रहेगा कहाँ ? इस बड़े शहर में वह किसके सहारे रहेगा ? अर्जुनलाल भरोसा देकर लाया था परन्तु वह अपने घर चला गया। धनसिंह का तो घर बार था नहीं; जो था उससे वह बिछुड़ चुका था। उसे यह भी ख्याल आया कि कम्युनिस्टों के ही साथ होले ! परन्तु अर्जुनलाल ने इन लोगों से बचे रहने के लिए कहा था कि यह लोग इस समय अंगरेज़ों के एजेण्ट बन गये हैं।

अर्जुनलाल के उसका साथ छोड़ जाने के कारण उसकी बात पर धनसिंह को श्रद्धा न रही थी परन्तु कम्युनिस्ट के सहारे से वह आशा भी क्या करता ? अर्जुनलाल ने बड़े-बड़े लोगों से अपने सम्बन्ध और उन पर प्रभाव की बातें की थी, काँगरेस वालंटियर सेना में भरती करा देने की बातें की थीं। उसने देखा कि कम्युनिस्टों के यहाँ तो लेटने के लिये खाट भी नहीं, इनसे वह क्या आशा करता ?

वह मन कड़ा कर सेठ मोती भाई के यहाँ लाठी मोहाल में पहुँचा। उसने अनुनय के स्वर में अर्जुनलाल का संदेश दिया कि ज़रूरत के समय,सेठ जी अवश्य मदद करेंगे। वह छः मास कांग्रेस में जेल काट कर आया था। उसे कोई नौकरी ही दिला दी जाय !

सब कुछ सुनकर सेठ जी बोले—"कुछ लिखे-पढ़े तो हो नहीं कि मुनीमी या बाबू गिरी कर लो। कोई जमानत, जान-पहचान भी नहीं है कि दरबानी चौकीदारी ही दिला दें ! नौकरी करनी है

तो सरकार की करो ! कांग्रेस की तो उल्टे मदद करनी चाहिए ! अच्छा भला शरीर भगवान ने दिया है, बाज़ार में काम की क्या कमी है, कुछ दिन पल्लेदारी ही कर लो ! कांग्रेस में काम करने वाले सभी नेता हो जायं यह कैसे होगा ?"

धनसिंह चुपचाप उनके यहां से लौट पड़ा। इस अपमान से उसे उतना ही क्रोध आया जितना की बैजनाथ के थानेदार के प्रति उसके मन में भरा था। वह आया था आज़ादी का सैनिक बनने और उसे कहा जा रहा था कि बोझ ढोने की कुलीगिरी कर ले या सरकारी नौकरी कर ले !

वह कानपुर के कई बाज़ारों में घूमता रहा। भीड़ इतनी थी कि कंधे से कंधे छिलते थे। सिनेमा घरों के सामने कुम्भ के मेले से जुटे थे। सभी लोग प्रसन्न और अपने काम में व्यस्त ! अंग्रेज़ों के विरुद्ध आज़ादी के लिये बग़ावत का जो चित्र देहली जेल में उसके मस्तिष्क में बन गया था वह सब मिथ्या प्रमाणित हो रहा था। वह रात के बारह बजे तक घूमता रहा। रात काटने का प्रश्न सामने था। केवल एक जगह थी, कम्युनिस्टों के अड्डे पर चला जाय और चटाई पर जा लेटे। वह फिर वहीं लौट गया।

धनसिंह को नींद नहीं आ रही थी परन्तु निश्चेष्ट पड़ा था। एक ओर गणेश और उसके आगे कासिम लेटा हुआ था। कासिम कह रहा था कि वह "आर्डिनेन्स फैक्टरी में भरती हो गया है। किसी साले ने कोई तहकीकात नहीं की। सरकार को तो आदमियों की भूख है, चाहे लाख भरती हो जायं। सहसा गणेश ने पुकारा—"कामरेड।"

"जी !" धनसिंह ने उत्तर दिया।

"क्या करने का विचार है ?"

कुछ सोच कर धनसिंह ने उत्तर दिया—"कहीं नौकरी मिल जाय तो अच्छा है। ड्राइवर का काम जानता हूँ।"

"लाइसेंस है ?"

"नहीं लाइसेंस तो नहीं है।"

"पंजाब में भी क्या काफ़ी तोड़-फोड़ हुई है ?—अख़बार में तो कुछ नहीं आया ?"

मालूम नहीं। मैं तो अर्जुनलाल के साथ देहली जेल में था।"

"तुम देहली में ही थे।" देहली पंजाब में पार्टी के कामरेडों को जानते हो ? पंजाब में हमारा किसान वर्क तो बहुत है ?"

"मैं जानता नहीं किसी को।"

"नौकरी करनी है तो लाइसेंस लेना होगा।" कह देना चोरी हो गया।

"पुलिस के पास जाना ठीक नहीं।"

"क्या कोई मामला है ?"—धनसिंह की ओर करवट लेकर गणेश ने पूछा—"तो कौन तुम्हारा फोटो लिये बैठा है। दूसरा नाम बता देना या अभी कोई नौकरी कर लो। सवाल यह है कि करना क्या चाहते हो ?"

"मैं कुछ पढ़ा लिखा नहीं !"—धनसिंह ने कहा।

उसके स्वर की करुणा के कारण गणेश दूसरी ही बातें करने लगा। गणेश सो गया। धनसिंह ने निश्चय किया—वह किसी की बातों में न आ कर अपने ही मन से चलेगा।

* * *

अगले दिन सुबह ही धनसिंह राह पूछता छावनी जा पहुँचा। नाप की लाठी लिये एक भरती वाले को पहचान उस ने उस से पूछा—"भरती का दफ्तर कहां है ?"

"क्या भरती होगे ?"

"ड्राइवरी में भरती होंगे ?"

"लाइसेंस है ?"

"सामान के साथ चोरी हो गया।"

उस आदमी ने एक सिगरेट धनसिंह की ओर बढ़ा दिया और खुद भी सिगरेट सुलगा कर बोला—"हम सब करा देंगे। बोलो क्या दिलाओगे ?"

धनसिंह मुस्करा दिया—"भरती होने का तो इनाम मिलना है, तुम हमसे मांग रहे हो उल्टे ? हम खुद ही हो जायेंगे ?"

उस आदमी ने धनसिंह को सिर से पांव तक देखा—"पंजाबी

हो न !···तभी ! खुद ही हो जाओगे ! उस्ताद, लाइसेंस नहीं है। बीस झगड़े होंगे ? तहकीकात होगी ! पुलिस घर तक पहुँचेगी ! समझे उस्ताद !······तुम्हारी जेब से थोड़े ही माँग रहे हैं। इनाम में से दस रुपये देना।"

धनसिंह ने अनुमति में सिर हिला दिया। आदमी ने पूछा—"अफ़सर लाइसेंस के लिए पूछेंगे तो क्या कहोगे ?"

"सच कह देंगे, रेल में असबाब के साथ चोरी हो गया।"

"अमा, बड़े सीधे हो ? पंजाब से भर्ती होने कानपुर आये ! रास्ते में भला कोई जगह थी ? हमें सिखाने चले ? यहाँ रोज़ ही यह काम है ? जाने कितने फरारों को भरती करा दिया।"

मन ही मन धनसिंह को आशंका हुई परन्तु प्रकट में मुस्करा दिया—"भैया, कोई धोखा तो कर नहीं रहे हैं। तुम अपने दस नहीं, पन्द्रह ले लेना। लाइसेंस खो गया है तो क्या करें ?"

"कहना—कलकत्ते में नौकरी करते थे। कहना—टैक्सी चलाते थे। समझे ! गाँव जा रहे थे कि कमाई घर वालों को देकर भर्ती होंगे। राह में सब कमाई और लाइसेंस चोरी हो गया। कौन ज़िला है तुम्हारा ?"

"होशियारपुर ?"

"कौम ?"

"राजपूत ?"

"ठीक, तो समझ गये ?"

"हाँ।"

५

प्रतिष्ठित लोग—

बैरिस्टर साहब, भाबी, मन्नो बीबी और भूपी, दोपा के साथ सोमा लाहौर आ गई। सोमा धनसिंह की फरारी के बाद अढ़ाई मास और गतवर्ष भी लाला जी की कोठी में चार मास रह कर जीवन के एक नये प्रतिष्ठित ढंग का परिचय पा चुकी थी। लाहौर की कोठी में आकर उसने कुछ और देखा। धर्मशाला की कोठी में नये और पुराने का मेल था। परिवार के ढंग और व्यवहार पर एक सीमा तक लाला जी और माँ जी का नियन्त्रण था। लाहौर की कोठी में मालिक लाला जी नहीं, बैरिस्टर साहब थे। यहाँ पुराना ढंग बहुत कम, केवल भाबी के आस पास ही था। नया ढंग ही अधिक था। व्यवहार और वातावरण में एक प्रकार की स्वच्छन्दता थी।

बैरिस्टर साहब और मनोरमा सोमा को अपने साथ मेहमान के रूप में ले आये थे। वे उसे आदर से उठाये रहते। सोमा अपने दुर्भाग्य, लज्जा और साहब तथा मन्नो बीबी के प्रति कृतज्ञता के बोझ से दबी रहती। साहब उसके आराम और आदर का ख्याल करते; सोमा उनके घर तथा परिवार के प्रति अपने कर्तव्य का। वह पारिवारिक जीवन की धारा में अपनी स्थिति के अनुसार, नौकर की जगह रहना चाहती थी; उसके विचार में यही उसका अधिकार था। साहब और मनोरमा उसे बाँह से खींच मेहमान बना कर घर के आदमी के तल पर खींच लाना चाहते थे। यह संघर्ष सोमा के तीव्र दुःख के बोझ को हल्का बनाये था।

कार्तिक मास बीत रहा था। लाहौर में लोग कहते थे, मौसिम

अच्छा हो गया है परन्तु सोमा के लिए बहुत गरमी थी। वह दिन भर पसीना-पसीना रहती और आंचल से चेहरा पोंछती रहती। एक दिन संध्या समय साहब और मनोरमा बराम्दे में चाय पी रहे थे। सोमा चाय की ट्रे लाकर दोनों के लिये प्याले ढाल रही थी। मनोरमा ने उसकी ओर देख मुस्करा कर कहा—"हाय, देखो तो इस गरमी में यह कैसे निखरती जा रही है ?" साहब ने समर्थन किया—"हां, जितना बार आंचल से मुंह पोंछती है रंग खुलता ही जाता है।"

सोमा का चेहरा लज्जा से गुलाबी हो गया। चाय बनाना छोड़ केटली ट्रे में रख दी और सिर झुकाये चली गई परन्तु उस लज्जा से उसको क्रोध और अपमान नहीं, हृदय में एक पुलक और गुदगुदी सी ही अनुभव हुई, मुस्कराहट भी आ गई। उसे बैरिस्टर साहब के सामने होने में संकोच होने लगा। बैरिस्टर साहब कुछ न कुछ कहते ही रहते थे और मनोरमा उनके समर्थन में मुस्करा देती। सोमा कैसे न मुस्कराती ? उनकी किसी बात की अवहेलना करना कैसे सम्भव था। कुछ ही दिन बाद, वैसे ही फिर सन्ध्या समय एक साथ सिनेमा जाने से पहले बैरिस्टर और मनोरमा चाय पी रहे थे। सोमा चाय दे रही थी। मनोरमा ने सुझाया, "इस ढंग से कपड़े पहने तो कितनी अच्छी लगे ?"

"उसे साथ ले चलो !" साहब ने अंगरेज़ी में कहा—"देखना कैसे चौंकेगी ? मज़ा आयगा !"

मनोरमा को मन में उठी इच्छायें वृथा देने का अभ्यास न था। वह उठी। पुकारा—"सोमा, सोमा बहिन !" सोमा को रसोई में देख, उसे हाथ से पकड़ वह अपने कमरे में खींच ले गई। सोमा कुछ समझी नहीं थी परन्तु जब मनो ने अपनी आलमारी खोल बढ़िया साड़ी, ब्लाउज, दूसरे कपड़े निकाल काउच पर फेंक कर कहा—"जल्दी से कपड़े बदल लो।" सोमा घबरा गई। हाथ जोड़ उसने कहा—"हाय, नहीं भैन जी, यह मुझे नहीं आता। पाँव पड़ती हूं।"

"डाट नानसेन्स (क्या पागलपन) !"—मनोरमा ने अपनेपन से डांट दिया और स्वयम उस के कपड़े बदलने की चेष्टा करने

लगी। सोमा सिकुड़ कर घुटनों में सिर छिपा बैठ गई। मनोरमा झनक उठी। वह कमरे से चली जा रही थी। सोमा ने कातर स्वर में पुकारा—"अच्छा भैन जी!"

मनोरमा लौट आई। स्नेह से उसने कहा—"तू तो पागल है। सारी दुनिया क्या कपड़े नहीं पहनती ?"

सोमा ने विनय से कहा–"मैं सिलवार पहन लूंगी!" धोती उसने एक दिन पुलिस के सामने ले जाए जाते समय आधी बेहोशी की सी हालत में पहन ली थी परन्तु उसके बाद उस पोशाक में चलना सम्भव न था। धर्मशाला में पंजाब और देश की स्त्रियों को धोती पहने देख कर पहाड़ी बिरादरी की स्त्रियों को ठोड़ी पर उंगली रख कर आलोचना करते उसने सुना था—"हाय, यह भी कोई पहनावा है, नीचे से खुला! हाय रे, कैसी बेशर्मी ?" अपने लिये सोमा इसे असम्भव ही समझती थी।

मनोरमा ने उसकी बात मान ली। सोमा ने कपड़े बदल लिये परन्तु नौसिखियापन न छिपा। मन्नो ने जरा पाउडर और काजल लगाने के लिये इशारा किया! यह और भी कठिन था। वह धर्मशाला की अपनी कोठरी में यह सब थोड़ा बहुत करती ही थी परन्तु तब उसे विश्वास था कि धनसिंह के लिए करती है। अब किसके लिये करे ? मनोरमा जैसे सिर पर आँचल रखे बिना, सिर उठा बेधड़क हो कर चलने के लिये कहा वह भी कठिन था। सोमा का चेहरा रूआंसा सा हो रहा था। साहब के सामने आ कर तो वह बिलकुल जैसे ज़मीन में गड़ गई। साहब ने हँस कर कहा—'ह्वाटिज़ दिस (यह क्या) ?" मनोरमा ने अपने प्रयत्नों में विफल होकर कहा—"अच्छा रहने दे।"

इस बीच में भाबी भी बराण्डे में आगई थी, उन्होंने भी प्रसन्न होकर कहा– "हाय अच्छी तो लगती है, इसे भी ले जाओ न।" मन्नो ने अस्वीकृति में सिर हिला दिया और साहब के साथ चली गई। मनोरमा और साहब के चले जाने के बाद सोमा खूब फूट-फूट कर रोई। यह सब उसके साथ क्या अत्याचार हो रहा है ? यह प्यार और आदर ही तो है ? हाय, वह इन लोगों के लिए मर जाय!

कोठी का कोई नौकर मैले कपड़े पहने दिखाई दे तो साहब को

इसमें अपना अपमान जान पड़ता था। वहरे ऊधमसिंह की नज़र साहब के पुराने होते कपड़ों पर रहती थी। ड्राइवर बरकत खुद ही छैला था। सोमा यों भी कुछ मैली न रहती परन्तु कभी उदासी या काम काज की उलझन में उसके कपड़े मैले या मसले हुए दिखाई देते तो साहब मिसेज़ सरोला से उलझ पड़ते—"इसके लिये घर में दो कपड़े नहीं हैं? इस बच्चों के साथ रहना पड़ता है, वे क्या सीखेंगे?"

मिसेज़ सरोला तो अपने शिथिल स्वभाव से उत्तर दे देतीं—"बदल लेगी परन्तु सोमा लज्जा से मर जाती कि उसकी वजह से भाबी जी को बात सुननी पड़ी। यह था भी कठिन। दिन भर घर के काम-काज में कपड़ों की कलफ़ और स्त्री कैसे बनाए रखे? घर का काम तो वही देखती थी। भाबी की प्रकृति ही ऐसी थी कि जितना काम कोई दूसरा करदे, अच्छा। पहले तो उनकी तबीयत कुछ दिन यों खराब रही फिर वैसे खराब रहने लगी। भूपी और दीपा की बारी भी ऐसा ही हुआ था कि दूसरे ही महीने से उन्हें पानी भी न पचता। माँ जी के घर पर न रहते समय जिम्मेवारी उन पर ही रहती। अब चाबियों का गुच्छा सोमा के ही पास रहने लगा। मन्नो को इन सब बातों से कुछ मतलब न था। पहले कालिज से ही समय कम बचता था और अब थोड़ी बहुत 'सोशल लाइफ़' और 'पब्लिक वर्क' था। नमक तेल का हिसाब और धोबी को धुलाई लिखने के लिये ही तो उसने एम. ए. पास न किया था।

साहब का प्रायः सभी काम 'बेड टी' से लेकर रात के लिये सिरहाने पीने का पानी रखने तक, उन के कपड़े सम्भालना और कमरा ठीक रखना सोमा पर ही आ पड़ा। यदि साहब चाय मेहमानों के साथ दफ्तर में लेते तो ऊधमसिंह की ड्यूटी रहती। घर में मनोरमा के साथ या अकेले लेते तो सोमा स्वयं ट्रे लाती। ऐसे समय साहब उसे भी चाय पीने के लिये पुकारते—"आओ, तुम भी आओ।" और उसके लिये एक कुर्सी लाने की आज्ञा दे देते। मन्नो भी उनका समर्थन कर देती परन्तु सोमा के लिये यह सम्भव न था कि वह साहब और मन्नो के बराबर कुर्सी पर बैठ जाय।

भाभी के लिये साहब के साथ चाय पर बैठना न रूचि कर था न सुविधाजनक। उन्हें चाय का कसैला स्वाद ही न सुहाता था।

वे कभी जुकाम हो जाने पर दवाई के तौर पर ही दूध में चाय डाल कर पीती थीं। अपने फैलते जाते शरीर को खुश्की और कमज़ोरी से बचाने के लिये उन्हें चाय की उपेक्षा दूध और लस्सी ही अधिक पसन्द थी। इसके अतिरिक्त कुर्सी पर सिमिट कर, और टंग कर बैठने में उन्हें असुविधा भी होती। कभी मनोरमा के न रहने पर भी साहब ऐसा आग्रह कर बैठते और कहते कि चाय और शराब अकेले पीने में अच्छा नहीं लगता। सोमा शरम से मर जाती। बिना कुछ उत्तर दिये सिर झुकाये खड़ी साहब के लिये प्याली तैयार करती रहती परन्तु मुस्कराना तो पड़ता ही। उसका रोम-रोम सनसना उठता। प्याली में चाय आवश्यकता से कुछ अधिक या कम हो जाती, दूधदानी से दूध की एक आध बूंद प्याले के बाहर गिर जाती और चीनी के कुछ दाने बिखर जाते।

सोमा जान चुकी थी, साहब को फूहड़पन बुरा लगता है परन्तु उस के हाथ से ऐसा हो जाने पर साहब को खलता नहीं। साहब का यह आदर सोमा को बहुत बोझ मालूम होता। कभी साहब के स्वर में एक गहराई सी अनुभव होती। सोमा को पसीना सा आ जाता। उसके हाथ पाँव शिथिल और अवश से होने लगते। चेहरे पर गुलाबीपन आ जाता। वह कहीं छिप जाना चाहती। झट से किसी काम में हाथ लगा देती। भूपी या दीपा को पकड़ उनके कपड़े बदलाने लगती परन्तु मन कहीं का कहीं पहुँच जाता। वह जानती थी, वह सुन्दर है! साहब को वह अच्छी लगती है। मन्नो बीबी बड़े लोग हैं, कितनी पढ़ी-लिखी हैं। रंग गोरा है परन्तु खूबसूरत तो नहीं है। नाक सुघड़ नहीं है, होंठ ज़रा मोटे है, आंखें तो अच्छी हैं। माथा कितना चढ़ा हुआ है। भाभी के चेहरे पर भोलापन है, अच्छी लगती है पर कितनी फैल गई है, कपड़ों से बाहर बिखरी रहती है, और सदा ही बीमार! अच्छी लगने में कितना भय था और अभिमान भी। धर्मशाला में उसकी कोठरी के आस-पास से आने-जाने वालों को, रात में उसकी कोठरी के दरवाजे पर आकर शरारत करने वालों को भी वह कितनी अच्छी लगती थी। उस का क्या परिणाम हुआ!··· मझेरा के नम्बरदार के छोकड़े को भी वह अच्छी लगती थी! तब

उसने उसे कैसे उल्टे हाथ का थप्पड़ मार दिया था। अब वह किसी को थप्पड़ नहीं मार सकती। बैजनाथ के थाने में लालटैन उठा कर देखी जाने पर वह थानेदार और सिपाहियों को अच्छी लगी थी! उसका रक्त जमने लगता। साहब को अच्छा लगने के विचार से जो मधुर बेचैनी अनुभव होती वह भय और आशंका में बदल जाती परन्तु साहब तो भले आदमी हैं, बड़े आदमी हैं, कितने दयालू हैं।

उसे धनसिंह की याद सताने लगती। वह उदास हो जाती। वह किसी से कह भी न सकती थी। मनोरमा उसे उदास देख भाँप जाती। वह उसके हाथ का काम छुड़ा कर अपने कमरे में खींच ले जाती। तीन-चार बार वह उसे सिनेमा भी ले गई। पहली बार मनोरमा के और साहब के साथ बाहर जाने के लिए कहा जाने पर जो झगड़ा सा हुआ था वह फिर नहीं हुआ। साहब के साथ न होने पर सोमा को उतना संकोच भी न होता। मनोरमा सोमा को साथ ले जा कर अपने साथ काउच या पलंग पर लिटा कर बात करने लगती। आश्वासन देती कि धनसिंह धर्मशाला से भाग आया होगा। छः महीने बीत गये हैं। वह कभी भी यहाँ आ सकता है। यह जगह तो वह जानता ही है।

मनोरमा स्वयं भी घर में बात करती तो किससे? भाबी उस की समवयस्क अवश्य थी परन्तु स्वभाव से ही चुप और अतृप्त। तिस पर वे अपने आप को विवाहित और दो बच्चों की माँ समझती थी और सोमा को केवल कुआँरी लड़की। जब दिल भर आता तो वह सोमा को ही ले बैठती। ऐसी आंतरिकता में ही वह भाई के प्रति सहानुभूति और भाबी के प्रति विरक्ति में सोमा को सुना गई—भाई तो दूसरी एक लड़की को चाहते थे। वह भी इन्हें चाहती थी। माँ जी ने यह सम्बन्ध ढूंढ़ निकाला। भाबी के घर के लोग पुराने ख्याल के हैं। बस एक बार लड़की दिखाने को राजी हुये। भाई उस समय बस चेहरे पर रीझ गये। जब आई थी, दुबली पतली देखने में बहुत खूबसूरत लगती थी लेकिन चेहरा ही तो सब कुछ नहीं। भाई से दो बातें भी तो नहीं कर सकती। आठवीं जमात तक पढ़ी है। घर वालों ने कहा था, घर पर अंग्रेज़ी पढ़ा रहे हैं। शरीर तो देखो, बच्चे तो दो जरूर हो गये हैं, वैसे तो कभी इन लोगों को आपस में बोलते भी नहीं देखा।

बैरिस्टर साहब अदालत जाते जरूर थे परन्तु प्रेक्टिस उनकी विशेष चल न पाई। थोड़े बहुत जो मुकदमें मिले वे उन्हों ने अच्छे निभाए परन्तु मवक्किल आते ही बहुत कम थे। मवक्किलों को आकर्षित करने के ढंग उन्हें अपमानजनक जान पड़ते और जजों के सामने जी हुजूरी उन्हें सुहाती न थी। उनकी अकड़ निभे जा रही थी क्योंकि प्रेक्टिस न चलने पर भी आर्थिक कठिनाई का भय न था। लाला जी की इच्छा थी कि जगदीश दोनों बड़े भाइयों की तरह व्यवसाय करे। जो बरकत व्यवसाय में है, बैरिस्टरी में नहीं हो सकती। बड़े से बडे बैरिस्टर क्या हैं, व्यवसाइयों का ही तो पैसा खाते हैं? परन्तु जगदीशसहाय को व्यवसाय के क्षेत्र के कुचक्र सुहाते न थे। वे चाहते थे सम्मान से, रोबदाब से रहना परन्तु युद्ध के दौरान में घर का व्यवसाय अधिक बढ़ जाने पर पिताजी के लगातार धर्मशाला में, बड़े भाई कृष्णसहाय के कलकत्ते में और विष्णुसहाय के कराची में रहने के कारण लाहौर में व्यवसाय का काम उन्हें भी देखना पड़ता। लाला ज्वालासहाय के पुराने विश्वासी मैनेजर पं० लज्जाराम सब काम सम्भाले थे। बैरिस्टर का काम था, नज़र रखना लेकिन पिछले तीन मास से उन्होंने स्वयं भी ठेका ले लिया था।

क्लब में ह्विस्की पीते हुये मेजर बासू घुड़ दौड़ में मिसेज़ बासू के चार हजार का दाँव हार जाने की बात बैरिस्टर को सुना रहे थे। मेजर की तनख्वाह केवल दो हजार थी। माहवारी खर्च इससे कुछ अधिक ही था। मेजर चाहते थे, बैरिस्टर कुछ मास के लिये चार हजार उधार दे दें। इस घटना की जिम्मेवारी मिसेज बासू पर होने के कारण बैरिस्टर सरोला सज्जनता दिखाने के लिये उत्सुक भी थे। अपने गिलास से घूँट भरते हुये वे सोच रहे थे, रकम काफी है···। मिसेज़ बासू की ओर देख मुस्करा कर उन्हों ने कहा—"कुछ तो करना ही होगा!"

मेजर बासू अपनी भूल के लिये संकुचित थीं। उन्हों ने लजा कर अँग्रेजी में कहा—"मैं बहुत ही अनुग्रहीत हूँ।" मेजर बासू ने अपना गिलास मेज पर रख धीमे स्वर में सरोला को कहा—"तुम इतने बड़े व्यवसाई के पुत्र हो, तुम स्वयं कुछ क्यों नहीं करते! ऐसा अवसर तो सदा बना नहीं रहेगा।" मेजर बासू लाहौर

छावनी में डाक्टरी सामान की खरीद और बटवारे के हाकिम थे। बीसियों लोग उनके पीछे-पीछे घूमते रहते थे। परन्तु सरोला ने इतनी आँतरिकता के बावजूद, कभी कोई ऐसी बात न की थी।

"मुझ से क्या बन पड़ेगा?"—सरोला ने पूछा।

सरोला के कुछ और समीप सरक कर मेजर बासू बोले—"मौका है, तुम बिल्ली की आँतड़ी सप्लाई कर दो!......दो अढ़ाई लाख रुपये का आर्डर कल ही दे दूँ?"

"दो अढ़ाई लाख रुपये की बिल्ली की आँतड़ी?"—सरोला हँस दिया "बिल्लियाँ मारना मेरे बस का नहीं। और फिर इतनी बिल्लियाँ देश भर में भी न मिलेंगी। इतनी आँतड़ी क्या होगी?" मेजर ने धीमे-धीमे समझाया लड़ाई पर जख्मों के सीने के लिये बिल्ली की आँतड़ी काम में आती है। इस समय विलायत से आ नहीं रही बल्कि इंगलैंड हमसे आँतड़ी माँग रहा है।

"पर इतनी आंतड़ी आयेगी कहाँ से?"

"अरे कुछ भी हो, जो आंतड़ी जान पड़े, सप्लाई कर दो!"

"लेकिन जख्मों में ऐसी खतरनाक चीज़ छूने या पहुँचने से कितने आदमी मरेंगे?"—सरोला की नैतिकता जाग उठी।

"पागल हो तुम! तुम क्या समझते हो मुझे परमेश्वर का भय नहीं है? ऐसा पाप मैं कर सकता हूं? वह आंतड़ी गोदाम में आ जायगी। तुम्हारा बिल पन्द्रह दिन के भीतर अदा हो जायगा लेकिन आंतड़ी गोदाम से लड़ाई पर कभी भेजी नहीं जायगी।......नहीं समझे? गोदाम में आंतड़ी के बंडल संयोग से खुल जायेंगे। वह बेकार हो गई समझ ली जायगी। उन पर तेज़ाब गिर जायगा। मैं उसे कंडेम करके अपने सामने जलवा दूंगा। तुम चाहे सड़ी हुई सूतली ही सरेश में भिगो कर सप्लाई कर दो लेकिन क़ायदे से। इसमें १० फी सैकड़ा स्टाफ़ का होगा। यह तो रोज़ का कारोबार है।"

सरोला "सोचूंगा"—कहकर क्लब से लौट आये थे। रात में सोचा तो खयाल आया, अधिक रुपया न कमा सकने के कारण दोनों भाइयों के सामने उनकी जो गिरी हुई स्थिति है, उसका यह सरल उपाय हो सकता है। एक बार शुरू करने पर आगे भी काम

चलता जायगा। अगले दिन सरोला ने मेजर बासु को फोन कर हामी भर ली। आंतड़ी का प्रबन्ध पं० लज्जाराम के सिपुर्द हुआ। बाद में सरोला ने कई और ठेके, पट्टियां और दूसरे सामान सप्लाई करने के ले लिये। काम बहुत सरल था। जमानत जमा कर बड़े ठेके अच्छे भाव पर ले लेना और फिर दूसरे छोटे-छोटे ठेकेदारों को कम रेट पर बेच देना। पांच लाख के ठेके में पांच फ़ी सैकड़ा भी बच जाता तो क्या बुरा था! अपना तो कुछ खर्च था नहीं। संयोग ने उन्हें व्यवसायी बना दिया।

बैरिस्टर साहब को संध्या समय डिनर के लिये क्लब में जाना था। सोमा ने काला सूट, सूट के साथ की कलफ़दार कमीज़, मोज़े-जूते सब उसके कमरे में पलंग पर रख दिये थे। बैरिस्टर साहब संध्या समय दफ्तर से विलम्ब से लौटे और जल्दी-जल्दी कपड़े बदलने लगे। कमीज़ बदल लेने पर उन्होंने देखा कि कमीज़ के कफ़ में बटन नहीं लगे थे। कलफ़ लगे कफ़ों में एक हाथ से बटन लगाना सहल न था। साहब झुंझला उठे—"यह किसने रखे हैं कपड़े? लिंक नहीं लगाये?" प्रकट में यह झुंझलाहट भाभी जी या ऊधमसिंह पर थी परन्तु करती तो सब कुछ सोमा ही थी। सोमा साथ के कमरे में ही कुछ करने लगी थी कि साहब किसी ज़रूरत से पुकारें तो उन्हें परेशानी न हो।

उस ने साहब की झुंझलाहट सुनी तो लजा गई। साहब कमीज़ पहन चुके थे और एक हाथ से बटन अटाने का यत्न कर रहे थे। उनकी कठिनाई हल करने के लिये समीप पड़ा दूसरा बटन उठा सोमा उन की दूसरी बांह के कफ़ में लगाने लगी। साहब के सीने के इतने समीप खड़े होने से सोमा के हाथ कांप रहे थे। साहब झुंझलाहट भूल गये। उन्हें अपनी झुंझलाहट पर झेंप अनुभव होने लगी। सोमा को सान्त्वना देने के लिये वे मुस्करा दिये और अपनी दूसरी बांह उसकी कमर पर रख दी। सोमा के हाथ से कमीज़ का कफ़ छूट गया। वह लड़खड़ा गई, जैसे गिर पड़ेगी। साहब ने उसकी बांह थाम ली और कमर से सम्भाल लिया। सोमा का सिर साहब के सीने पर टिक गया। साहब ने उसकी ठोड़ी के नीचे हाथ लगा चेहरा ऊपर उठा कर पूछा—"क्या हो गया?" सोमा की आंखें मुंद गईं और माथे पर पसीने की बूंद छलक आईं

"पागल हो, घबराने की क्या बात है ?"—साहब ने दबे स्वर में कहा।

साहब का सांस तेज़ और गला भारी हो गया था। सोमा ने यह अनुभव किया। उसका कम्पन स्वयं रुक गया और उसने आंखें खोल दीं। साहब उसे कुछ और ही से दिखाई दिये। इतने समीप से उन्हें कभी देखा भी तो नहीं था। साहब ने अधीर हो उसके होठों पर होंठ रख दिये। सोमा की आंखें फिर मुंद गईं। अपनी बाहें उसने साहब के गले में डाल दीं और सिर साहब के सीने पर रखे गहरी सांसें लेती रही।

इसके बाद दो दिन सोमा ने उदासी और चिन्ता में बिताये। वह मन ही मन अपने आप को बहुत धिक्कार रही थी—"यह तूने क्या किया ?" उसे धनसिंह की भी याद आई। विशेष कर उस रात की जब बैजनाथ के थाने की बात सुनकर धनसिंह दारोगा का क़त्ल करने के लिये तैयार हुआ था। सोमा उसके पांव की बेड़ी बन गई थी। तब धनसिंह ने अपना सिर दीवार से फोड़ लिया था और सोमा को भी बुरी तरह से पीटा था। धनसिंह की उस मार पर उसे कितना अभिमान था और उसकी स्मृति कितनी मधुर थी। साहब का एक चुम्बन स्वीकार कर उसने उस सब पर कालिख पोत दी परन्तु साहब को भी वह कैसे नाराज़ करे ? साहब ने उनके लिये क्या नहीं किया ! उसका बदला वह कैसे दे ? वह साहब के घर का काम करती है सही पर उतना तो सभी नौकर करते हैं ? अपने मन को समझाया, उनकी कृपा के बदले में उसके पास तो सिवाय इनकार न करने, नाराज़ न करने के और कुछ नहीं। ....जो खो गया, उसे कब तक रोये ? और रोने से हाथ क्या लगेगा ?

* * *

बार बार बात उठती परन्तु बैरिस्टर के लिये व्यापार और बहते चले आते रुपये के उत्साह में पहाड़ जाना सम्भव न हो रहा था। मां जी बार-बार लिख रही थीं कि बच्चों को ही भिजवा दो ! पर कैसे होता ? सरोला नये शुरू किये कारोबार को कैसे छोड़ देते और फिर सोमा को साथ ले कर जाते तो वहां मां जी और

लाला जी की नज़रों से बचते-बचते प्राण संकट में आ जाते। मनोरमा को भी इस वर्ष पहाड़ जाने का उत्साह विशेष न था।

गरमी से कष्ट सब से अधिक हो रहा था मिसेज सरोला को परन्तु वह अकेली क्या करती ? पांचवां मास लग जाने के कारण उनकी तो अवस्था ऐसी हो गई थी कि बिस्तर से उठना ही कठिन था। पूरा घर सोमा के ही सिर था। घर का काम सोमा बहुत दिनों से करती आ रही थी परन्तु अब वह दैन्य का आचरण उसके व्यवहार से निकल गया था।

पहल वह काम करती थी अब प्रायः कराने लगी। नौकरों को काम के लिये आग्रह करने के स्थान पर वह हुक्म देने लगी। वे लोग भी जानते थे कि बीवी जी की बात एक बार टल भी जाय, सोमा बीवी की नहीं टल सकती।

मनोरमा ने धर्मशाला में ही सोमा को कुछ पढ़ना-लिखना सीख लेने के लिये उत्साहित किया था। समीप बैठा कर कुछ सिखाया भी था। सोमा को उसमें बहुत लज्जा जान पड़ी थी। अब सोमा को न केवल घर के प्रबंध में ऊधमसिंह या ड्राइवर को बुला कर धोबी के कपड़ों का या दूसरा हिसाब लिखाने में उसे अपमान जान पड़ता बल्कि साहब उसे जैसा देखना चाहते थे वैसा बनने के लिये भी उसका पढ़ना-लिखना सीखना ज़रूरी था।

इसका उपाय भी सोमा ने खोज लिकाला। दीपा और भूपी कन्वेंट के अंग्रेजी स्कूल में पढ़ने जाते थे। सोमा ने बच्चों के लिये घर पर भी एक मास्टर लगा लिया। वह समीप बैठ कर देखती कि मास्टर ठीक से पढ़ाता भी है या नहीं। एक ही महीने बाद वह जैसे तैसे धुलाई और दूसरे हिसाब स्वयं लिखने लगी।

दिन बीतते जा रहे थे। साहब ने अभ्यास के अनुसार सोमा को अकेले में मिसेज सिंह कह कर सम्बोधन किया। सोमा ने अपने मुस्कराते हुये पतले लाल होठों के आगे उंगली रखकर कहा— "नो डियर, सोमा !" और वह स्वयं ही लज्जा से झुक गई। सोमा की ऐसी ही बातें थीं जिनसे साहब बिलकुल ही लुट गये। मिसेज़ सरोला की अवस्था ऐसी थी कि साहब के लिये उनका कोठी में होना न होना एक सा था। सोमा को साहब की इस अवस्था पर

दया भी आती। यों सोमा का अपना कमरा था परन्तु साहब उसे अपने कमरे से काफ़ी रात बीतने से पहले न जाने देते।

सोमा साहब के मुख से अपनी छब और सुघड़पने की बाबत जो सुनती उससे उसे नशा सा हो जाता। पुरुष के मुख से ऐसी प्रशंसा और क़द्र सुनने से बड़ा सुख क्या हो सकता है? यह नशा शराब के नशे की भाँति कुछ घण्टे का नहीं बल्कि आठों पहर बना रहता। सोमा अब जैसे तैसे शरीर ढकने के लिये जल्दी-जल्दी कपड़े लपेट न लेती। वस्त्र अब स्थिति और शरीर की शोभा का साधन बन गये। वह साड़ी की किनारी या दुपट्टे को शरीर के दबाव और उभार के विचार से बैठाती थी। उसे अपने सुघड़पन का अभिमान था। अमीर घरों की कारों में घूमने वाली स्त्रियों के कीमती कपड़ों से ढके लद्-बद् शरीरों से वह अपने शरीर की तुलना करती। और साहब का मज़ाक उसे याद रहता—"यह खुशबूदार, जरक बरक कपड़ों में लिपटीं कूड़े की गठड़ियां हैं। किस्मत की चूक से अमीरों के घर पैदा हो गईं, दूसरे अमीरों के यहां उन्हें ससुराल मिल गई।" इस नशे से उसके स्वर में तथा व्यवहार में अधिकार का भाव आ गया। अब वह मन्नो के साथ कभी सिनेमा या बाज़ार जाती तो उसकी नौकरानी नहीं, बहन या भाबी की स्थिति से व्यवहार करती।

भाबी के बिना उसे नाम से कोई नहीं पुकारता था। साहब उसे पुकारते नहीं थे। नौकरों से उसका उल्लेख सोमा बीबी जी कह कर करते। मनोरमा सोमा को बहिन कहती थी और बच्चे उसे मौसी पुकारते थे। नौकर भी सोमा बीबी जी या मौसी जी कहने लगे।

घर का काम वह भय और चिन्ता से नहीं, ममता और अधिकार से करने लगी। वह अब नौकरों को डांट भी देती। घर के नौकर प्रायः पुराने थे, मां जी के रखे हुये। वे सोमा को भी नौकर ही समझते थे। वह तनखाह नहीं लेती तो क्या? वे उसे साहब की रखेल समझते थे। मालिक की खैरख्वाही में सोमा की डांट-फटकार उन्हें सह्य न थी परन्तु करते क्या? यदि भाबी जी से शिकायत करते तो वे इसे नौकरों की ही हरामखोरी समझती थीं। घर की अवस्था में आया परिवर्तन उनकी आंखों के सामने था।

अब तक घर का सौदा नौकर लाते थे। उसमें सोमा को सौ नुक्स दिखाई देते और बेइमानी का भी सन्देह होता। पहले दो चार बार वह मनोरमा के साथ कार में घर का सौदा लेने बाज़ार गई। मनोरमा को यह झंझट पसन्द न था। सोमा अकेली ही बटुआ ले कार में बाज़ार जाने लगी। उसका बटुआ घर का बटुआ था, काफ़ी भारी रहता। आरम्भ में मिसेज़ सरोला और सब चाबियाँ सोमा को सौंप, रुपये पैसे की चाबी अपने हाथ में रखती थी लेकिन यह झंझट भी उन्हें अनावश्यक जान पड़ा। घर का रुपया भी सोमा के पास रहने लगा।

सोमा ड्राइवर बरकत के सामने ही आई थी। बरकत चुस्त, सुडौल और उमंग भरा नौजवान था। मौका लगते ही सिनेमा चला जाता। यहाँ तक कि कभी साहब या घर की स्त्रियों को गाड़ी में सिनेमा ले जाता तो उनके सिनेमा घर में चले जाने पर गाड़ी को चाबी से बन्द कर स्वयं भी आठ आने का टिकट ले भीतर जा बैठता और खेल समाप्त होते ही, उनसे पहले गाड़ी के पास आ खड़ा होता। तितली जैसी मूंछें, सिनेमा एक्टरों जैसी लम्बी कलमें, कनपटियों तक भरे-भरे बाल। वर्दी पहनना उसे अच्छा न लगता। कार भी इस अदा से चलाता कि स्वयं मालिक हो। उसके सिगरेट पीने में, चलने फिरने में, हर हरकत में एक अदा थी।

बरकत ने सोमा के रूप, रंग, व्यवहार और स्थिति में आता परिवर्तन देखा था और उसी के कारण बाज़ार से सौदा लाने का लाभदायक काम बरकत के हाथ से निकल गया था। वह मन में सोचता, साहब की रखेल बन गई है तो क्या? है तो नौकरानी ही! वह उससे मुस्करा कर बात करने की कोशिश करता। उसे कार में ले जाता तो अपना निस्संकोच व्यवहार दिखाने के लिये कोई ग़ज़ल गुनगुनाता रहता। सोमा को यह भला न लगता परन्तु उपेक्षा के अतिरिक्त चारा न था। अपमान को समझना, अपमान को स्वीकार करना था।

बरकत जानता था, सोमा की चलती है। वह उसे पिस फेंक औरत समझता था। यदि वह उसकी ओर झुक जाय!...... सिनेमा में क्या ऐसा नहीं होता। आखिर है तो उसी की हैसियत की! साहब की रखेल ही तो है! किसी बात पर वह उसे क्या

ले !....एक बार मुस्करा कर उसकी ओर देख भर ले। फिर राह निकल आयेगी।

एक दिन बाज़ार में सोमा एक दुकान पर काम समाप्त करके कार की ओर लौटी तो बरकत ने कार का दरवाज़ा खोल, अदा से सलाम कर मुस्कराहट से कहा—"सरकार, ज़रा गरीबों का भी खयाल रहे !"

बरकत बकशीश के तौर पर विनय से दो-चार रुपये माँग लेता तो सोमा दे डालती। वह जानती थी नौकरों से इज्ज़त इनाम-इकराम देते रहने से ही मिलती है। सोमा आदर का रस पा चुकी थी परन्तु बरकत के व्यवहार में आदर नहीं शरारत थी। सोमा के माथे पर त्योरियाँ पड़ गईं—"क्या बकता है !" उसने डाँट दिया—"जो कहना हो साहब से बोलो" ! बरकत सहम गया ! दाँत पीस कर मन ही मन उसने कहा—देखा जायगा।

* * *

गत वर्ष जाड़े के आरम्भ में जब मनोरमा परिवार के साथ धर्मशाला से लाहौर आई थी उसके कुछ ही दिन बाद भूषण अपने साथियों के साथ जेल से छूट गया था। उससे अढ़ाई वर्ष पूर्व कम्युनिस्ट युद्ध में सहयोग का विरोध करने के कारण अङ्गरेज़ सरकार के क्रोध के पात्र थे। जून १९४१ में जर्मनी ने रूस पर आक्रमण कर दिया और जापान भारत की ओर बढ़ने लगा। कम्युनिस्ट अँग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध थे परन्तु जर्मनी और जापान के फैसिज़्म को उससे भी बड़ा शत्रु समझते थे। जर्मनी के विरुद्ध रूस की विजय से उन्हें अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में समाजवादी प्रजातंत्र शक्ति के सबल होने की आशा थी। शिथिल होते हुए अंग्रेजी साम्राज्य के स्थान पर वे जापान के बढ़ते हुए साम्राज्य का आना अधिक घातक समझते थे। वे भारत की प्रजा को जापानी बमों का शिकार नहीं बनाना चाहते थे। उन्होंने अन्तरराष्ट्रीय परिस्थिति में परिवर्तन के कारण अपनी नीति में परिवर्तन कर लिया। वे अपने देश और समाजवाद की रक्षा के लिये इस युद्ध को जनता का युद्ध बताकर युद्ध में आत्मरक्षा के लिये सहयोग की सलाह देने लगे। सरकार ने अधिकांश कम्युनिस्टों को जेलों से छोड़ दिया।

इस कारण अंग्रेज़ों से घृणा करने वाली, अंग्रेज़ों के संकट से संतुष्ट होने वाली जनता कम्युनिस्टों से घृणा करने लगी थी।

भूषण मनोरमा की कोठी पर न आया। मनोरमा ने मन में तर्क किया—जेल से छूटने वाले व्यक्ति के प्रति सहानुभूति प्रकट करने के लिये उसका स्वयं भूषण से मिलने जाना ही अधिक युक्ति-संगत है। इस बात पर भूषण यह नहीं कह सकता था कि वह उसके पीछे पड़ी है। वह पार्टी आफिस में गई। उस समय भूषण साथियों को पार्टी की नई नीति की सफ़ाई दे रहा था। उसे बात करने की फुर्सत न थी। मुस्करा कर पूछ लिया—"आप कैसी हैं, जगदीश भाई का क्या हाल है ? सोमा का क्या हाल है ? आज अभी बम्बई जा रहा हूँ लौट कर कोठी पर आऊंगा।"

भूषण ने अपना वायदा चौदह मास बाद पूरा किया। आते ही उसने कहा—"मैंने पत्रों में तुम्हारे दो-चार लेख देखे हैं। तुम्हारी कलम में ज़ोर है लेकिन तुम्हारे विचार उलझे हुये हैं,—आइडिया कनफ़्यूज़्ड। तुम पार्टी का पत्र नियमित रूप से नहीं पढ़ती। राय की डैमोक्रैटिक पार्टी की लाइन और हमारी लाइन में जो अन्तर है, वह तुम्हारे लेखों में स्पष्ट नहीं रहता। हम चर्चिल गुट्ट के समाजवादी बन जाने में विश्वास नहीं करते ! हमारा काम दोहरा है, कम्यु-निस्ट यह विश्वास नहीं करता कि परिस्थितियां स्वयं क्रान्ति कर देंगी। कभी नहीं, मनुष्य का संगठित प्रयत्न स्वयं एक आवश्यक परिस्थिति है। हमें फैसिज्म का सामना करना है और अपने लिये राष्ट्रीय आम निर्णय का अधिकार भी लेना है····।"

मनोरमा अढ़ाई वर्ष बाद मिलने के समय पार्टी लाइन का उप-देश सुनने की आशा में न थी और फिर भूषण ने उसके लेखिका के आत्म-सम्मान पर चोट कर दी। एक तरह यह कृतघ्नता भी थी। जब वह पार्टी आफ़िस में भूषण से मिलने गई थी। भूषण साथियों को पार्टी की नयी 'थीसिज़' समझा रहा था। मनोरमा जो कुछ थोड़ा बहुत सुन सकी थी उसी के आधार पर, कम्युनिस्टों को गालियों से बचाने के लिये उसने यह लेख लिखे थे। और भूषण ही कह रहा है कि यह लेख गलत हैं। मनोरमा ने अपना रूमाल उंगलियों पर लपेटते हुए ओंठ दबा कर कहा—"मैंने तुम्हारी पार्टी के हुक्म से नहीं लिखा जो ठीक जंचा, लिखा है। इससे

बहुत से कांग्रेसी लोग नाराज़ हैं। तुम्हारी पार्टी भी नाराज़ हो सकती है।"—साथ ही उसने कहा—"मैं चाय मँगाती हूँ।"

मनोरमा की रूखाई की अवहेलना करने के लिये भूषण ने पूछा "हां, उसका, सोमा का क्या हाल है और धनसिंह की कुछ खबर मिली ?" एक क्षण सोच कर मनोरमा ने उत्तर दिया—"ठहरो, बुलाती हूं ?" वह पल भर को बराम्दे में गई और लौट आई। भूषण कहता रहा—"इस वर्ष तुम पहाड़ नहीं गई ? बम्बई में यह महीने बहुत खराब बीतते हैं। धर्मशाला की बहुत याद आती थी।"

दो तीन मिनट बाद एक रूपवती भद्र महिला ने सिलाइयों से ऊनकी कोई चीज बुनते हुये कमरे में प्रवेश किया। महिला कलफ़ लगी सफ़ेद साड़ी पहने थी। उसकी मुद्रा अधिकार पूर्ण और निस्संकोच थी। महिला को नमस्कार कर भूषण सोमा की प्रतीक्षा में अपने हाथ के अखबार में कुछ पढ़ने लगा। उसने सुना मनोरमा कह रही है—"पहचाना नहीं, कामरेड भूषण हैं ?" भूषण ने दृष्टि उस ओर उठाई और देखा कि महिला अत्यन्त संकुचित और विक्षिप्त हो गई है। संकोच से उस ने भूषण को नमस्कार किया।

नमस्कार का उत्तर दे भूषण ने असुविधा से मनोरमा की ओर देखा। मुस्करा कर मनोरमा ने उत्तर दिया—"तुम ने भी नहीं पहचाना ?"

"सोमा ?"—विस्मय से भूषण ने पूछा। सोमा का चेहरा कुछ उतर गया। बिना कहे वह उठ कर चली गई। भूषण कुछ पल के लिये मौन विस्मय में रह गया और उस ने पूछा—"धनसिंह कहां है ?" मनोरमा ने संक्षेप में धनसिंह की फरारी की कहानी सुना दी।

भूषण की आंखों में विस्मय भरी मुस्कराहट आ गई—"याद है, एक दिन इस स्त्री का जीवन उसके बिना सम्भव नहीं था। अब यह दूसरी दुनिया में है। शायद तुम्हें याद होगा मैंने कहा था— प्रेम केवल जीवन का सहायक साधन है !"

मनोरमा को बात याद आ गयी; बादल घिरे आकाश के नीचे तेज़ ठन्डी हवा के झोंकों के कारण उड़ते हुये वस्त्रों, वृक्षों के पत्तों की खड़खड़ाहट के कारण शब्दों का कठिनाई से सुना जाना और

फिर भी हृदय का बिंध जाना। यह बात सुन कर वह विवश थकावट से भी चट्टान पर बैठ गई थी! सब याद आ गया। अपनी वह विवशता और भूषण का अपने कार्य के महत्व का अहंकार! मनोरमा ने अनिच्छा से हामी भर ली।

"हो सकता है धनसिंह कभी न लौटे! जान का भय बड़ी भारी चीज़ है और उसे कोई दूसरी औरत मिल गई हो जो जीवन में अधिक सहायक हो!"—भूषण ने विचार प्रकट किया। मनोरमा ने एक तीखी चोट अनुभव कर होंठ दबा लिये। भूषण कहता गया—"यदि धनसिंह आज लौट आए तो शायद यह उसे झेल भी न सके। इसे उससे विरक्ति होने लगे! यह करती क्या है ?" भूषण जिस परिणाम पर पहुँचने के लिये यह तर्क कर रहा था, मनोरमा को भला न लगा। "वह ठीक है, अपना निर्वाह कर रही है।" मनोरमा ने टाल दिया।

उसकी विरक्ति को लक्ष न कर भूषण बोला—"एक अवस्था में आकर जिस किसी से शादी करके निर्वाह कर लेना भी औरत के लिये सम्भव नहीं रहता। शादी न करनी हो तो अपनी जीविका के लिये स्त्री को भी कुछ काम करना ही पड़ेगा। दो ही काम हैं स्त्रियों के लिये हमारे समाज में, अध्यापिका बन जाये या डाक्टर। हां, इसे नर्स का काम सिखा दो! एक बार ठिकाने से बैठ जाय। फिर चाहेगी तो शादी भी कर लेगी।"

धर्मशाला में भूषण द्वारा दिये गये व्यवहारिक प्रेम के उपदेश का प्रसंग आरम्भ हो जाने पर मनोरमा ने समझा सोमा के नाम से यह सब उपदेश उसे ही दिया जा रहा है! भूषण की ओर देखे बिना उसने उत्तर दिया—"क्या चिन्ता करते हो! अनुभव स्वयं राह दिखा देते हैं।" भूषण ने सिगरेट सुलगाते हुये कहा—"मैं तो व्यवहारिक बात कर रहा था।"

मनोरमा को और भी खल गया—"तो तुम्हारे गले तो कोई पड़ता नहीं"—उसके मुख से निकल गया। भूषण चुप रह गया। झेंप छिपाने के लिए उसने मुस्कराने का यत्न कर दो कश सिगरेट से खींचे और उठ खड़ा हुआ—"मैं अभी तीन हफ्ते यहीं हूं। फिर मिलूंगा।" भूषण के विदायगी के नमस्कार के उत्तर में मनोरमा ने मुस्कराहट का पाखण्ड किये बिना चुपचाप हाथ जोड़ दिये।

मन उदास हो जाने पर भी मनोरमा साधारण अभ्यास के अनुसार न तो कोई पुस्तक ढूंढ कर ही पढ़ने लगी और न उसने सोमा को ही बातचीत करने के लिये पुकारा। अब वह उस से क्या बात करती ? वह अनेक प्रकार से सोमा को लेकर ही कई बातें सोच रही थी। क्या वास्तव में भैया से प्रेम करती है ? पहले उसने सोचा था भैया सोमा से प्रेम करते हैं। भाभी से भैया की शादी उसे एक सामाजिक अन्याय ही जंची थी परन्तु इधर चार मास से भैया की मिसेज़ बासू के प्रति अनुरक्ति देख कर मनोरमा ग्लानि से इस परिणाम पर पहुँच गयी थी कि भैया प्रेम को खेल समझते हैं। भाई की इस निर्बलता का उत्तरदायित्व भी उसने भाई के प्रति पक्षपात के कारण अपने माता-पिता पर डाल दिया। इन लोगों ने भैया का विवाह गायत्री से न होने देकर उन्हें इस विषय में अस्थिर बना दिया है।

परन्तु सोमा ?......सोमा धनसिंह से तो प्रेम करती ही थी अब क्या सचमुच भैया से भी उसी प्रकार प्रेम करने लगी है ?... क्या यह सम्भव है ?......क्या हृदय यों बदल सकता है ? ...... या सोमा को आश्रय और कृपा का मूल्य अदा करना पड़ रहा है ?......सोमा अपने आप को देकर आश्रय का मूल्य चुका रही है या प्रेम के मूल्य में ही वह अपने आप को दे रही है ?

सहसा उसके मस्तिष्क में विचार कौंद गया, सभी स्त्रियां आश्रय का मूल्य, प्रेम का मूल्य अपने शरीर से चुकाती हैं। आत्म-निर्भर प्रेम तो वही है जो मूल्य में आश्रय न मांगे। प्रेम के मूल्य में जीवन भर का आश्रय पाया या कुछ रुपये! प्रेम करने का अधिकारी वही है जो आश्रय न माँगे, जो अपने पाँव पर खड़ा हो! भूषण अपने पाँव पर खड़े होने की बात ठीक ही कहते थे। मनोरमा अपने विषय में सोचने लगी, बाइस वर्ष की अवस्था में एम. ए. पास करके भी तो वह अपने पाँव खड़ी नहीं हो सकी। सिद्धान्त रूप से जो बात सोमा के लिये ठीक है वह बात मेरे लिये भी है।

मनोरमा अपने जीवन के विषय में निश्चय कर चुकी थी। केवल आश्रय के लिये वह शादी नहीं करेगी। सोमा उसके सामने थी। जाने या अनजाने में सोमा और क्या कर रही है ? परन्तु सोमा इसे अत्याचार के रूप में तो नहीं सह रही! कानूनी और

सामाजिक अधिकार उसे चाहे न हों लेकिन भाबी की अपेक्षा भैया के लिये सोमा कहीं अधिक संतोष का कारण है। अब मनोरमा के मन में सोमा के लिये आदर समाप्त हो चुका था, केवल करुणा रह गई थी। वह स्वयं कभी सोमा की स्थिति में रहने की कल्पना भी सहन न कर सकती थी। स्वयं ही वह तर्क करने लगी, समाज चाहे जो कहे लेकिन समाज के पास सोमा की स्थिति का समाधान क्या है? क्या सोमा का कोई मित्र भी नहीं हो सकता? भैया का और उसका सम्बन्ध और क्या है? लेकिन सोमा भैया के टुकड़ों पर है। यदि इतनी बात न होती तो सोमा समाज को मुंह तोड़ उत्तर दे सकती।

सन्ध्या समय उसने सोमा को अपने कमरे में बुला लिया। भूषण से सहसा मिलने पर सोमा को अपने अतीत की स्मृति से जो मानसिक आघात लगा था उसका प्रभाव अभी कुछ शेष था। दोनों ही उदास थीं। सोमा अब संकोच से ज़रा पीछे हट कर नहीं बैठती थी और न मूक रह कर सुनती रहती। अब वह अपनी समझ के अनुसार बातचीत में प्रत्युत्तर देती थी। मनोरमा ने कहा "धनसिंह का क्या पता है; अब आये न आये? कौन जानता है, जिन्दगी किसे कहां ले जाती है?" सोमा गहरी सांस भर चुप रह गई। मनोरमा कहती गई, "लेकिन लम्बी उम्र काटने के लिये कोई साधन तो आदमी के पास होना चाहिये।" उसने स्वयं जीविका के लिये जो प्रयत्न करना चाहा था। उसमें पिता जी द्वारा डाली बाधा पर खेद प्रकट किया और सोमा को सलाह दी—"तुम नर्स का काम क्यों न सीख लो! सुना है विद्या कौल नर्स का काम कर रही है। महीने में ढ़ाई-तीन सौ कमा लेती है।" सोमा ने उत्तर दिया—"ठीक है भैन जी, परन्तु औरत ने मज़दूरी करके पेट भरा तो क्या जिन्दगी है? औरत तो घर सम्भालती ही भली लगती है।"

मनोरमा चुप रह गई। वह कैसे कहती कि यह घर सम्भालने का हक़ तुमको नहीं है। यही बात सोमा ने मनोरमा के नौकरी करने का विरोध करने के लिये कही थी। सोमा आज उसके लिये और अपने लिये एक ही नियम और बात समझने लगी है। अपने आपको दीन समझने का विश्वास उसके मन से दूर हो गया है। मनोरमा क्या कहे?

मनोरमा को लिखने की ओर रुचि थी। उसने कुछ कहानियाँ भी लिखी थीं और लेख भी। उसके विचार में लेखक का जीवन आदर्श था, जिसमें कीर्ति, निर्वाह का साधन, धन और आत्म-संतोष सभी कुछ था। बैरिस्टर ने मनोरमा से लिखकर निर्वाह करने की महत्वाकांक्षा की बात सुनी तो हंस कर उत्तर दिया था—"यदि तुम इस देश में लिख कर जीविका कमा सकोगी तो तुम रवि ठाकुर बन जाओगी।" मनोरमा इस परिहास से हतोत्साह नहीं हुई थी। भूषण की बात ने उसका दिल तोड़ दिया; क्या मैं इतनी नासमझ हूं कि जन विरोध की परवाह न कर जिस बात का समर्थन करने के लिये लिखूं, उसे ही धक्का पहुँचाऊं! इससे अच्छा है न लिखना! और मैं इन लोगों की ओर से क्यों लिखूं? अन्याय की इस अनुभूति में उसने जैसे हथियार डाल दिये। सोचा लेखक बनने की महत्वकांक्षा को स्थगित कर अपने निर्वाह के लिए वह अध्यापिका का ही काम कर ले! किसी से राय लिये बिना उसने दो स्थानीय महिला कालिजों में नौकरी के लिए प्रार्थना पत्र भेज दिये।

चन्दे से चलने वाले किसी भी कालिज के लिये लाला ज्वाला-सहाय की लड़की का अपनी संस्था से सम्बन्ध सुअवसर था। मनोरमा को १५०) मासिक पर पढ़ाने के लिए निमंत्रण मिल गया। सबसे पहिले बैरिस्टर ने ही विरोध किया—"तुम्हें पढ़ाने का शौक है या समय नहीं कटता तो अवैतनिक काम कर लो! तुम्हारा नौकरी करना लाला जी को कभी सह्य नहीं हो सकता।" मनोरमा ने विरोध का सामना किया—"यह आपका श्रेणी अहंकार है। पढ़ा कर जीविका कमाना तो लज्जा का काम नहीं है।" बैरिस्टर ने स्वीकार किया—"श्रेणी है तो उसके प्रभाव भी रहेंगे। इस महिला कालिज से तुम साल में १८००) तनखाह पाओगी। लाला जी उसे ५०००) वार्षिक सहायता देते हैं। यह परिहास नहीं तो क्या है? तुम लालाजी के आत्म-सम्मान पर चोट कर अपना आत्म-सम्मान बनाना चाहती हो!" बैरिस्टर के धर्मशाला को लिखे पत्र उत्तर में लालाजी और माँ जी का भी विरोध भरा पत्र आया। मनोरमा ने होंठ काट कर दबा लिये। आंखों में आंसू आ गये परन्तु उसने आंसुओं को गिरने नहीं दिया।

मेजर बासू और मिसेज़ बासू मंसूरी गये हुये थे। एक मिलिटरी ठेके के सम्बन्ध में जगदीश को मेजर बासू से मिलना आवश्यक था। जगदीश ने मनोरमा से कहा—"दसहरे की छुट्टियां हैं। इस वर्ष हम लोग कहीं पहाड़ नहीं गये। एक सप्ताह के लिये मंसूरी क्यों न हो आयें ?"

लाहौर की कोठी में मनोरमा के लिये विरक्ति के अतिरिक्त अनुरक्ति का कोई कारण न था। सोमा से वैसे भी वह क्या बात करती और अब सोमा घर भर को सम्भालने का अधिकार और संतोष ले प्रायः आत्मतुष्ट थी। बात करने का अवसर या प्रवृत्ति उसे बहुत कम थी। भाभी के चारों ओर नर्सों और डाक्टरनियों का वातावरण था—एक नये जीव के आने की तैयारी के उत्साह की अपेक्षा असुविधा और चिन्ता ही अधिक जान पड़ रही थी। सहेलियों के प्रति अधिक आकर्षण मनोरमा को पहले भी न था। अब उसे उनसे मिलने में संकोच होने लगा। उसकी सभी समवयस्काओं के विवाह हो चुके थे। अब वे कुछ बुजुर्गी की मुद्रा लेकर मनोरमा से बात करतीं और मनोरमा का विवाह अब तक न होने के प्रति कुछ करुणा-दिखातीं—जैसे मनोरमा परीक्षा में फेल हो गई हो! लाहौर से कुछ दिन के लिये बाहर जाने का प्रस्ताव उसे बहुत भला लगा।

* * *

हैदरजी सुतलीवाला से बैरिस्टर जगदीश का परिचय विलायत से लौटते समय बम्बई में हुआ था। इसके कुछ ही दिन बाद सुतलीवाला अपने शेयरों के व्यवसाय के सम्बन्ध में एक सप्ताह के लिए लाहौर आये थे और बैरिस्टर के अतिथि बन कर रह गये थे। लौट कर उन्होंने बैरिस्टर और मनोरमा को धन्यवाद के सहृदयता पूर्ण पत्र लिखे थे। जगदीश की सुतलीवाला से पर्याप्त आत्मीयता हो गई थी और मनोरमा भी सुतलीवाला को विशेष सज्जन और सहृदय व्यक्ति समझती थी। बीच के समय में अनावश्यक पत्र व्यवहार न हुआ परन्तु मंसूरी के एक ही होटल में सहसा एक दूसरे को पा तीनों ही उल्लसित हो उठे।

मेजर और मिसेज़ बासू होटल सेवोय में ठहरे थे। जगदीश

और मनोरमा भी वहीं ठहरे। इसी होटल में हैदरजी सुतलीवाला भी ठहरे थे। मेजर बासू का समय प्रायः अंग्रेज़ अफ़सरों की संगति में कटता। जगदीश का समय मिसेज़ बासू की संगति में। मनोरमा को सुतलीवाला का साथ मिलता। केवल विनोद और विश्राम के लिए मंसूरी आये हुए लोगों की भाँति सुतलीवाला के लिये प्रत्येक समय विनोद का हो न था। वह मंसूरी में इकट्ठे हुए अमीर आदमियों के समारोह में अपना पत्तो-विक्रो (शेयर की दलाली) का व्यवसाय करने आया था। शेयर खरीद सकने वाले अमीर आदमियों को भोजन पर निमंत्रित करना और उनके निमंत्रण स्वीकार करना भी सुतलीवाला के व्यवसाय का अंग था। फिर भी सुतलीवाला मनोरमा के साथ घूमने और भोजन में सम्मिलित होने का अवसर निकाल लेता।

जगदीश सुतलीवाला से आत्मीयता से बात करता था और उसके सामने ही मनोरमा के उग्र समाजवाद या कम्युनिज्म का मज़ाक करने से भी न चूकता। सुतलीवाला का परिचय कम्युनिज्म और सोशलिज्म की पेचोदा भाषा से न होने पर भी वह सोशलिज्म की भावना के प्रति सहानुभूति प्रकट करता था। वह अपना ही उदाहरण देकर कहता—"मैं पूंजी के शोषण के अत्याचार से कैसे इनकार कर सकता हूँ ? मैं स्वयं पूंजी एकत्र करके पूंजीपतियों को दे रहा हूं। पूंजपतियों के इसे लाभ में मेरा अंश या मेहनताना कितना होगा ? पूंजीवाद का सबसे बड़ा शत्रु स्वयं पूंजीवाद है। यह संचय और अधिकार की प्रवृत्ति पूंजीपतियों की संख्या कम करती जा रही है। बड़े पूंजीपति के मुकाबिले में छोटा पूंजीपति मिटता जा रहा है। पूंजीवाद के विरोधियों की संख्या बढ़ती जा रही है।"

सुतलीवाला मनोरमा की सुविधा और पसन्द का विशेष ध्यान रखता था। उसके साथ रहने पर यदि अजाने में अभ्यासवश सिगरेट मुख में ले भी लेता तो उसे सुलगाये बिना लौटा कर रख लेता। मनोरमा ने कई बार कहा भी—"तम्बाकू का धुआँ सूंघने का मुझे काफ़ी अभ्यास है। मुझे उससे कुछ असुविधा नहीं होती। आप पीजिये।" परन्तु सुतलीवाला का उत्तर था—"अधिक नहीं तो इतना तो मुझे आप के प्रति करना ही चाहिये कि जो चीज़

आवश्यक नहीं है उसे आप के खयाल से रहने दूं।" आखिर एक बार सुतलीवाला के भूल से सिगरेट होंठों में लेकर लौटाते समय मनोरमा ने स्वयं दियासलाई जला कर कहा—"अच्छा, मैं कहती हूँ आप पीजिये, कहने से ही सही।"

जगदीश सुतलीवाला की सौजन्यता, व्यवहार कुशलता और सभी बातों की प्रशंसा करते थे। मनोरमा जगदीश के अभिप्राय के प्रति मन में शंका कर रही थी। मंसूरी से चलने से एक दिन पहले जगदीश ने स्पष्ट ही उससे पूछा—"सुतलीवाला के बारे में तुम्हारी क्या राय है? उसने मुझसे स्पष्ट बात तो नहीं की लेकिन कुछ संकेत अवश्य किया है। मेरे विचार में यह बात बहुत उचित होगी। मैं जानता हूँ, पिताजी और मां जी विरोध करेंगे लेकिन तुम्हारे भविष्य से खिलवाड़ नहीं किया जा सकता। सोच देखो!" उस समय तो मनोरमा ने सिर हिला दिया परन्तु सोचा भी—भूषण और सुतलीवाला? दोनों दो भिन्न संसारों के व्यक्ति हैं। सुतलीवाला बहुत सज्जन और सुस्वरूप है। भूषण में भी साधारण मनुष्य के अतिरिक्त और कुछ भी है। इस तुलना से वह उदास हो गई। सुतलीवाला को अभी मंसूरी में सप्ताह भर और रहना था। जगदीश और मनोरमा लाहौर लौट आये। मनोरमा और सुतलीवाला की विदाई बिना किसी अर्थ पूर्ण संकोच के ही हुई।

* * *

मनोरमा उसी दिन सुबह मंसूरी से लौटी थी। संध्या समय वह बाहर के कमरे में बैठी अपना एक स्वेटर ठीक कर रही थी। बरामदे में अपनी ओर बढ़ती आहट सुन उसने आँखें उठा कर देखा भूषण था और उसके साथ उनके कालिज में पढ़ाने वाली सुखदा, खद्दर की साड़ी पहने। पिछली मुलाकात के समय भूषण से हुई रुखाई को धो डालने के विचार से मनोरमा ने उन्हें विशेष स्वागत से बैठाया। भूषण गम्भीर था—"मुझे विश्वास है तुम मेरा आशय अन्यथा न समझोगी।"—भूषण बैठते हुए बोला। सुखदा की उपस्थिति में यों बात आरम्भ होने से मनोरमा कुछ चौंकी—"तुम कालिज में अवैतनिक काम कर रही हो?"—भूषण ने पूछा। मनोरमा ने हामी भरी।

"तुम्हारे अवैतनिक काम करने का परिणाम यह है कि इसहरे

की छुट्टियां आरम्भ होने के दिन कालिज-कमेटी ने सुखदा को एक मास में नौकरी समाप्त कर देने का नोटिस दे दिया है। उनका काम मुक्त हो तो वे एक आदमी को व्यर्थ तनखाह क्यों दें ?" मनोरमा खेद प्रकट करने के लिये बोलना ही चाहती थी परन्तु भूषण बोलता गया-"तुम्हारा तो केवल शौक पूरा हो रहा है। इस बेचारी की रोज़ी जा रही है। यह 'वैकाई' में भी नौकरी नहीं कर सकती क्योंकि पुलिस जानती है कि इसके दोनों भाई पार्टी मेम्बर हैं और पूरा समय पार्टी का काम करते हैं।

मनोरमा ने सुखदा की ओर देख कर उत्तर दिया—"आप चिन्ता न कीजिये ! यह अन्याय नहीं होने दूंगी। मैं अभी फौरन कालिज सेक्रेटरी को काम न कर सकने का नोटिस भेज देती हूँ और उसमें साफ़ लिखूंगी कि आपके प्रति अन्याय के विरोध में काम छोड़ रही हूँ।" भूषण ने सुखदा की ओर देखा—"बस ! अब तुम जा सकती हो।"

मनोरमा ने टोका—"वाह, इतनी जल्दी क्या है ? बैठिये !" "उसने सुखदा की ओर देखा—"चाय मंगाऊं ?" भूषण ने सुखदा की ओर से उत्तर दिया—"जाने दो, एक आवश्यक काम है।" सुखदा चली गई।

संतोष और उत्साह से भूषण बोला—"तुम्हें अवैतनिक ही काम करना है तो कुछ और अधिक उपयोगी काम क्यों न करो ! एफ० ए० की लड़कियों को पढ़ाने का काम तो कोई भी बी० ए० पास लड़की या औरत कर सकती है। तुमने बहुत काफ़ी अध्ययन किया है, तुममें प्रतिभा है।"

"तुम्हीं बताओ क्या करूं ?"—विवशता से मनोरमा ने पूछा।

"मेरे विचार में तुम्हारे लिये लिखने से अच्छा दूसरा काम नहीं है।"

"क्या लिखूं ?...... रोज़ रोज़ क्या लिखूं ?"

"प्रान्तीय पार्टी ने एक साप्ताहिक पत्र निकाला है। तुम अपना समय उस में दो !"—भूषण आत्मीयता के अधिकार से बोला।

परन्तु मैं पार्टी लाइन ठीक से समझती नहीं"—मनोरमा के स्वर में कटुता नहीं थी।

"साधारणतः तुम समझती हो"—भूषण ने उत्तर दिया—"परन्तु नित्य की समस्याओं का परिचय उनके आन्तरिक परस्पर सम्बन्धों सहित न होने के कारण तुम्हारे दृष्टिकोण से अनेक पहलू छूट भी जा सकते हैं या उनका अनुपात ठीक नहीं हो पाता। वस्तुओं का अनुपात बदलने से चीज़ ही बदल जाती है। ईंट, पत्थर और सीमेंट से मीनार बन सकती है और कुँआ भी बन सकता है। दूसरे आदमी भी पत्र में काम करेंगे। सम्पर्क में आते रहने और विचार में सहयोग होने से वह बात क्यों होगी? कामरेड जावेद तुम्हारे साथ काम करेगा।"

"मैं तैयार हूँ, कब से आऊं मैं?" मनोरमा ने आग्रह से पूछा।

"कल सुबह नौ बजे से! इस सप्ताह का पत्र तैयार हो रहा है। कुछ हो भी गया है।"—भूषण ने उत्तर दिया।

मनोरमा कालिज छोड़ पार्टी आफिस जाने लगी। उसके घर से मैक्लोड रोड काफ़ी दूर थी इसलिये मनोरमा घर से बैरिस्टर के साथ गाड़ी में जाती। बैरिस्टर साहब कचहरी में या अपने कारोबार के दफ्तर में उतर जाते और ड्राइवर बरकत मनोरमा को मैक्लोड रोड की ओर ले जाता। मनोरमा गाड़ी से प्रायः चौराहे पर ही उतर जाती और शेष चालीस-पचास कदम पैदल जाती। लौटते समय टांगे पर आ जाती। गाड़ी को वह प्रायः पार्टी आफिस में न ले जाती। उन फटेहाल नौजवानों की संगति में वह चमचमाती, बड़ी सी कार बेमौका और संकोच का कारण मालूम होती।

एक-एक लेख लिखने के लिये कमेटी में लम्बी बहसें होतीं। का० जावेद पार्टी के इन निर्णयों के अनुसार लिखता और मनोरमा को भी वैसे ही लिखने का आदेश करता। मनोरमा उस से बहस करती। जावेद उसे प्रायः ही उत्तर देता—"कामरेड तुम अभी तक १६३६ और १६४० की लाइन पर सोच रही हो। यह १६४४ है।" यह लिखना मनोरमा की कल्पना में लिखने के आनन्द और संतोष के अनुरूप न था। इसमें उच्छ्वास की पूर्ति का संतोष नहीं केवल निर्देश का पालन ही था।

पांचवें अंक के समय अखबार में पृष्ठ बढ़ाने का विचार पेश होने पर पार्टी के सामने समस्या आ खड़ी हुई। पार्टी के अकाउण्टेंट ने आपत्ति कर दी कि पिछले मास अखबार की तीन हजार प्रतियां

साप्ताहिक छापने में साढ़े पांच सौ रुपये से अधिक खर्च हो चुके हैं। उसने हिसाब सामने रख दिया १३०) छपाई के १२०) ब्लाकों की बनवाई २५०) कागज़ और ८०) डाक खर्च, ४५) कामरेड जावेद, जगराम और नरसिंह की मज़दूरी। कामरेड मनोरमा मज़दूरी नहीं लेती। दो सौ कापी प्रचार के लिये मुफ्त देनी पड़ती हैं। कायदे से तो ४०) बच जाना चाहिये था लेकिन जिलों में जो कापियां जाती हैं उनका पैसा नहीं आया। बिक्री का कुल ३००) मिला है। आप खर्च और बढ़ाना चाहते हैं। मैं कहां से पैसा दूं? मुझे अखबार फन्ड में आप लोगों ने १०००) दिया है। इस हिसाब से बस एक महीना अखबार और निकलेगा। तय हुआ कि कीमत न बढ़ाकर और फण्ड इकट्ठा किया जाय। जिलों में सर्कूलर भेजे जायं।

जगराम ने हिसाब में ४५) के खर्चे पर आपत्ति की। जावेद, नरसिंह और उसका खर्चा अखबार के नाम क्यों डाला गया। वे लोग दूसरे फ्रंट पर भी तो काम करते हैं। मनोरमा को सबसे तीखी बात लगी सम्पादक और मैनेजर की तनखाह १५-१५)! स्वयं उसके महीने भर काम की मज़दूरी १५)। उस काम की मज़दूरी पन्द्रह रुपये जो समाज और देश की रक्षा के लिये और समाज की और देश की व्यवस्था बदलने के लिये किया जा रहा है। उसके अखबार के प्रतिद्वन्दी अखबारों में इस काम के लिये १५०) से १५००) तक मज़दूरी होगी और वे इतना समय, इतने परिश्रम से काम कर नहीं सकते! एक गर्व से उसका सीना फूल उठा।

मनोरमा को भाइयों से त्योहारों पर काफ़ी रुपया मिलता था। आवश्यकता होने पर और भी मिल जाता। वह सब रुपये उड़ा देती थी। पिछले वर्ष से मन की स्थिति गम्भीर हो जाने के कारण उसने कोई नया कपड़ा या चीज़ नहीं खरीदी थी। पिछली ही चीज़ें इतनी पड़ी थीं। कई साड़ियां तो वह सोमा को दिखा कर कह चुकी थी "बहिन तू ही पहन ले, तुझे पसन्द हैं। मुझे अब अच्छी नहीं लगतीं।" उसके पास २००) थे। उसने लाकर अखबार फण्ड में दे दिये।

मनोरमा ने अपनी मेज़ पर एक पत्र खुला पड़ा पाया। पत्र भाई के नाम था परन्तु उसकी मेज़ पर रखा जाने का अभिप्राय था कि वह भी पढ़ ले। पत्र सुतलीवाला का था। बहुत संगत भाषा

में मित्र की बहिन से विवाह का प्रस्ताव था। मनोरमा पत्र को पढ़ धड़कते हुये हृदय से पलंग पर लेट गई। मुंदी आंखों के सामने सुतलीवाला और भाई से सुने बम्बई के वर्णन और सिनेमा में देखे चित्र तैरने लगे। भाई को उसने उत्तर नहीं दिया परन्तु वह बात प्रतिक्षण मन और कल्पना में रहती। पार्टी के अखबार में काम करने जाती और सोचती रहती कि इसका उससे क्या मेल होगा? परन्तु पार्टी के अखबार का काम तो जीवन का स्थायी काम नहीं है। यह भी ख्याल था कि बैरिस्टर भैया तो परम्परा और रूढ़ि कुछ नहीं मानते परन्तु पिता जी, माता जी और दूसरे दोनों भाई क्या यह स्वीकार करेंगे? उसके लिए जीवन में जो भी मार्ग दिखाई देता है, द्वार पर ही ताला लग जाता है।

* * *

बैरिस्टर साहब की तीसरी सन्तान के जन्म के समय न तो मां जी धर्मशाला से आसकी थीं और न कलकत्ता और कराची से दोनों भाबियां। युद्ध के कारण व्यापार की स्थिति ऐसी थी कि किसी का भी अपने कारोबार की गद्दी से एक दिन के लिये भी हिलना हज़ारों लाखों पर पानी फेर देता परन्तु लड़के के नामकरण के समय सभी लोग आए। सबसे पहले मां जी ही आईं।

मां जी के गाड़ी से उतर घर के भीतर जाने पर सोमा ने भी उनके पाँव छुये। उन्होंने आशीर्वाद तो दे दिया परन्तु दबे स्वर में मन्नो से पूछा—"यह कौन है मन्नो?......और धनसिंह की बहू सोमा कहाँ है?" बहू और मन्नो के लाहौर से जाने वाले पत्रों में बार-बार सोमा की प्रशंसा सुनकर कर उन्होंने मन में कई वायदे किये थे कि लाहौर आकर वे उसे बहुत इनाम देंगी।

मन्नो ने हंसकर उत्तर दिया —"वाह, पहचाना नहीं मां जी, सोमा ही तो है?"—घर में सोमा का अधिकार और शासन देख उन की सफ़ेद केशों से ढंकी खोपड़ी में विकलता तो हुई परन्तु मन ही मन, 'देखो!' कह कर रह गईं। तीसरे दिन और लोग भी आ पहुँचे, कोठी भर गई। सोमा को देख सभी आने वाले पूछते—"यह कौन है?" और फिर कहते—"नौकरानी या मालकिन!"

सोमा स्वयं भी यह अनुभव कर रही थी और यथासम्भव सिमिट-सिमिट कर चल रही थी परन्तु वह फिर से पुरानी चीज़ कैसे बन जाती ? साहब से बात करने का समय ही न मिलता था। पल भर के लिये मिली तो कहा—"लोग मुझे सह नहीं रहे हैं, कुछ दिन के लिए कहीं भेज दो !" साहब ने होंठ सिकोड़ कर उत्तर दिया —"उंह, डैमिट ! (भाड़ में जायें लोग) !"

बैरिस्टर साहब ने पुत्र जन्म की खुशी में भाबियों, मिसेज़ सरोला, मन्नो सभी को उपहार के लिये साड़ियाँ खरीदने का निश्चय किया था और यह काम उन्हों ने सौंप दिया था मनोरमा को। मनोरमा भाबियों से, खास तौर पर बड़ी भाबी के स्वभाव से डरती थी। उस पर पक्षपात और स्वार्थ का आरोप न लगाया जाय, इस विचार से उसने सभी के लिये एक दाम की, एक ही रंग की, एक ही किनारे की साड़ियाँ खरीद लीं। मन में सोचा—सब एक सी ही साड़ियां पहनेंगी तो लोगों के लिये तमाशा भी होगा और कुछ तो समता जान पड़ेगी।

साड़ियाँ सब से पहले आईं बड़ी भाबी (मिसेज़ कृष्णसहाय) के सामने। मन्नो और मिसेज़ बैरिस्टर भी मौजूद थीं। सभी साड़ियाँ एक सी देख यों ही बड़ी भाबी को सुहाया नहीं। उन्हों ने कहा—"अरे, तुम लोग अपने चाव पूरे करो, हमने तो बहुत ओढ़-पहन लिया। अब क्या है, इस उम्र में !" और फिर साड़ियों के रंग और किनारे देखते समय उनकी गिनती भी हो ही गई। "यह पाँच साड़ियाँ क्यों ?"—उन्हों ने पूछा।

"सोमा के लिये भी होगी न !"—मिसेज़ सरोला ने धीमे से कहा।

बड़ी बहू के माथे पर तेवरियाँ पड़ गईं। समीप खड़ी अपनी छोटी लड़की को उन्हों ने हुक्म दिया—"जगदीश को बुलाओ !"

बैरिस्टर साहब ने आकर पूछा—"क्या है भाबी ?"

मिसेज़ कृष्णसहाय ने पाँचों साड़ियाँ उठा कर उनके ऊपर फेंक दीं। "मैं क्या तुम्हारी नौकरानी हूँ ? तुम मेरे लिये अपनी नौकरानी के साथ की साड़ी लाये हो ? तुम्हारी यह मजाल.........?"

क्रोध में बड़ी बहू उचित-अनुचित भूल गई। बकती गई—"कमाने के नाम पर एक पैसा कमाने की हिम्मत नहीं। दूसरों की कमाई पर गुलछर्रे उड़ायें और उन्हीं की बेइज़्ज़ती करें ?"

बैरिस्टर साहब का भी खून खौल गया। बड़ी भाबी ऐसी बेहूदगी पहले भी कई बार कर चुकी थीं और जगदीशसहाय को चुपचाप सहनी पड़ती थी परन्तु अब अवस्था दूसरी थी। भाबी की ओर क्रोध भरी निगाह डाल उन्हों ने कहा—"कौन है मुझे खिलाने वाला ? अपने घर में जैसा चाहूँगा दूंगा, लूंगा। किसी का नौकर नहीं हूँ। ज़बान सम्भाल कर बोलो !" कोठी में कोहराम मच गया। माँ जी और मंझली बहू भागी हुई आईं। भद्र महिलायें अस्त-व्यस्त अवस्था में हाथ उठा-उठा कर, चिल्ला-चिल्ला कर बोलने लगीं। नौकर दरवाज़ों की आड़ में खड़े हो सुनने लगे। केवल सोमा नहीं आई। वह झगड़े के आरम्भ में ही जाकर अपने कमरे में दुबक गई थी।

समय देख नौकरों की भी ज़बानें खुलने लगीं। उनके भी बयान लिये जाने लगे। उस समय जो न कहा गया वही ग़नीमत। बड़ी की आवाज़ बार-बार कड़क उठती थी—"इसी बेइज़्ज़ती के लिये हमें बुलाया गया है। बड़े इल्मवाले बनते हैं।"

माँ जी की आवाज़ भी सुनाई देती—"हाय मैं दूर पड़ी क्या जानती थी कि यह सब हो रहा है ?"

छोटी बहू के भारी शिथिल शरीर से निकली महीन आवाज़ भी सुनाई देती—"हाय मैं सीधी-सादी क्या जानती थी कि मेरी ही जड़ों पर कुल्हाड़ियाँ चल रही हैं ? मनोरमा ने दो-एक बार अपनी विद्या के अधिकार से समझाने की चेष्टा की और साड़ियां खरीदने की ज़िम्मेवारी अपने ऊपर ली परन्तु बड़ी बहू ने फटकार दिया—"बनने को तो अधेड़ उम्र तक कुआरी बनती हैं लेकिन दुनिया के सब चरित्रों में दखल है। शर्म नहीं आती भाई की दूती बन रही है। एक दूसरे के कर्मों पर पर्दा डाल रहे हैं।...जो चाहे करो ! हमारी मिट्टी क्यों खराब कराते हो ?"

मन्नो पड़ोस की कोठी में एक सहेली के यहाँ जा बैठी। फिर भी संग्राम शान्त हुआ न देख अपने कमरे का दरवाजा बन्द कर

एक पुस्तक पढ़ने लगी। झगड़ा बहुत बढ़ गया। कृष्णसहाय पिता जी के पास पहुँचे और जगदीश सहाय को भी बुलवाया। ऊधम-सिंह उन्हें बुलाने पहुँचा तो देखा कि वे स्वयं गाड़ी चलाते हुये कोठी से जा रहे थे।

जगदीश ने बाहर सड़क पर आकर सोचा—कहां जाये ?…… क्लब ? ऐसी मनोवस्था में किसी भी आदमी से ठीक से बातचीत करना सम्भव न था। वे माल रोड पर गए और एक सूने बार में जा बैठे। जैसे सामने मेज़ पर रखा ह्विस्की मिला सोडे का गिलास बुदबुदा रहा था वैसे ही उनके मन की अवस्था थी………कैसे जाहिलों से वास्ता पड़ा है !… …दो सौ रुपए की साड़ी इनकी नज़रों में इसलिये गिर गई कि नौकरानी के लिये भी उसी के साथ की साड़ी ली गई है।…वाह रे अहंकार !

मानसिक उत्तेजना की अवस्था में जगदीश ने डबल पेग का आर्डर दिया था। क्रोध में गला सूखता अनुभव होने के कारण गिलास को सोडे से भी पूरा भर लिया था। तीन चार घूंटों में ही गिलास आधा हो गया। जगदीश को कल्पना में बड़ी भाभी सामने खड़ी दिखाई दे रही थीं। जो कुछ वह कोठी में नहीं कह सका था, अब परिणाम का भय न होने के कारण कल्पना में कह डालना चाहता था—"नौकरानी ? क्या तुम्हारी नौकरानी है ?…आइना लेकर नौकरानी के मुकाबिले में ज़रा अपनी शक्ल तो देखो !

तुम्हारे पास ऐसी कौन अधिक या बेहतर चीज़ है ? तुम्हारे माँ-बाप ने तुम्हारे लिये एक मर्द फंसा दिया है नहीं तो तुम्हें कोई बर्तन धोने को भी न पूछता। पैसे का गुरूर है ? जैसे और कोई पैसा बनाना ही नहीं जानता ! अब तक ख्याल नहीं किया, नहीं किया। अब देखेंगे ?… यह मेरा घर है। तुम फैसले और हुक्म देने वाली कौन होती हो ? मुंह लगना है, अपने आदमी के मुंह लगो ! तुम्हारा लिहाज होगा उसे ! मुकाबला करने चली है सोमा से ? कहाँ गोबर का चोथ, कहाँ हाथी दांत का खिलोना !…बड़ी सती बनती है ! अरे तुम्हें पूछता ही कौन है ?……वाह रे श्रेणी अहंकार !" जगदीश को मनोरमा के नौकरी करने की बात पर घर में हुआ झगड़ा याद आ गया। उस समय उसने श्रेणी स्थिति का समर्थन किया था। वह सोचने लगा, कितना अन्याय है इन

लोगों का मुझ पर ! मुझे अपने विचारों के विरुद्ध आचरण करना पड़ता है। इन लोगों को सामाजिक चोरी से इकट्ठे किये हुये रुपये का इतना गुरूर है ! ग़रीब इनसे दबते हैं, पर मैं क्यों दबूं ? जो कुछ इनकी करतूत है, वही मैं भी करके दिखा सकता हूँ बल्कि इनसे अधिक, इनके तो दिमाग़ भी नहीं है !

शेष आधा गिलास समाप्त कर जगदीश ने घड़ी देखी सात ही बजे थे। इस जगह अकेले और बैठे रहना सम्मानजनक न था। वह उठा, बाहर आ गाड़ी ले नहर के किनारे से माडल-टाउन होते हुए दस एक मील का चक्कर ठंडी हवा में लगा फिर दूसरे बार-रेस्टोरां वलेरियो में जा बैठा। अकेले ही बैठ कर जगदीश ने फिर ह्विस्की के एक पेग के लिये आर्डर दिया। कोठी जाने की न इच्छा थी न साहस था। जगदीश ने खाना भी वहीं खाया। खाने के बाद वलेरिया में नाच शुरू हो गया। उस रात लेट नाइट डांस (आधी रात से बाद तक का नाच) था ! जगदीश ने विलायत में नाच सीखा था। प्रायः नाच में दिलचस्पी भी लेता था परन्तु उस समय वह एक ओर बैठा रहा। उसकी निगाहें नाच की ओर थीं परन्तु मन अपनी समस्याओं में ! आरकेस्ट्रा पर नाच की गत बज रही थी। नाच के समय लाल प्रकाश हो जाता। एक नाच समाप्त होकर दूसरा आरम्भ होने से पहले दो मिनिट के लिये श्वेत प्रकाश रहता। प्रायः सब लोग नाच की पोशाक में थे, पुरुष काले सूट पहने हुए और स्त्रियां रंग-बिरंगी पोशाकों में। मेमें कंधों से नीचे दूर तक शरीर को दिखाते हुये गाउन पहने थीं और भारतीय महिलायें साड़ियां। उनकी पीठें उघड़ी हुई थीं, रीढ़ की नाली गहरी होती हुई तंग कमर में जा छिपी हुई। बाहें, कंधे और छातियां दोनों स्तनों के अलग-अलग आरम्भ होने के स्थान तक उघड़े हुए। भारतीय महिलाओं के ऊंचे ब्लाउज से पेट भी झलक मार जाता था और यूरोपियन महिलाओं के स्कर्ट बगलों में खुले होने के कारण पिंडलियां झलक जातीं थीं। इनमें से किसी की भी त्वचा का वास्तविक रंग दिखाई न देता था। सब पाउडर से ढंकी हुई थीं। उनके होंठ, भवें सब नकली, विलायत से आई बोतलों के पदार्थों से बने हुए थे। जगदीश को यह दृश्य नाच के लिये उत्तेजित कर देता था परन्तु उस समय उसका मन न उठा। मन ही मन वह उनकी तुलना

कर सोच रहा था—सोमा इन सबसे कितनी अच्छी है ? काश वह उसे यहाँ लाकर इन लोगों को दिखा सकता !

मिसेज़ गुर्टू ने उसे यों अकेले बैठे देख पूछा भी क्या बात है। मिसेज़ वाइलो ने भी उसे नाचने के लिये निमंत्रित किया परन्तु वह ड्रेस ठीक न होने और तबीयत गिरी होने की बात कह, बैठा रह गया। उसने सिगार सुलगा लिया और एक पेग ह्विस्की और मंगा कर सामने रख लिया। वह अपनी झुंझलाहट और उलझन की ही बात सोच रहा था, किस मुसीबत के साथ मेरी शादी कर दी। उसे साथ लेकर कभी भली सोसायटी में भी नहीं जा सकता। स्त्री है या मांस-पिंड ? सोमा होती तो वह अच्छी से अच्छी महफिल में रानी जान पड़ती।......जाने यह लोग कितने दिन ठहरेंगे और उसे कितना परेशान करेंगे ? मैं इन लोगों की क्या परवाह करता हूँ ? परन्तु कोठी पर लौटने का साहस अब भी उसे न हो रहा था। अभी दस ही बजे थे।

नशे के बोझ से जगदीश को लेटने की इच्छा हो रही थी। नशे की विवशता में उसके शरीर को ममता से सम्भाल कर सोमा जो सुख देती थी, उसका अभाव खटक रहा था परन्तु कोठी लौट जाने का साहस न बनता था। वह अपने प्रति ग्लानि अनुभव करने लगा—मैं मूर्खों और कुसंस्कारों में फंसे मिथ्याभिमानी लोगों से डरता हूं !......सोमा इन लोगों के अत्याचार में पिस जायगी !—पूरा समाज पिस रहा है। प्रकट में स्वतंत्र होकर भी मैं पिस रहा हूं !......इस व्यवस्था की असंगति और खोखलेपन को समझता हूँ परन्तु असमर्थ और निर्बल हूँ ! मेरे समझने का लाभ क्या ? ......लेनिन ने ठीक कहा है—"कर्म बिना सिद्धान्त मिथ्या और निष्फल है।" मैं केवल विचारक हूँ, कर्मठ नहीं। नहीं तो समाज को बदल देता। मैं कितना निर्बल और निकम्मा हूँ ? दुख है कि मैं समझता हूँ !

रात के दो बजे नाच समाप्त होने पर जगदीश कोठी पर लौटा। फाटक पर बैठे चौकीदार के अतिरिक्त सब लोग सो गये थे। सन्नाटा था। सोमा के कमरे तक आने का साहस उसे न हुआ मुंह लपेट बिस्तर में लेट गया। सुबह सोमा ने प्याली में चम्मच खटका कर उसे नहीं जगाया। ऊधमसिंह अपने दिन लौट आये

आन कर स्वयं ही चाय बना लाया था। जगदीश ने उसे हजामत के लिये गरम पानी लाने के लिये कहा और कोई बात न की। वह कपड़े पहन बाहर निकल गया।

सोमा रात भर अपने कमरे में दुबकी आवाज़ें सुनती और रोती रही। वह कोठी में मचे कोहराम की गूंज सुन रही थी। वह क्या करे? साहब के सिवा उसका और कौन था? साहब से पूछे, बात किये बिना वह कुछ भी न कर सकती थी परन्तु साहब से मिले या बात करे तो कैसे? साहब होंगे कहाँ? वह उठे तो कुछ पता लगे परन्तु कोठरी से निकले कैसे? कोठी में झगड़े की गूंज कम हुई तो ड्राइंग रूम के क्लाक से बाहर की टन-टन सुनाई दी। फिर एक का घण्टा भी सुनाई दिया परन्तु लोगों के धीमे-धीमे बात करने की आवाज़ें आ रही थीं। साहब बाहर गये भी होंगे तो लौट आए होंगे। उन्हों ने बुलवाया नहीं. न खबर दिलवाई। वह कैसे साहब के कमरे की ओर जाने का साहस करती? यदि कोई देख लेता! सोमा की रात आँखों पर आँचल रखे ही बीत गई। दिन चढ़ आया था। धूप खूब निकल आई थी परन्तु सोमा को कोठरी से निकलने का साहस न हुआ। सब कुछ वही था, वही कोठी, वही लोग परन्तु सब कुछ कितना बदल गया था? इस समय तक साहब दफ्तर या कचहरी चले गए होंगे। वह उन से मिल नहीं सकी।

नौकर बसन्ता सोमा के कमरे में आया और रुखाई से बोला—"माँ जी ने कहा है अपने कपड़े ले लो और मोटर में चली जाओ। बाहर मोटर खड़ी है।" सोमा ने रो कर सूजी, आँसू भरी आँखें बसन्ता की ओर उठा कर पूछा—"कहाँ चली जाऊँ?" "मैं क्या जानूं।"—वह चला गया।

सोमा फूट-फूट कर रो उठी,—हाय कहाँ चली जाऊँ? क्या इसीलिए मुझे पहाड़ से लाये थे? कहाँ चली जाऊं? अपने कपड़े क्या ले लूं? मेरा अपना क्या है जो ले लूं? बटुये पर नज़र पड़ी। उस में घर के तीन-एक सौ रुपये थे पर वह भी उस के न थे। साहब को बुलवाये; पर कैसे? साहब तो कचहरी चले गये होंगे? उन्हों ने एक बार भी सुध न ली।

वसन्ता फिर आया—"जल्दी करने को कह रहे हैं।" दबे स्वर में सोमा ने विनय की—"ज़रा साहब को बुलादे भाई ?" "साहब कभी का गया।" बसन्त ठहरा नहीं। बाहर से मोटर के भोंपू का शब्द बार-बार सुनाई दे रहा था कि वह जल्दी करे। इतने में बड़ी बहू की कड़क सुनाई दी—"क्या गई नहीं अभी ?" दाई जीवा आई और बोली—"जल्दी करो, बड़ी बी जी, नाराज़ हो रही हैं।"

सोमा डरी, बहू ने बांह पकड़ के निकलवा दिया तो क्या होगा ? चार दिन उन्हें देख वह बहुत कुछ समझ गई थी। रुलाई के वेग को होठों से दबा वह जैसे बैठी थी उठ खड़ी हुई और बाहर मोटर की ओर चल दी। बरकत ने उसे आते देख अपनी जगह पर बैठे ही बैठे हाथ पीछे बढ़ा पीछे की सीट का दरवाज़ा खोल दिया। कायदे के मुताबिक उठ कर बाहर नहीं आया। सोमा के बैठ जाने के बाद उसने वैसे ही लापरवाही से दरवाज़ा बन्द कर दिया। मोटर चल दी।

मोटर बंगले से कुछ ही कदम आगे बढ़ी थी। सोमा ने रुआसे स्वर में पुकारा—"भाई !"

बरकत ने घूम कर देखा। उसके माथे पर त्योरी थी, पूछा—"क्या है ?"

सोमा की आँखों से आँसू टपक पड़े-"कहाँ ले जा रहे हो ?"

"स्टेशन !"

"कहां जाने के लिये ?"

"जहां कहो !"—गाड़ी धीमी कर बरकत ने उत्तर दिया—"हमें मां जी ने पचास रुपये दिए हैं कि जहाँ का टिकट कहे खरीद दो और बाकी रुपये तुम्हारे। अल्ला-अल्ला खैर सल्ला।" बरकत गाड़ी तेज़ कर रहा था सोमा ने फिर हिचकी लेकर पुकारा—

"सुनो भाई।"

बरकत ने घूम कर देखा—"क्या ?"

"ज़रा साहब के यहाँ दफ्तर में ले चलो।"

बरकत के स्वर से रुखाई दूर हो गई। उसने कुछ विवशता

से कहा—"माँ जी का तो हुकम है स्टेशन पर छोड़ आओ। यह अच्छी मुसीबत कर रही हो !"

"हाथ जोड़ती हूँ।"

"तुम्हें ऐसे दफ्तर ले जाऊं और कहीं साहब मुझे ही कच्चा खा जायं !"

"मेरी खातिर, एक बार !"—सोमा ने गिड़गिड़ाया—"तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ।" अगले मोड़ से बरकत ने गाड़ी घुमा दी और दफ्तर के बाहर गाड़ी रोक उसने कहा—"मैं जाकर साहब को खबर देता हूँ।" दो मिनट बाद लौट कर बरकत ने खबर दी—"साहब दफ्तर में नहीं है। किसी इजलास पर गये हैं।"

"हाय, दो मिनट ठहर जाओ !"

"बैठा तो है हरामज़ादा, कहता है कह दो, नहीं हैं।" बरकत झल्ला उठा। सोमा फूट-फूट कर रोने लगी। गाड़ी तेज़ी से स्टेशन की ओर चल दी। स्टेशन से कुछ इस ओर ही बरकत ने फिर पूछा—"बताओ कहाँ का टिकट खरीद दूँ ?" सोमा रोती रही बोली नहीं। बरकत ने गाड़ी रोक दी और पूछा—"बोलोगी भी कुछ कि रोती ही रहेगी !"

"कहीं का नहीं"—सोमा ने मुंह ढंके सिसकते हुये उत्तर दिया।

"तो फिर गाड़ी से उतरोगी कि नहीं ? कहाँ पहुंचा दूं ! कोई जगह है ?"

"कोई नहीं"—सोमा आँचल में मुंह ढंके रही।

"आखिर मुझे तो गाड़ी कोठी पर पहुँचानी है।"

"मुझे कहीं नदी पर या जंगल में पहुंचा दो"—सोमा ने उत्तर दिया।

"वहाँ क्या करोगी ?"

"मरूंगी !"

बरकत ने क्षण भर सोचा और गाड़ी चला कर एक ओर घुमा दी। एक सूनी सड़क पर ला कर उसने फिर गाड़ी खड़ी की और सोमा की ओर पीछे मुड़ कर पुकारा—"सुनो !"

"हूँ"—सोमा हिचकियां ले रही थी।

"मेरे साथ चलोगी ?" सोमा ने पल भर सोचा और फिर सिर झुका कर हामी भर ली।

बरकत ने प्रश्न किया—"जहाँ कहूँगा ?"

"हाँ" सोमा ने हामी भरी।

"तो फिर मरने की क्या जरूरत है। दुनिया में बहुत जगह और बहुत मौका है। सुनो, कुछ रुपया लाई हो ?"

"नहीं"

"क्यों ? तुम्हारे पास ही तो रुपया रहता था ?"

सोमा ने आँचल से मुंह ढंके ही उत्तर दिया—"इन लोगों का रुपया नहीं लूंगी।"

"मानते हैं तुम्हें !"–बरकत ने आदर से कहा—"हो पानीदार। अच्छा तुम्हें एक जगह कुछ देर के लिये ठहरा दूं।"—बरकत ने फिर गाड़ी दिल्ली दरवाज़े की ओर से शहर में ले जा कर एक मामूली मकान के आगे खड़ी कर दी। सोमा गाड़ी में ही बैठी रही। बरकत भीतर गया और कुछ मिनट में लौट कर बोला–"तुम यहाँ ठहरो मैं दो घण्टे में लौट कर आता हूँ। गाड़ी कोठी पर पहुँचा कर और रुपया लेकर आता हूँ। कहीं गाड़ी चोरी का वारंट ही न कटा दें बेइमान।"

"आओगे तो····? कितनी देर में ?"—सोमा ने कातर स्वर में पूछा।

बरकत ने सीना ठोक कर कहा—"यह ग़रीब का कौल है, अमीर की बात नहीं, जिसमें खतरे और नुकसान का ख्याल हो ! जब कह दिया तो आयेंगे। खुदा-हाफ़िज़ हर हालत में, बशर्तें ज़िन्दगी !"

६

गृहस्थ की मरीचिका—

बैरिस्टर जगदीश और मनोरमा के षड़यंत्र से नौकरानी सोमा के साथ की साड़ियाँ भाबियों के लिये खरीदने के परिणाम में जो कोहराम मचा वह केवल सोमा को ही घर से बाहर निकाल कर समाप्त नहीं हो गया।

स्त्रियों के मनमुटाव से भाइयों के हृदय भी फट गये। पिता के सिर पर रहते ही बँटवारे की बातें होने लगीं और इस प्रसंग को लेकर झगड़े होते। मनोरमा के मुँह खोलते ही बड़ी और छोटी दोनों भाबियाँ बरस पड़तीं। घर की लड़की के सम्मान का भी विचार उनकी जिह्वा को संयम में न रख सकता। उसकी आयु इतनी अधिक हो जाने का लांछन, उसके अकेले घूमने का लांछन, उसके बैठ-बैठ कर जाने कहाँ लम्बे-लम्बे पत्र लिखने का लांछन बड़ी भाभी और छोटी भाबो दोनों सर हिला, हाथ फैला बार-बार कहतीं कि किसी इज्जतदार घर में इस उम्र की लड़की कुंवारी नहीं देखी।

ऐसे वातावरण में मनोरमा के लिये घर बैठना असम्भव था। घर न बैठ वह अखबार के काम के लिए पार्टी दफ्तर चली जाती तो यह उसकी आवारागर्दी और चरित्रहीनता का प्रमाण बन जाता। मनोरमा ने दो एक बार जवाब देने की भूल की परन्तु ऐसा परास्त हुई कि छल-छलाई आँखों से होंठ दबाये चुप रह जाना पड़ा। अपने कमरे से बाहर निकलने का भी साहस उसे न रहा। वह अखबार के काम के लिये पार्टी आफिस भी न जा सकती थी।

रात भर सोच कर उसने निश्चय कर लिया। उस ने सुतलीवाला को तार दे दिया—"मुझे मंजूर है। विवाह दो सप्ताह के अन्दर हो जाना चाहिए।"

और यह बात पत्र में लिख कर उस ने भाई को दे दी। इस कोठी से मुक्ति पा जाने के लिये वह इतनी व्याकुल थी कि उसने लिखकर भाई से अनुरोध कर दिया कि अब एक दिन भी घर में रहना उस के लिए सम्भव नहीं। सिविल मैरेज का प्रबन्ध ऐसा हो कि सुतलीवाला के आते ही दूसरे दिन वह मनोरमा को ले कर बम्बई लौट सके।

बैरिस्टर घर की स्थिति से स्वयं चिंतित और खिन्न थे। उन्हों ने मनोरमा को समझाया—"तार दे दिया? बड़ी उतावली की। पहले पिता जी और दूसरे लोगों से राय ले ली होती।"

"आप उन लोगों को कह दीजिये। जब मेरे लिए इस घर में जगह ही न रही तो राय का सवाल ही क्या है। अदालत को नोटिस देना जरूरी है, वह आप दे दीजिए। आप से न हो सके तो यह भी मैं स्वयं कर लूंगी।" मनोरमा ने आँसू भरे गले से सिर झुकाए उत्तर दिया।

घर में एक बार और कोहराम मच गया। लालाजी की अवस्था वैसे ही हो गई जैसे मेघनाद की शक्ति के आघात से लक्ष्मण जी की हो गई थी। माँ जी अलग बिलख रही थीं और उन्हें सांत्वना देने वाला कोई न था।

तीन भाइयों के ऊपर होने वाली एक ही लड़की के ब्याह के जाने क्या क्या अरमान थे। माँ जी बरसों से कितने ही गहने और दूसरी चीजें समेट-समेट कर रखती आ रही थीं कि मन्नो के दहेज में काम आयेंगी। मन्नो ब्याह के लिए ही तैयार नहीं होती थी और आज उसने यह गुल खिला दिया। उन्हों ने छाती और कोख पीट ली। वे अपनी कोख को गालियाँ दे रही थीं।

मँझली भाबी ने इस अभूतपूर्व अनाचार से खिन्न हो, दोनों उँगलियाँ गालों पर रख कर कहा—"हाय मैं मर गई, जुल्म देखो! यहाँ तीन बच्चे हो गये अब भी मर्द से बात करते कलेजा काँप जाता है। हमारा ब्याह हुआ था तो डोली पर चढ़ जाने तक

मालूम नहीं था कि कहाँ जा रही हैं। आजकल की लड़कियों को देखो, तार देकर शादी करती हैं।"

पिता जी विवश थे। यह लड़की के विवाह का समारोह है या लड़की के भाग जाने का कलंक ? वे इस अवस्था पर किसे निमंत्रण दें! किसे मुंह दिखायें! लड़की एक विधर्मी पारसी के साथ चली जा रही है।

रात में बड़ी बहू और मँझली बहू की मिस्कौट हुई। फिर दोनों बड़े भाइयों ने भी आपस में परमर्श किया –बात को बढ़ा कर ज्यादा छीछालेदर करने से क्या फायदा! बिना पूछे राय देने का क्या मतलब ? लड़कियों की शादियां जैसे होती हैं अगर वैसे ही की जाती तो लाला जी चालीस-पचास हजार देते ही, दस-बीस हजार ऊपर से खर्च होता। भाइयों को भी पाँच-पांच छः-छः हजार देना;ही पड़ता। माँ जी ने तो "फ्रेयर रोड" की कोठी दहेज में देने के लिये रखी हुई थी। उसका किराया भी अलग ही रखाती थीं। यह सब घर की सम्पत्ति में से ही तो जाता। अब लड़की अपनी इच्छा से, जो उसे अच्छा लगा कर रही है ? कोई बच्चा तो है नहीं ? बालिग उम्र है। कहीं यों ही सूटकेस लेकर चल दे ? उससे तो यही अच्छा है। लाज जितनी ढकी रहे।

दूसरी दिन मँझली बहू ने दूसरा ही व्यवहार किया। ब्याह का क्या है, ब्याह तो हो ही चुका है। बस लोगों से कह देना बाकी है। मर्द कोठी में आ कर साथ रह गया। मन्सूरी में साथ सैरें हुईं। यहाँ तो यह था कि छाज छलनी को ढके और छलनी छाज को! हम लोग तो परदेश में बैठ कमा-कमाकर भेजने के लिये थे। एक भैया ने घर में डाल रखी थी एक बहिन ने टिका रखा था। हम लोग न आते तो चलता ही रहता। ब्याह तो हो ही चुका है।

तय हुआ कि ऐसे सम्बन्धियों और परिचितों को निमंत्रण देने से क्या लाभ जिन्हों ने आकर आलोचना ही करनी है! लड़की के तार के उत्तर में लड़के ने तारीख लिख भेजी थी। उससे केवल दो ही सप्ताह का समय शेष था। भाइयों भाबियों की इच्छा थी कि ऐसे मौके से पहले ही टल जातीं। सभी लोग पूछेंगे लड़की को क्या दिया गया ? परन्तु सम्पत्ति और कारोबार के बँटवारे

का प्रश्न था—उसकी अवहेलना कर सकना किसी के लिए भी सम्भव न था ।

मिस्टर सुतलीवाला अपने दो मित्रों के साथ निश्चित तारीख पर बम्बई से आये। मजिस्ट्रेट कोठी पर बुला लिये गए। पंद्रह मिनट में और पंद्रह रुपये में लखपती की लड़की का विवाह हो गया। इससे बड़ा अपमान हिन्दू समाज में और क्या हो सकता!

मनोरमा की विदाई के समय भाबियों और भाइयों की आंखों में आंसू आ गये। दहेज कुछ नहीं था। केवल मनोरमा के निजी आठ बक्से थे जो स्टेशन पर अलग से भेज कर बुक कर दिये गये। इन में से पांच बक्सों में मनोरमा की पहले से खरीदी हुई साड़ियों और तीन में उसकी पुस्तकें थीं।

चलते समय पिता जी ने ग्यारह हजार का एक चेक और भाइयों ने ग्यारह-ग्यारह सौ के चेक उसे थमा दिये—यही दहेज था। मनोरमा ने चेकों की ओर देखे बिना उन्हें बटुये में डाल लिया। वह गम्भीर और उदास थी परन्तु उसकी आंखें खुश्क थीं। वह केवल भीतर जा माता जी से गले मिल, भूपो, दीपा और नये बच्चे, कमल को चूम आई। भाइयों और भाबियों की आंसू भरी आंखों से उसने आंखें नहीं मिलाईं।

लाहौर से बम्बई मेल के चलने तक सुतलीवाला अपने नये सम्बन्धियों के साथ प्लेटफार्म पर ही खड़े रहे। वे विनय और नम्रता के पुतले थे। इतने बड़े सम्मानित परिवार से अपना सम्बंध होने के लिये वे कृतज्ञता प्रकट कर रहे थे। परिवार की लड़की के आदर-आराम का विश्वास दिला रहे थे। वे बारी-बारी से प्रत्येक को बम्बई आने का निमंत्रण दे रहे थे। उनका गोरा रंग, सुघड़ शरीर और विनय देख कर सभी को सान्त्वना थी, जो हो लड़की के लिये वर बुरा नहीं मिला। मनोरमा गाड़ी के भीतर चुप बैठी थी। गाड़ी चलने पर उसने दोनों हाथ जोड़ कर सब लोगों को एक ही नमस्ते कर दी।

सुतलीवाला के दोनों मित्रों ने वर वधु के संकोच और सुविधा के विचार से अपने लिये फर्स्टक्लास के दूसरे डिब्बों में जगहें रिजर्व करवाई थीं परन्तु दूसरे मुसाफिरों के लिये इतना शिष्टाचार दिखाना सम्भव न था।

रात के दस बजे थे। लाहौर स्टेशन की सीमा से गाड़ी बाहर निकलते ही ऊपर के बर्थ के दोनों मुसाफिर नींद की तैयारी करने लगे। सुतलीवाला ने मनोरमा के समीप बैठ स्नेह से उसकी पीठ पर हाथ रख, मुस्कराकर उस के आराम और आवश्यकता की बात पूछी।

पुरुष के उस निस्संकोच, अधिकारपूर्ण स्पर्श से मनोरमा की आंखें मुंद गईं। उस ने केवल मुस्करा दिया। प्रणय से आतुर सुतलीवाला उसके कदमों के लिये हथेलियां बिछाये थे। उस का बिस्तर ठीक कराने में, रात के कपड़े बदलने के लिये सूटकेस से निकालने में वे उसका हाथ बंटा रहे थे। हर बार उसका हाथ छू जाने से मनोरमा को मधुर रोमांच हो जाता। उन के सांस का स्पर्श कंधों और गर्दन पर मनोरमा के शरीर में बिजली दौड़ा देता। सुतलीवाला ने आगे बढ़ उसके लिये गुसलखाने का दरवाज़ा खोल दिया।

मनोरमा के पास रात में सोने के लिये पहनने के अंग्रेज़ी ढंग के कुरते पायजामे और गाउन थे परन्तु वह उन्हें कभी पहनती न थी। कभी शुरू में शौक किया था। सुतलीवाला के साथ पहले सफर में उसने वह शौक किया—मैं इन कपड़ों में कैसी लगूंगी? गुसलखानों के शीशे में इन कपड़ों में अपना शरीर उसे बहुत प्यारा लगा। उसने कंघी से बाल भी ठीक किये और चेहरे पर पाउडर का हाथ भी फेरा। अब सुन्दर लगना आवश्यक था। वह बाहर आई तो मुस्करा रही थी।

सुतलीवाला अपने बिस्तर पर बैठे प्रतीक्षा कर रहे थे। उसके आराम से बिस्तर में लेट उनकी ओर देख मुस्कराने पर उन्हों ने पूछा—"अब रोशनी की जरूरत है?" मनोरमा ने सिर हिला दिया। रोशनी बुझ गई। मनोरमा को अपने माथे पर सुतलीवाला के हाथ का स्पर्श और होठों पर उन के होठों का स्पर्श अनुभव हुआ। और कान में सुनाई दिया—'गुडनाइट'!

एक पूर्ण, निर्भय, अधिकारपूर्ण चुम्बन! मनोरमा के अछूते अनुभवहीन ओठों पर कटी हुई मूंछों की मधुर चुभन! उफ़ कितना मधुर! मनोरमा की बाहें उठने के लिये तड़प कर रह गईं। पीठ बल खाकर रह गई।

गाड़ी में अंधेरा था। केवल गुसलखाने के दरवाज़े पर भीतर की रोशनी का चमकता हुआ उज्ज्वल नीला, गोल दाग दिखाई दे रहा था जैसे खिलौने का चन्द्रमा सफर की उस छोटी सी दुनिया की रात के लिये बना हो! मनोरमा आँखें मूंदे अपने बिस्तर पर पड़ी थी। फर्स्टक्लास के बर्थ के स्प्रिंग उसे गाड़ी की चाल के साथ झुलाझुला कर कह रहे थे—"सोजा, सोजा राजकुमारी सोजा!" गाड़ी की तेज़ चाल द्रुत ताल से कह रही थी—सोजा-सोजा, सोजा-सोजा, सोजा-सोजा। मनोरमा सो नहीं रही थी, सोना चाहती भी न थी।……जाने वह कब सो गई!

मनोरमा की नींद खुली। तेज़ी से चलते हुये बिस्तर में नींद खुलने का अनुभव। विवाहित जीवन का पहला प्रभात। उसने सुतलीवाला के बर्थ की ओर लज्जा से देखा। वे गम्भीर निद्रा में सोये हुये थे। गोरे-गोरे माथे पर कोमल लटें हवा से लहरा रही थीं। वे कितने सुन्दर दिखाई दे रहे थे। वे उसके थे। उसने निश्चिन्त विश्राम की अंगड़ाई का सुख अनुभव किया। ऊपर के मुसाफिर गाढ़ निद्रा में सोये हुये थे। मनोरमा ने सोचा, उनके उठने से पहले तैयार हो जाऊं! वह स्प्रिंग की फुर्ती से उछल कर बिस्तर से उठी। ज़रूरी सामान और कपड़े ले गुसलखाने में चली गई। वह क्या पहने, निश्चय करने में काफ़ी समय लगा, बालों को संवारने में भी।

मनोरमा तैयार होकर अपनी जगह बैठ गई थी। सुतलीवाला की आंख खुली। उनकी 'गुडमोर्निंग' की मुस्कान कितनी मीठी थी? मनोरमा चाहती थी कि वह पति के आवश्यक सामान निकाल कर तैयार करे, उसे सहायता दे परन्तु उसे कुछ मालूम ही न था—क्या कहाँ रखा है और उसने ऐसा काम कभी किया न था, बीमार के सिवा कभी किसी की सेवा न की थी।

गाड़ी में १९४४ की लड़ाई के ज़माने की भीड़ थी। फर्स्ट क्लास में भी सूनापन और एकान्त मिलना सम्भव न था। मनोरमा चाहती थी उन दोनों के सिवा गाड़ी में और कोई न हो!……यह लम्बा सफर कब समाप्त होगा? वे लोग कब बम्बई पहुँचेंगे? वे लोग एक बर्थ पर पास-पास बैठ कर आपस में बातचीत कर रहे थे।

सुतलीवाला कह रह था—"तुम से मिलने के पहले अवसर पर ही मेरे मन ने कह दिया था—विवाह मेरा होगा तो यहां ही।" वह उसे लाहौर में उनकी पहली मुलाकात की बातें याद दिला रहा था। बुद्धिमानी से उस ने कहा—"तुम्हारे परिवार के लोगों को प्राचीन परम्परा और संस्कार में विश्वास और अभ्यास होने के कारण अभी हमारे विवाह से बहुत संतोष नहीं है परन्तु समय से उनका यह व्यवहार बदल जायगा और वे लोग हमारी सहायता कर सकेंगे!

बातचीत अंग्रेज़ी में हो रही थी। मनोरमा ने उत्तर दिया—"उस बात को जाने दीजिये।" उसने कुछ याद कर बटुआ खोला। अपना कलम और चारों चेक निकाले। उसने चेकों पर पीछे लिख दिया—"हैदर जी सुतलीवाला को अदा किया जाय!" और दस्तखत कर दिये—"मनोरमा।" चारों चेक सुतलीवाला के हाथ में दे दिये। सुतलीवाला ने मुस्करा कर कहा—"इसकी क्या ज़रूरत थी?" "सब कुछ तुम्हारा ही है"—मनोरमा का उत्तर था।

सुतलीवाला ने मनोरमा को बताया कि उनके घर के लोग भड़ोच में हैं। बम्बई में व्यवसाय के प्रयोजन से वह अकेले ही एक बहरे के साथ रहता है। बम्बई औद्योगिक शहर है। वहाँ प्रायः ही लोग तंग जगह में गुज़ारा करते हैं। वहां मनोरमा की लाहौर की कोठी की तरह पन्द्रह बीस कमरे लेकर रहना सम्भव नहीं। वे मालबार हिल पर एक छोटे से बंगले के ऊपर की मंजिल में रहते हैं। केवल तीन कमरे उनके पास हैं। इतने का ही किराया सौ रुपया है। मनोरमा को तीन कमरे कुछ कम नहीं जान पड़े। सोचा, छोटी जगह को सम्भाल कर और सजा कर रख सकेगी। परिवार के दूसरे लोग नहीं हैं तो क्या? वे दोनों अपने प्रेमनीड़ में निर्विघ्न निस्संकोच रहेंगे।

× × ×

विवाह के पश्चात सुतलीवाला उसे फ्लैट में पहुंचा कर ज़रा बाहर चले गये थे। मनोरमा के बराम्दे के सामने फैला हुआ निस्सीम समुद्र गहराईयों से हलमल कर रहा था। मेघों के लालिमा लिये छितराए हुए टुकड़ों के नीचे दया आतुर सूर्य अग्नि

पिंड की भाँति अपनी परिक्रिमा करता हुआ समुद्र में समाधि ले रहा था। मनोरमा के कमरे गुलाबी प्रकाश से भरे थे। अपने घर में, पति के साथ पहली रात्रि आ रही थी। बावर्ची रसोई में उस के कहे अनुसार खाना बना रहा था। वह तीनों कमरों को सम्भाल, सजा चुकी थी। प्रत्येक कमरे में कई बार हो आई थी। सेज कमरे को सजाने में उसका शरीर लज्जा से पुलक-पुलक जाता था। कमरे में दो बड़े-बड़े पलंग थे सही.......।

प्रातः उठने के समय मनोरमा को शरीर में अनिद्रा की थकान, खिन्नता भरी शिथिलता और आत्मग्लानि सी अनुभव हो रही थी। जैसे उसकी स्वच्छता पर निष्फल धब्बा लग गया हो। लज्जित से स्वर में सुतलीवाला ने कहा था—"कुछ दिन से मेरी तबीयत ठीक नहीं है। मैं दवाई लूंगा।" मनोरमा को सुतलीवाला की बात भली न लगी। बार-बार उस के मन में ख्याल आता था—इन्हों ने यह बात क्यों कही? उठने पर कपड़े बदलने और बाल संवारने की ओर भी प्रवृत्ति नहीं हुई।

सुतलीवाला का व्यवहार बहुत विनीत था। मनोरमा को इतने प्रत्युत्तर में उचित व्यवहार न कर पाने से कुण्ठा और लज्जा अनुभव होने लगती। वह सोचती, ठीक तो है। बार-बार यह बात कहने की क्या ज़रूरत है? उसने सोचा, वह घर के काम में मन लगाए पर उस के करने के लिये वहाँ क्या था? नौकर सब कुछ करता ही था, कर ही रहा था। वह पुस्तक ले पढ़ने बैठती। सुतलीवाला सुबह नाश्ता करके चले जाते। डेढ़ बजे भोजन के लिये आते। मनोरमा का मन पढ़ने में न लगता। दिन में नींद का अभ्यास न था। संध्या समय आ कर चाय पीने के बाद सुतली-वाला मनोरमा को गाड़ी पर घुमाने ले जाता। समुद्र के किनारे दूर तक घुमाने के बाद वे उसे क्रिकेटक्लब, सिनेमा या डांस पर ले जाते। कभी खाना बाहर ही हो जाता। और वे आधी रात तक लौटते।

मनोरमा खाली समय पढ़ सकती थी पर मन न लगता। नये स्थान में परिचय न होने के कारण वह कहीं जा भी न पाती। सुतलीवाला ने राय दी, शापिंग (बाजार) कर आया करो! परन्तु मनोरमा सोचती, ज़रूरत किस चीज़ की है? समय कटना

कठिन हो रहा था। वह सोचती, कुंवारे जीवन में वह कौन अभाव था जो अब पूरा हो गया? सुतलीवाला ने उससे विवाह का प्रस्ताव क्यों किया?....दूसरी लड़कियाँ विवाह के बाद कैसी हंसी भरी गुदगुदाई सी जान पड़ती थीं? जैसे कोई रहस्य उनके ओठों पर आकर फूट जाना चाहता हो! परंतु वह केवल प्रवंचना की लज्जा अनुभव कर रही थी। कैसे मुंह छिपा ले। कुंवारी होने से वह क्यों कर दयनीय थी? क्यों ? कैसे....?

मनोरमा ने सोचा—पति के काम में कुछ भाग ले?

सुतलीवाला ने हंस कर समझाया—"मेरा काम ऐसा है कि मैं ही कर सकता हूँ। किसी पूंजी वाले को यह समझाना कि तुम पूंजी अमुक काम में लगा दो, दूसरे की मार्फत नहीं हो सकता। आदमी की थाह लेनी होती है, उस का स्वभाव देखना होता है। कल जिस आदमी को मैं क्लब साथ ले गया था, उस आदमी को मैं एक फिल्म बनवाने के लिये दो लाख रूपया लगाने के लिये जोतना चाहता हूँ? अब तक मैं दूसरों की फिल्में बेचता रहा हूँ। अब मैं स्वयं फिल्म बनवा कर बेचना चाहता हूँ। पूंजी इन लोगों की होगी और अक्ल मेरी.......।"

सुतलीवाला अनुभव कर रहे थे कि रेल में सफर करते समय तो मनोरमा उनके समीप खिमिट आने के लिये आतुर थी पर अब उसमें इतनी शीघ्र शिथिलता आ गई थी। कारण भी वह समझते थे। पंजाब के जलवायु में और भिन्न वातावरण में पनपी वह लड़की उन की अपेक्षा कहीं अधिक स्वस्थ थी। यौवन की पूर्ण संचित शक्ति लेकर उसने गृहस्थ में प्रवेश किया था। सुतलीवाला गृहस्थ बसाये बिना गृहस्थ भोगने की चेष्टा में शारीरिक रूप से शिथिल हो, केवल वासना और शौक लिये रह गये थे। वे अब बुढ़ापे की बढ़ी चली आती संध्या के लिये एक घर बसाने की योजना में थे। सुतलीवाला मनोरमा को सभी तरह के समाज में ले गये। युवकों और युवतियों से मिलाया। वे उसे घुमाने-फिराने, सैर कराने के लिये आतुर थे परन्तु मनोरमा जिस प्रकार के वातावरण से अभ्यस्त थी, वह उसे न मिला। पार्टियों और क्लबों में शेयर और घुड़ दौड़ की बात होती थी। स्त्रियों की गोष्ठी में जिन लोगों के संबंधों का चर्चा होता था उन्हें भी वह जानती थी।

सुतलीवाला पहली रात की अस्वस्थता के कारण मन में एक लज्जा पूर्ण ग्लानि मनोरमा के सम्मुख अनुभव कर रहे थे। मनोरमा को बहलाने के प्रयत्नों का कुछ संतोषपूर्ण फल नहीं हुआ। विवाह के बाद तीसरा सप्ताह बीत रहा था। एक संध्या वे मनोरमा को सिनेमा ले गए। उसके बाद वे लोग देर तक नाच में रहे। उस संध्या सुतलीवाला अधिक विनयी और विनोदी जान पड़ रहे थे। घर लौट मनोरमा कपड़े बदल सो जाना चाहती थी। मनोरमा को अपने पलंग पर लेट जाने का आयोजन करते देख सुतलीवाला लज्जा और संकोच से बोला- "उस दिन मेरी तबीयत ठीक नहीं थी। उस बात को भूल जाओ।" वह उस के समीप जा बैठा। मनोरमा को अपने सम्मान पर चोट सी लगी। वह बिस्तर से उठ बाहर बरान्दे में जा बैठी।

सुतलीवाला को बहुत बुरा लगा परन्तु उसने मनोरमा को समझाना चाहा। मनोरमा रोने लगी। निष्फल हो सुतलीवाला चुपचाप लेट गये। मनोरमा का व्यवहार उन्हें असह्य अपमान जान पड़ा। वह कुछ कड़वी बात कह बैठे। मस्तिष्क में पत्नी की घृणा के अपमान की जलन और शरीर में औषध की उत्तेजना उन्हें बेचैन करती रही। बहुत कठिनाई से बहुत देर बाद वे सो पाये। सुबह उठ वे मनोरमा से बोले नहीं। सात ही बजे तैयार हो गाड़ी में बैठ नौकर को बुलाया और कह दिया—"मेम साहब से बोलो, हम नाश्ता होटल में करेंगे। ज़रूरी काम है। शाम को आयेंगे।"

मनोरमा बहुत शिथिल थी और उदास! विवाह कर उसने क्या पाया······? कितनी बड़ी भूल······? कितना बड़ा धोखा······? उसने केवल चाय पी खाया कुछ नहीं। अपने शरीर को बढ़िया साड़ियों से सजाने के लिये रुचि नहीं हुई। घर में बैठना भला नहीं लग रहा था। घर पिंजरा मालूम होता था जो उसे दबोच रहा है। वह उठी और सड़क पर उतराई की ओर उतरती समुद्र की ओर चल दी। मालाबार हिल पर अमीर लोगों के बंगलों और कोठियों से बच्चे स्कूल जाने के लिये निकल रहे थे। बड़े स्वच्छ और प्रसन्न। उन्हें देखकर खयाल आया—यह है, गृहस्थ जीवन! परन्तु मैंने जिस गृहस्थ में कदम रखा है, वह है केवल पाखंड!

मनोरमा समुद्र के किनारे कैंडी बीच पर पहुँच गई। अनेक

बूढ़े पारसी और कुछ दूसरे लोग समुद्र के किनारे बांध पर बैठे जाड़े की धूप सेकते हुए पश्चिम से आती स्वस्थ वायु का सेवन कर रहे थे। वह भी समुद्र के किनारे बांध पर बैठ गई और सोचने लगी अब वह क्या करे? गृहस्थ जीवन की मधुरता तो उसके लिए थी ही नहीं, व्यर्थ प्रवंचना में जा फंसी। कालिज में पढ़ाने का काम कर लेती तो अच्छा था। लाहौर में अखबार में कुछ दिन काम किया था, वह कितना अच्छा लगा था। वह पन्द्रह रुपये मासिक? भूषण बात रूखी करता है परन्तु उसके हृदय में व्यक्ति के प्रति विश्वास और आदर है। उसके साथ पैदल धूल और धूप में घूमने में और लड़ाई झगड़े में भी अपमान और कमीनापन नहीं मालूम हुआ। समीप आते-आते हम लोग इसलिए दूर हट गए कि वह मुझे धोखा नहीं देना चाहता था।

मनोरमा धूप में चमचमाते नीले समुद्र की ओर एकटक देखती सोच रही थी भूषण को अपने परिश्रमी कर्मठ और सहनशील होने का अभिमान है। वह एक उद्देश्य के लिये लड़ सकता है। उस ने समझा कि मैं केवल पैसा चाहती हूँ—कोठी, कपड़े और मोटरें! क्या उस के पास यह होता तो वह इसी में उलझ जाता? फिर दूसरों को ऐसा क्यों समझता है? उस ने मुझे कितने धक्के दिये, कितनी बार अपमान किया! उस दिन धर्मशाला में सोमा की बात को लेकर···! पर उसके अपमान करने में, धक्का देने में भी ईमानदारी थी। भूषण का गेहुँआ रूखासा चेहरा, दुबला, कड़ा शरीर उसकी कल्पना के सम्मुख आ गया और सुतलीवाला का गोरा-गोरा मुलायम चेहरा उसे गिज-गिजा सा दिखाई देने लगा। अपने शरीर के प्रति घृणा से उसकी इच्छा हुई कि समुद्र में थूक दे।··· ···वह कोई भी शर्त रखता! लेकिन उसे तो अविश्वास था। एक बार उसे दिखाऊंगी कि मुझ में इन सब चीज़ों को लात मार देने का साहस है?

मनोरमा को याद आया, भूषण बम्बई में ही तो है। 'पीपल्सवार' और 'लोकयुद्ध' यहां से ही तो निकलते हैं। पता 'खेतवाडी मेनरोड' उसे याद था। दोनों अखबारों का चन्दा वह इसी पते पर भेज चुकी थी। लाहौर के अखबार में काम करते समय इस दफ्तर से कितना ही पत्र व्यवहार होता था। याद आया, सुतलीवाला संध्या समय

आने के लिये कह गया है। सोचा, जब भी आये ! यहां बैठ कर अपना मातम मनाने में क्या रखा है ? वह समुद्र किनारे की दीवार से उठ खड़ी हुई। पार्टी दफ्तर की राह वह नहीं जानती थी लेकिन टैक्सी वाले तो सब राहें जानते हैं ! मुख्य सड़क पर आते ही एक खाली टैक्सी दिखाई दी। इशारा पाते ही टैक्सी समीप आ गई। गाड़ी में बैठते मनोरमा ने कहा—"खेतीवाडी मेन रोड !" टैक्सी तेज़ी से चल दी। मनोरमा ने सोचा यदि भूषण इस समय वहाँ न हो ! वह दफ्तर में काम करने वाले कई आदमियों के नाम जानती थी। उन के नाम प्रायः अखबारों छपते में रहते थे। सोचा जगह तो देख आये। दूर तक चक्कर लगाते हुये मालाबार हिल से बिलकुल दूसरी जगह और बाज़ार में आकर टैक्सी वाले ने कहा—"ये खेतवाडी है। कहां जायगा !" मनोरमा ने आसपास सब कुछ अपरिचित देख सोचकर कहा—"राजभवन कम्युनिस्ट पार्टी।"

"ओ लाल बावटा ?"—मराठे टैक्सी वाले ने पूछा और कुछ दूर और आगे जा, चौड़ी सड़क पर, एक बड़े सफ़ेद मकान के सामने फुटपाथ के साथ टैक्सी खड़ी कर दी। मकान की ड्योढ़ी से एक चक्करदार चौड़ा ज़ीना ऊपर चढ़ गया था। ज़ीने के समीप एक नौजवान स्टूल पर बैठा था। कुछ लोग आ-जा रहे थे। एक मौन व्यस्तता का सा भाव था। मनोरमा ने नौजवान से पूछा—"आफिस ऊपर है ?"

"आप किसको मिलेंगी ?"—नौजवान ने पूछा।

"कामरेड भूषण से ?"

"क्या काम करते हैं ?

"अखबार में"

"किस अखबार में, कौन डिपार्ट में हैं······?"—नौजवान ने डोरी से लटके कागज़ों में से एक पुर्जा फाड़ मनोरमा को दिया—"लिख दीजिये।" मनोरमा को विस्मय हुआ। क्या इतना बड़ा दफ्तर है कि भूषण को भी सब लोग नहीं जानते ? वह नहीं जानती थी कि भूषण क्या खास काम करता है ? कुछ सोच कर उस ने पुर्जे पर अंग्रेज़ी में लिखा—"लाहौर के कामरेड भूषण को मिलना चाहती हूँ, मनोरमा।"

स्टूल पर बैठे नौजवान ने समीप ही कागज़ों के बंडल बांधते दूसरे नौजवान को पुकार कर मराठी में कुछ समझाया और कागज़ दे दिया। वह साथी ज़ीना चढ़ ऊपर गया। मनोरमा अपना बटुआ बाहों में दबाये खड़ी प्रतीक्षा करती रही। कुछ झिझक कर स्टूल पर बैठे नौजवान ने स्टूल से उठ मनोरमा से कहा—"आप यहाँ बैठिये ऊपर खबर भेजा है।

"धन्यवाद—आप बैठिये—मुझे तकलीफ़ नहीं है।" मनोरमा ने उत्तर दिया। तीन-चार मिनट और गुजर गये। ऊपर से कई आदमी बात करते हुये आये और कई ऊपर गये। नौजवान ने केवल दो को टोका। आने जाने वाले प्रायः नौजवान कामरेड लोग ही थे परन्तु लाहौर के कामरेडों की अपेक्षा अधिक साफ़ और सुथरे। मनोरमा प्रतीक्षा में सड़क की ओर देख रही थी, परिचित स्वर सुना—"हलो कामरेड !" भूषण की आवाज़ थी। वह मुस्कराता हुआ ज़ीने से उतर रहा था ! कलम अब भी उस की उंगलियों में था। "कब आईं ?"—भूषण ने विस्मय से पूछा।

मनोरमा ने मुस्कराने का यत्न किया और चुप रह गई।

"तुम फ़ोन कर देतीं। कब आईं ? कैसे आईं ? घर के और लोग भी हैं, जगदीश हैं ?"—भूषण ने उत्सुकता प्रकट की।

"आप कैसे हैं ?"—मनोरमा ने मुस्करा कर पूछा। भूषण कुछ थका हुआ और कमज़ोर दिखाई दे रहा था। मनोरमा ने सोचा —इसे काम करने का कितना अवसर है ?

"आओ, ऊपर आओ ?"—भूषण उसे ऊपर ले गया। एक मंजिल, दूसरी मंजिल, तीसरी मंजिल। ज़ीने से सब ओर कमरों में, मेज़ों पर काम करते आदमी दिखाई दे रहे थे। टाइप राइटर खटखटा रहे थे।

भूषण ने कहा—"आओ, हमारे कमरे में चलो"—फिर सोच कर बोला—"अच्छा, कामनरूम में आओ !"

अच्छा बड़ा कमरा। दीवार पर एक सफेद कपड़े में बना हंसिये हथौड़े का लाल चिह्न। हाथ से बनाए मार्क्स और लेनिन के दो चित्र लगे हुए थे। एक कोने में बड़ा सा रेडियो आहिस्ता-आहिस्ता बोल रहा था। उस के पास बैठा एक व्यक्ति कलम और कागज़

लिये कुछ नोट कर रहा था। दूसरी ओर बैठा कोई नौजवान अखबार देख रहा था। भूषण और मनोरमा की ओर किसी ने ध्यान न दिया। भूषण ने मनोरमा को एक ओर आराम कुर्सी पर बैठा कर अपना प्रश्न दोहराया—"कब आईं ?"

"महीना भर होने को है ?"

"हैं, मिली नहीं ?"

"आई तो हूं !"

"एक महीने बाद ? फ़ोन भी नहीं किया। बहुत व्यस्त थीं ? कहां ठहरी हो ?"

"मालाबार हिल ?"

"पता बताओ मैं आऊंगा !"

"नेपियर रोड पर लुकमानजी स्ट्रीट, १७ नं० ऊपर का फ्लेट।"

"यह नहीं बताया कैसे आईं ?"

"यहां क्या कई दफ्तर हैं ?" मनोरमा ने बात बदली—"तुम्हारा तो पता पाना मुश्किल हो गया।"

"हां, आओ तुम्हें दिखाऊं"—उत्साह से भूषण बोला और उठ खड़ा हुआ। उसी समय एक लड़की एक फाइल हाथ में लिए आई। वह फाइल उसने भूषण की पीठ पर पटक दी…"यह लो"—उसने अंग्रेज़ी में कहा—"खुद तो यहां गप्प लड़ा रहे हो। जानते हो, कल रात के आठ बजे से अब उठी हूँ मशीन पर से ! एक साथ १७६ पृष्ट ! दो दिन पहले दे देते तो क्या था ?" भूषण ने उसकी ओर देख कर कहा—"तुम हो ही भूतनी ! जानती हो, मुझे लिखने में चार दिन और दो रातें लगी थीं। अभी एक बजे मुझे यह रिपोर्ट 'पी० बी०' को देनी है।"

मनोरमा उस नौजवान लड़की की ओर देख रही थी, सांवला सा रंग, चेहरे पर थकावट की रुखाई, बड़ी-बड़ी आंखों में उनींदी के लाल डोरे, घुंघराले रूखे बाल उलझे हुए से। उसे चिन्ता नहीं थी कि उसका आंचल कहां गिर रहा है। उसने मनोरमा की ओर ध्यान नहीं दिया था। भूषण ने परिचय कराया—"यह हमारी लाहौर की कामरेड मनोरमा है यह मद्रास के सागर तट की मछुली पारो !"

पारो ने बन्द मुट्ठी उठा कर मनोरमा की ओर देख अभ्यर्थना में मुस्करा दिया। वैसे ही मनोरमा ने लाल नमस्कार से उत्तर दिया।

भूषण बोला—"पारो, देखा, हमारे पंजाब की लड़कियाँ कितनी सुन्दर होती हैं?"

"हूँ"—पारो ने मनोरमा की ओर देखा—"पन्द्रह घण्टे तक लगातार टाइप कर लेती हैं?"—भूषण से उसने प्रश्न किया।

"पन्द्रह? बस! वो करेंगी तीस घण्टे तक!"—भूषण ने उत्तर दिया।

"मैं बहत्तर घन्टे करूंगी। जानते हो मैं स्ताखनोवाइट हूं। अच्छा कामरेड"—पारो ने मुस्करा कर मनोरमा से कहा—"आप दूर से आई हैं। अपनी भूमि के मित्र से बात कीजिये।"—वह चली गई।

भूषण मनोरमा को बराम्दे में ला कर दिखाने लगा—"वह पीपल्सवार के कमरे हैं, वह मराठी 'लोक युद्ध,' वह 'कौमी जंग,' गुजराती 'लोक युद्ध' का कमरा नीचे है। आर्गेनाइज़ेशन के दफ्तर ऊपर हैं। हमारा रिसर्च ब्यूरो भी ऊपर है। वह फोटो डिपार्टमेंट, है। यह कमरा सेक्रेटरी का है। उधर दूसरे कामरेडों के कमरे हैं जिनका यहाँ सदा रहना जरूरी है। जो लोग विवाहित हैं और जिनकी स्त्रियां भी काम करती हैं, उन्हें एक-एक कमरा दिया गया है। बाकी लोग एक साथ रहते हैं। बहुत से लोग समीप ही 'रेड-फ्लैग हाल' में रहते हैं। कुछ लोग अंधेरी में रहते हैं, कुछ लोगों ने मित्रों के यहाँ प्रबन्ध किया हुआ है।"

पुकार सुनाई दी—"कामरेड भूषण! तुम्हें कामरेड बी० टी० बुला रहे हैं।" भूषण उठ खड़ा हुआ—"जरा बैठो मैं अभी आता हूँ। आज पी. बी. की मीटिंग में यह रिपोर्ट पेश होगी उसी के लिये शायद बुलाया है। मैं इसे दे कर आता हूँ। देखो यह अखबार हैं। अभी आता हूँ।"

रेडियो के पास बैठा व्यक्ति अपने काग़ज़ समेट कर उठ खड़ा हुआ। भूषण ने उससे पूछा—"कोई खास खबर?"

"चल रहा है, कुछ नहीं।"

मनोरमा अखबार उलटने-पलटने लगी। पार्टी दफ्तर का वातावरण उसे सजीव और संतुष्ट मालूम हो रहा था। बिना कपड़ा बिछी मेज़ों पर काम करते लोग अपनी इच्छा से, जिम्मेवारी से काम करते जान पड़ते थे। भूषण को गये दस मिनट हो गये। फिर घड़ी देखी पन्द्रह मिनट हो गये। वह अपने हृदय से उठती गहरी सांस को दबाकर सोच रही थी—यदि लाहौर के अखबार में काम करते-करते वह यहाँ आ जाती ? यहाँ यही लोग कितने खुश हैं ? पारो कितनी आत्मनिर्भर और उत्साह भरी है। दूसरे कमरों में काम करती और लड़कियाँ भी दिखाई दे रही थीं। ख्याल आया,···यदि भूषण ने उसका साथ दिया होता······! लेकिन यह बात वह मुंह से कहे कैसे ?

मनोरमा ने फिर घड़ी देखी, बीस मिनट हो चुके थे। इन लोगों को फुर्सत कहाँ ! उसने सोचा, मैं चलूं ? वह आ जाय तो कह कर जाऊं ?···यहां आकर कुछ काम करने लगूं।······संध्या समय लौट जाया करूंगी।······वह क्या कहेगा ? हम लोग कितने अलग-अलग मालूम होंगे।

सुतलीवाला के साथ बीतने वाली संध्यायें, क्लब, पार्टी, होटल, शराब, ब्रिज, रेस की बातचीत; जगमग साड़ियाँ और कठिन मेकअप ! यहाँ दिन बिताने के बाद वैसी संध्या ! कैसा मेल होगा। सुतलीवाला आपत्ति करेगा परन्तु उस का और मेरा साथ क्या ?······साथ की बात सोच उसका मन घृणा से भर गया। भूषण चालीस मिनट बाद आया और बहुत क्षमा मांगने लगा—"हिन्दुस्तान भर के यूनिटस की रिपोर्ट है······।"

भूषण ने अपनी घड़ी की ओर देखा—"बारह पैंतालीस ! तुम्हारे खाने का क्या होगा ? आओ, हमारे साथ खाना खाओ ! हमारे कम्यून में जितने खर्च पर जैसा अच्छा खाना मिलता है, बम्बई में कहीं नहीं मिलेगा। खा कर तो देखो ! पंजाबी रसोई से ज़रा भिन्न है लेकिन तुम्हें अच्छा लगेगा। ठहरो मैं "माई" को कह दूं नहीं तो वह डांटेगी ! एक मिनट !"

भूषण फिर चला गया। मनोरमा फिर मार्क्स की दाढ़ी की ओर नज़र किये अपनी बात सोचने लगी। भूषण लौट आया—"दस मिनट में घण्टी बजेगी !" उत्साह से उस ने कहा—"यदि

का० जोशी खाने के लिये आये तो तुम से मुलाकात कराऊंगा लेकिन वह शायद ही कमरे से निकलें! उनके लिये खाना वहीं दे दिया जाता है और सब लोग डाइनिंग हाल में आते हैं।

घंटी बजी। भूषण मनोरमा को डाइनिंग-हाल की ओर ले चला। बड़ा सा कमरा, लाल फर्श पर टाट की पट्टियां बिछी हुई थीं। एक ओर आलमीनियम की तश्तरियाँ, कटोरे, मग और गिलास ठठेरे की दुकान की तरह सजे हुये थे। सब लोग एक-एक तश्तरी, कटोरा और गिलास या मग ले-ले कर बैठते जा रहे थे। आपस में बातचीत, हंसी मज़ाक का शोर था जैसे कालिज की आधी छुट्टी में विद्यार्थी स्वच्छन्द हो रहे हों। सब जगहें भर गई। अभी बहुत लोग शेष थे। अधेड़ आयु की एक स्त्री निरीक्षक की तरह खड़ी थी। उस ने कहा—"अब बाकी साथी दूसरी बार!" तीस चालीस जवानों में छः सात युवतियाँ भी थीं परन्तु कोई संकोच या दुराव नहीं था।

भूषण और मनोरमा जोशी की प्रतीक्षा में जगह पाने से रह गये। पारो जल्दी-जल्दी आई। भूषण को देख उस ने कहा—"साथी, मुझे बड़ी भूख लगी है।"

भूषण ने मज़ाक किया—"मिस्ड दी बस—(अब गाड़ी निकल गई) अब जाओगी तो माई मारेगी।"

पारो ने कमरे में झांका और मुंह बना कर उत्तर दिया—"यू ह्व हैव नाट काट दी बस!"—(तुम्हें कौन जगह मिल गई ?)

"तो फिर एक ही साथ चलेंगे"

"तुम्हारे साथ तो कभी नहीं! चाहे दस बार पिछड़ना पड़े।"

"मुझे भी जल्दी नहीं है। देखा जायगा!"—भूषण ने मुस्करा कर कहा"

"देखा जायगा!"

इस परिहास से मनोरमा का मुर्झाया दिल भी मुस्करा उठा।

पारो ने मनोरमा को सम्बोधन कर भूषण की ओर संकेत किया—"कामरेड, यह आदमी बहुत परेशान करता है। एक तो इसकी लिखावट ऐसी है कि पूछो नहीं, फिर कांग्रेस, कानफ्रेंस,

कमेटी, कम्पनी की जगह सिर्फ con लिख देगा। टाइप करें कि इसका अर्थ लगायें।......रिपोर्ट लिखता है कि महाभारत लिखता है। एक गलती हो जाय तो फिर सब का सब दुबारा टाईप कराता है। जोशी का बोलना और इसका लिखना एक जैसा। यह लोग तो इशारे करते हैं। अरे,......जोशी आ रहे हैं।"

भूषण और मनोरमा ने घूम कर देखा, ठिगना सा व्यक्ति, खद्दर के ढीले-ढीले, खाकी निक्कर कमोज़ पहने, मोटे शीशे की ऐनक में से मिचमिची आंखें। दो दिन की हजामत चेहरे पर! मनोरमा को अपने निरुत्साह में भी इस व्यक्ति को देखने का कौतुहल था, जो देश भर की पार्टी का केन्द्र बना हुआ था। भूषण को देख जोशी ने कुछ कहा। मनोरमा समझ नहीं पाई। भूषण ने उत्तर दिया—"मैंने सब पूरा करके दे दिया।"

भूषण ने मनोरमा का परिचय कराया—"यह कामरेड मनोरमा हैं। हमारे लाहौर के अखबार में इन्हों ने काफ़ी काम किया है?"

"अब क्यों नहीं करतीं?"–मुस्करा कर जल्दी से जोशी ने पूछा।

मनोरमा उत्तर न दे सकी।

"बम्बई में आप कब आईं?"—जोशी ने उसे सम्बोधन किया।

"लगभग महीना हुआ"—मनोरमा ने उत्तर दिया।

"यहाँ आप क्या करती हैं?" उत्तर न पा जोशी ने प्रश्न दोहराया।

"मेरा विवाह यहाँ हुआ है।"–मनोरमा ने होंठ काट मुस्कराने का यत्न कर उत्तर दिया।

"क्या?"—भूषण की आँखें विस्मय से चमक उठीं–"कब?"

"महीना भर हुआ"—मनोरमा ने जोशी को उत्तर दिया।

"तुम तो नई दुल्हन नहीं जान पड़ती"—जोशी मनोरमा की पीठ पर बुजुर्ग की तरह हाथ रख हंस दिया।

"तुमने तो खबर ही नहीं दी!"—भूषण ने शिकायत की।

मनोरमा होंठ काट मुस्कराने का यत्न कर रह गई।

जोशी ने फिर हंस कर कहा—"तुम नहीं जानतीं, पार्टी मेम्बरों के विवाह में भी दखल रखती है।"

"वह मेम्बर तो नहीं थीं लेकिन मेम्बर के बराबर ही थीं"—भूषण ने सफाई दी।

"ओह !"—जोशी ने क्षमा सी माँगी—"तो अब आप बम्बई में हमारे साथ काम करेंगी। समय पर मेम्बर भी बन जायंगी। किस से विवाह हुआ है आपका ?"

"एच० बी० सुतलीवाला"

"पारसी जैन्टलमैन ?......कौन सुतलीवाला !"—जोशी ने भूषण की ओर देखा।

"मैं नहीं जानता।"

भोजन के लिये जोशी ने मनोरमा को अपने समीप बैठाया और उससे लाहौर के बारे में, लाहौर के साथियों के बारे में उसकी व्यक्तिगत राय पूछता रहा। उसके घर के बारे में प्रश्न किये। अपने घर की बात छोड़ दूसरी बात करने में मनोरमा को कोई आपत्ति न थी। जब जोशी स्वयं उस के और उस के घर के बारे में पूछने लगता मनोरमा का हाथ भोजन पर रुक जाता।

जोशी बोला—"यह खाना तुम्हें अच्छा नहीं लग रहा। पंजाबी हो न ?" जोशी ने एक ओर खड़ी माई को पुकारा-"माई, मेहमान के लिये थोड़ा दही नहीं है ?" मनोरमा के इनकार करते रहने पर भी उसके सामने कटोरी में दही रख दिया गया। खाना बुरा न लगने पर भी वह खा नहीं सकी और छोड़ देना सम्भव न था। किसी तरह उसने निगला।

"हम लोग अपने खाने के बर्तन स्वयं धोते हैं।"—जोशी ने बर्तन हाथ में ले उठते हुये कहा—"परन्तु मेहमानों के लिये यह नियम नहीं है। लाओ, तुम्हारे बर्तन मैं धो दूंगा।"—मनोरमा लज्जा गई—"नहीं नहीं !" उसने विरोध किया।

भूषण ने उसके हाथ से बर्तन लेने की चेष्टा की। वह अत्यन्त परेशानी और संकोच में बर्तनों को पीछे छिपा रही थी। उसके पीछे से पारो ने बर्तन छीन लिये। उसके बहुत विनय करने पर भी पारो ने बर्तन न दिये और उत्तर दिया—"एक दिन तुम्हारे घर खाना खाने आऊंगी। तब तुम्हारी बारी होगी !"

भोजन के बाद भूषण मनोरमा को फिर कामन रूम में ले आया।

वही एक कमरा था जहाँ दूसरों के काम में विघ्न डाले बिना उसे बैठाया जा सकता था। मनोरमा सोच ही रही थी कि अब वह चले। भूषण ने कहा—"पी० वी० के सामने मुझे रिपोर्ट पेश करनी है। दो घन्टे लगेंगे।"

"अच्छा मैं चलूं?"—मनोरमा बोली।

"जरूरी काम है?"

"कुछ भी नहीं"—मनोरमा के हृदय की निराशा ने कहा।

भूषण ने उत्तर दिया—"अगर ठहरो तो मैं तुम्हें छोड़ आऊंगा। आज मुझे तीन-चार घन्टे अवकाश रहेगा। सुनो, शादी की मिठाई नहीं खिलाओगी!"

मनोरमा का हृदय कह रहा था—"अपनी मौत की मिठाई!" परन्तु भूषण उत्साह में कहता गया—"तुमने हमारी लाइब्रेरी नहीं देखी। दो घण्टे तो वहाँ तुम्हें जान भी न पड़ेंगे। तुम वहाँ बैठो, फिर साथ चलेंगे।" भूषण ने लाइब्रेरी की अध्यक्ष मिसेज आपटे से मनोरमा का परिचय करा दिया। मिसेज आपटे ने पूछा—"आप पुस्तकों की तालिकायें देखेंगी या कोई खास पुस्तक किसी विषय पर चाहें तो मैं पढ़ने के लिये निकाल दूं?"

मनोरमा तालिकाओं का रजिस्टर ले उलटने-पलटने लगी लेकिन सोचती जा रही थी अपनी ही बात—शादी की मिठाई? अपनी मौत का जलसा! मर कर भी जिन्दा रह जाना और क्या होगा? वह वहां बैठी है सही परन्तु सुतलीवाला की पत्नि होने का वैधानिक और सामाजिक पिंजरा यहां भी उसे बांधे है। उस में और सुतलीवाला में सामान्य क्या है? वह सुतलीवाला की पत्नि है किस बात के लिये··· ? घृणा से उसका मन भर गया।

मनोरमा सोच रही थी, भूषण जिस आत्मीयता से आज मिला है ऐसे तो केवल कालिज में बात करता था। कैसे फट गया था? —मेरी किस्मत थी! नहीं तो मैं आज वहां न होती? पारो उसकी मित्र है। उसे पारो पर भरोसा है, मुझ पर न था। कितनी व्यर्थ बात उसने कही—"हमारे पंजाब की लड़कियां कितनी सुन्दर होती हैं!····तुम्हारे लिये तो पारो ही सुन्दर है? लेकिन जो कुछ वह कर रही है मैं क्या नहीं कर सकती थी? मेरा दिल रखने के लिये तुमने

कहा, मैं तीस घन्टे काम कर सकती हूँ ? कभी तुमने मुझे अवसर दिया ? क्योंकि मैं पूंजीपति परिवार में पैदा हुई हूँ इसीलिये तुमने मुझे अपना शत्रु समझ लिया।......पन्द्रह हजार ही था तो भी तुम तो उस में पन्द्रह वर्ष काट सकते थे ? और वहां ह्विस्की, क्लब, रेस और पैट्रोल में छः मास भी न कटेंगे ? वह रुपया बरबाद ही होगा।...होने दो ! मैं तो उस कुएँ में गिर चुकी हूँ, उस से राह नहीं है। शादी की मिठाई....अगर इस शादी का अर्थ जानते ?

तीन घन्टे पूरे हो चुके थे। वह सोचने लगी भूषण को शायद अभी फुर्सत न हो ! वह चले। उसका मन लेटने को हो रहा था। काठ की बैंच पर बिना किसी सहारे के बैठी-बैठी वह थक गई थी। किसी पत्र-पत्रिका में मन न लग रहा था। सोच रही थी, मिसेज़ आपटे को कहकर चली जाय ! परन्तु मिसेज़ आपटे चश्मे के गोल-गोल कांच रजिस्टर से ऊपर उठाती ही न थी। फिर एक घन्टी बजी। लोगों के हंसने बोलने की धीमी-धीमी सी आवाज़ें, आने लगीं। मिसेज़ आपटे बिना कुछ कहे उठ कर चली गईं।

दस मिनिट और बीत गये—"आप ही कामरेड मनोरमा हैं ?" किसी ने उसके पीछे से पुकारा।

मनोरमा ने घूम कर देखा—"जी !"

स्थूल शरीर अधेड़ व्यक्ति पंजाबी में बोला—"आप के लिये चाय लाया हूँ।" आलमोनियम का मग उसने मनोरमा के सामने रख दिया। भूषण को अभी कुछ और देर होगी। बस आधे घन्टे भर ! लाहौर में आप का मकान किस जगह है ? मैं लाहौर कई बार गया हूँ। आप हमारे अखबार में काम करती थीं ? बम्बई में किसी पंजाबी को देखने से बड़ी खुशी होती है लेकिन यहाँ का पानी अच्छा नहीं है। खाने को क्या मिलता है ? दूध बारह आने सेर ! वह भी पानी ! बिलकुल पानी ! हमारे यहां का तो पानी भी दूध है ! यहां का दूध भी पानी ! भूषण सदा बीमार रहता है। देखती हो, यहां क्या हाथ-हाथ भर के आदमी हैं लेकिन दिमाग अच्छा है इन लोगों का !" पंजाबी भाई प्रसन्नता से चमकती आंखों से कितनी ही बातें एक सांस में पंजाबी में कह गया—"अच्छा अब चलूं, फिर मिलेंगे ही। मैं यहां उर्दू अखबार में काम कर रहा हूँ।"

आधे घन्टे बाद भूषण आ गया—"क्या बताऊं देर हो गई। रिपोर्ट में कई बातें रह गई थीं लेकिन वी० टी० को जानती हो! वह तो मज़दूर आन्दोलन की जन्मपत्री घोटे बैठा है! अच्छा आओ अब चलें! यहां से बस में 'मैरीन ड्राइव' चलें, वहां से पैदल मालाबार-हिल चले जायंगे। तुम तो पैदल खूब चल लेती हो! धर्मशाला में याद है....!"—भूषण बच्चों की सी हंसी हंस दिया। मनोरमा स्वीकृति में होंठ दबाये चुप रही।

भीड़ से भरी बस में वह भूषण के साथ बैठी हुई थी। वह सड़क पहचानी हुई थी। कई बार सुतलीवाला के साथ वह कार में उधर से गई थी। भूषण बार-बार पूछ रहा था—"अच्छा सुनाओ, फिर कैसे हुआ? सब बताओ! बैरिस्टर का क्या हाल है? हां, वह सोमा?.......धनसिंह लौटा?" मनोरमा ने केवल अंतिम बात का उत्तर दिया—"धनसिंह नहीं लौटा।"—और कह दिया गाड़ी की खड़खड़ाहट से सुनाई नहीं देता।

"तुम्हें बस में बैठने की आदत नहीं है। मगर हो जायगी!" भूषण ने कहा।

पैदल लौटते समय मनोरमा ने सोमा के साथ बीती घटना संक्षेप में सुना दी। भूषण ने सहानुभूति से मुस्करा कर कहा—"उस स्त्री का जीवन भी एक समस्या है।" और फिर गम्भीर हो कर कहा—"नहीं हमारी सामाजिक समस्या का एक उदाहरण है सम्भवतः बरकत उसे ले गया है लेकिन बरकत उस का क्या करेगा? बरकत के लिये वह बहुत बड़ी चीज़ है। एक बार ऊंचे उठ आने पर फिर वह नीचे कैसे जा पायेगी? वह दूसरी ओर गिर सकती है लेकिन पहली राह पर नहीं लौटेगी? हो सकता है, यहीं बम्बई में ही हो? भागने वालों के लिये दो ही जगह हैं बम्बई या कलकत्ता?"

मनोरमा ने घर के बंटवारे की बात सुनाई। "घर की अवस्था तुम्हारे रहने लायक न रही थी" भूषण ने समर्थन किया।

"हूँ"

"ऐसी हालत में तुमने शादी कर ली?"

मनोरमा चुप!

"इन सुतलीवाला से परिचय कहाँ हुआ ?……लाहौर गया होगा ?" मनोरमा ने सिर हिला दिया।

"भला आदमी है ?……तुम खूब संतुष्ट हो न ?" मनोरमा सिर झुकाये चुप रही।

"तुम तो बेमतलब संकोच करती हो ? इसमें लज्जा की क्या बात है ?" मनोरमा सिर झुकाये चुप रही। भूषण लाहौर के दूसरे लोगों की बाबत पूछने लगा और मनोरमा उत्तर देती गई।

भूषण ने पूछा, "थक गई हो तो बस में चलें।"

"न" मनोरमा ने सिर हिला इनकार कर दिया।

दोनों पैदल चलते 'तिबत्ती' पहुँच गये। मनोरमा ने ऊपर बाग में चलने की इच्छा प्रकट की ! 'हैंगिंग गार्डन' में जा दोनों एक बैंच पर बैठ गये। सूर्य अस्त हो चुका था। कालिमा लिये नीले समुद्र पर पश्चिम की ओर सूर्यास्त के लाल मेघों की लाल प्रतिच्छाया तैर रही थी। पीछे की ओर पहाड़ी के नीचे बम्बई शहर खिलौनों की बड़ी भारी दुकान की भाँति फैला हुआ था। संध्या समय हैंगिंगगार्डन प्रायः खाली हो चुका था। भूषण ने प्रश्न किया— "तुमने अपनी शादी और पति के विषय में कुछ नहीं बताया !…. कैसी निभ रही है ?" मनोरमा के आंसू बह आये। उसने आंचल से मुंह ढांप लिया।

भूषण स्तब्ध रह गया—"मुझे बहुत खेद है मन्नो !"—उस ने अंग्रेजी में कहा—"रहने दो ! मैं कुछ नहीं पूछूंगा।" मनोरमा को और भी जोर से रोना आ गया। आज भूषण ने तीन बरस बाद उसे 'मन्नो' कह कर पुकारा था। वह उसे मिस सरोला पुकारने लगा था। मनोरमा को वह सदा गाली जैसा लगता था। "गार्डन बन्द होने का समय हो रहा है। आओ चलें !"—भूषण ने उसे चुप करने के लिये कहा।

मनोरमा ने आंसू पोंछ लिये और आंसू भीगे आँचल को छिपा लिया। लौटते हुए उसने संकोच से पूछा—"तुम्हें बुरा तो नहीं लगा।"

"क्यों ?"

"मुझे रोना आ गया"—मनोरमा ने मुस्कराने का यत्न किया ।

"वह मेरी गलती थी। आओ तुम्हारे मकान पर पहुंचा दूं । मुझे दूर जाना होगा ।"

"पारो राह देखती होगी ?"—मनोरमा ने चुटकी ली ।

"वह चुड़ैल अपने प्रेमी वेंकटा को चिट्ठी लिख रही होगी । दो दफे इनके विवाह की तारीख नियत हो चुकी है परन्तु वेंकटा को छुट्टी ही नहीं मिलती । वह ट्रावनकोर में फंसा हुआ है !"

"क्या ?"—मनोरमा ने विस्मय प्रकट किया—"कम्युनिस्ट भी शादी करते हैं ?"

"क्यों"—वैसे ही भूषण ने उत्तर दिया—"कम्युनिस्ट आदमी नहीं हैं ?" "अच्छा, यह क्या नई पार्टी लाइन है ?"

भूषण हंस दिया—"तुम मज़ाक कर रही हो । कम्युनिस्टों के लिये क्रान्ति एक या दो वर्ष के लिए स्वराज्य के संघर्ष का कार्यक्रम नहीं है कि स्वराज्य के बाद ही विवाह करने की प्रतिज्ञा कर लें या स्वराज्य होने तक नमक नहीं खायें, जूता न पहनें । संघर्ष और क्रान्ति को जीवन भर निभाहने के लिये जहाँ तक सम्भव हो, जीवन को साधारणतः स्वस्थ और प्राकृतिक बनाये रखना जरूरी है ।"

"यह कब समझ में आ गया ?"—मनोरमा का स्वर रूखा था ।

"सब कुछ समझा समझाया तो कोई पैदा नहीं होता । पूर्ण ज्ञानमय तो भगवान ही हैं और उनसे कम्युनिस्टों का परिचय नहीं ।"—भूषण ने परिहास का उत्तर वैसे ही स्वर में दिया ।

वे तिब्बत्ती पर लौट आये । नेपियर रोड की ओर घूमे, नेपियर रोड से रहीमतुल्ला स्ट्रीट की ओर । मनोरमा सोच रही थी, सुतलीवाला आ गया होगा । शायद भोजन के लिये प्रतीक्षा में ह्विस्का पी रहा होगा । क्या कह कर परिचय कराऊंगी ? ऊपर बराम्दे में कोई नहीं था । बैरे ने मेज कुर्सियां लगा दी थीं । ऊपर आ मनोरमा ने पूछा—"साहब नहीं आया ।" मनोरमा ने शान्ति अनुभव की ।

भूषण ने बराम्दे में कुर्सी पर बैठ कर कहा—"बहुत सुन्दर जगह है । कितना अच्छा दृश्य है । तुम बहुत चली हो । थक गई होगी !"

"नहीं तो।""खाना मँगाऊ, खाना खा लो !"

"खा लें ?"......लेकिन कम्यून में माई को खबर नहीं दी है। वह डांटेगी। चलो डांट खा लेंगे। वह तो डांटती ही रहती हैं।"—भूषण हंस दिया।

मनोरमा ने बैरे को पुकार कर कहा—"खाना लाओ। साहब भी खायेगा।"

बैरे ने धीमे से पूछा—"ड्रिंक ?"

मनोरमा ने प्रश्न से भूषण की ओर देखा।

"नहीं नहीं"तुम लेती हो ?""तुम लेलो !"—भूषण ने उत्तर दिया।

"पागल हो"—मनोरमा हँस दी—"वो लेते हैं।"

खाने के बाद मनोरमा ने कहा—"चलो तुम्हें छोड़ आऊं !"

"क्या ?"—भूषण ने विस्मय से पूछा—"इतनी दूर ?"

"तो यहां क्या करूंगी ?"बैरा एक टैक्सी बुलाओ !"

मनोरमा भूषण को सैण्डहर्स्ट रोड पहुँचा कर टैक्सी में लौटी। दस बज रहे थे। सुतलीवाला अब भी नहीं लौटा था। कपड़े बदल वह बिस्तर में लेट गई। काफ़ी चलने-फिरने और बातचीत करने से मन कुछ हलका हो गया था। उसे झपकी आ गई। आहट से उसकी नींद खुली। सुतलीवाला होठों से सीटी बजा कर कोई तान गा रहा था। वह आँखें मूंदे चुप लेटी रही। पति के कपड़े बदलने की आहट आई और वह अपने पलंग पर लेट गया। बाहर बराम्दे में से क्लाक में दो बजने की आहट आई।

प्रातः उठकर मनोरमा नहा धो चुकी थी। सुतलीवाला तब भी गहरी नींद सो रहे थे। मनोरमा की इच्छा हुई एक प्याली चाय ले। फिर सोचा—जब एक साथ रहते हैं तो यों एक दूसरे से कतराने और बचने से कैसे चलेगा ? सैकड़ों लोगों की, अधिकांश लोगों की जिन्दगी रोते झगड़ते ही बीतती है। हमारी भी बीत जायगी। वह चाय के लिये पति की प्रतीक्षा करती रही। सुतलीवाला के गुसलखाने से निकलने पर मनोरमा ने पूछा—"नाश्ता करके बाहर जाओगे न !"

"बहुत अच्छा"—उसने स्वीकार कर लिया।

वे आपस में अंग्रेज़ी ही बोलते थे। नाश्ते के समय सुतलीवाला ने कहा—"मुझे खेद है, मुझे यह बिलकुल ध्यान नहीं रहा कि तुम्हें खर्चे के लिये ज़रूरत होगी। घर का सामान है, आने जाने में टैक्सी भाड़ा होता है। चाहो तो गाड़ी तुम रख लिया करो ! मैं तो स्वयं ही गाड़ी चलाता हूँ। तुम्हारे लिये ड्राइवर रख लें !"

"क्या ज़रूरत है ? मुझे कभी कहीं जाना होता है तो टैक्सी मिल जाती है।"—मनोरमा ने उत्तर दिया।

अच्छा यह तो रख लो, सुतलीवाला ने डेढ़ सो रुपया बटुए से निकाल उसकी ओर बढ़ा दिया।

मनोरमा ने इनकार किया—"अभी तो मेरे पास हैं।"

"फिर भी कुछ रहना अच्छा होता है।"—उसने आधे नोट मनोरमा के सामने रख दिये और वह कहता गया—"मैं भयंकर संघर्ष का सामना कर रहा हूँ। पूंजीवादी संघर्ष का ! फिल्म-उद्योग के यह बड़े-बड़े जमे हुये ठेकेदार नये उठते लोगों को अपने फील-पांव के नीचे कुचल देना चाहते हैं। मेरी पिछली फिल्म—"रैन बसेरा" का बाज़ार खराब करने में इन लोगों ने कोई कसर नहीं रखी। यह लोग चाहते हैं, मैं इनकी ही फिल्मों की एजेंटी करता रहूं। इनके लिये बड़े-बड़े मुनाफे कमा कर दूं लेकिन मेरे पास रुपया लगाने वाले पूंजीदार हैं, गाहक हैं; और आर्टिस्ट हैं। मैं रुपये में एक आना क्यों लूं ? मैं मेहनत करता हूँ, चार आना लूंगा !"

मनोरमा ने उत्तर दिया—"रैन-बसेरा फिल्म मैंने देखी नहीं। कैसी है ?" उत्साह से सुतलीवाला ने उत्तर दिया—"बड़ी काम-याब फिल्म है। बाक्स पिक्चर है, ज़रूर देखो। बम्बई से तो अब चली गई। यहाँ तीन महीने चली थी। उसमें मधु का घरेलू नाच है। नवकली, शेरजंग, नूरअहमद ने काम किया है। तीन डांस और नौ गाने, ज़रा सोचो !"

"लेकिन हमारी फिल्मों में प्रायः कला कम और कुरुचि अधिक रहती है।"—सहमते हुये मनोरमा बोली। उसकी बात काट कर सुतलीवाला ने गम्भीरता से कहा—"किताबी आर्ट के उस ख्याल से बिज़नेस नहीं चल सकता। यह तो बिज़नेस का आर्ट है।"

"असली आर्ट को लोग पसन्द नहीं करेंगे ?"—मनोरमा ने पूछा। "कर सकते हैं; न भी करें ? मैं दूसरे के चार लाख रुपये की बाज़ी कैसे लगा दूं ? मैं तो चालू सिक्का चलाऊंगा। अनजाने माल का सट्टा कौन करे ? दो-चार जाने हुये एक्टर, दो चार अपनी समझ के सस्ते, जो चीजें पसन्द हो चुकी हैं उन का ही नया मेल ! बस !"

"मैं कुछ सहायता कर सकती हूँ ?"—अनिच्छा से मनोरमा ने पूछा।

"ज़रूर ! समय आने पर बताऊंगा। तुम्हारा स्वभाव और प्रवृत्ति दूसरी है परन्तु फ़िर बहुत सहायता कर सकती हो। अवसर पर कहूँगा। तुम जानती हो, मैं पूर्ण समानता, स्वतंत्रता और परस्पर सहयोग में विश्वास रखता हूं। किसी भी तरह की मजबूरी में नहीं। आज संध्या क्लब चलोगी ? चलना हो तो मुझे फोन कर देना।" सुतलीवाला चला गया और मनोरमा फिर उदास हो गई। वह कम्यून की बात सोच रही थी। वहाँ उसे काम करने का अवसर मिले तो खूब मेहनत से काम करे ? बार-बार मन में आता कि फ़ोन कर भूषण से बात करे कि उसे कम्यून में कोई काम में करने के लिये मिल सकता है या नहीं परन्तु संकोचवश कर न पायी। चौथे दिन मनोरमा से रहा न गया। उसने दोपहर बाद भूषण को पार्टी आफिस में फोन किया—"मैं मिलना चाहती हूँ, तुम्हें फुर्सत होगी ?"

"छः बजे के बाद फुर्सत होगी" भूषण ने उत्तर दिया—"सात बजे तक पहुँच सकूंगा।" तय हुआ कि मनोरमा छः बजे फोन करे। यदि भूषण को फुर्सत हो गई तो मनोरमा टैक्सी लेकर उसे पार्टी आफिस से ले लेगी। छः बजे भूषण ने उत्तर दिया—"तुम आ जाओ !"

भूषण के गाड़ी में बैठ जाने पर टैक्सी ड्राइवर ने प्रश्न किया—"किस तरफ !" भूषण ने उत्तर के लिये मनोरमा की ओर देखा—"मैं कुछ आवश्यक सलाह लेना चाहती हूँ। किसी ऐसी जगह चलो जहाँ बैठ कर बात कर सकें।" मनोरमा ने कहा।

"वालकेश्वर !"—भूषण ने ड्राइवर को उत्तर दिया।

बालकेश्वर सड़क पर एक ईरानी रेस्टोरां के समीप मोड़ पर भूषण ने टैक्सी रुकवा दी। मालाबार हिल की पहाड़ी की चढ़ाई पर जाती एक सड़क की ओर संकेत कर भूषण ने कहा इधर चलें। पेड़ों की घनी छाया में कुछ दूर जाकर चमेली की लता के कुंज के नीचे पड़ी बेंच पर वे लोग बैठ गये।

मैं कुछ काम करना चाहती हूँ। चाहे अखबार में काम मिल जाय या कोई और दूसरा !"—मनोरमा बोली।

"तुम्हारा मतलब है, पार्टी का काम ?"—भूषण ने पूछा।

"हाँ"

"मुश्किल है। पार्टी मेम्बरों और वह भी अपने प्रांत या ज़िले से खास सिफ़ारिश से भेजे गये मेम्बरों के सिवा कम्यून में जगह नहीं मिल सकेगी !"

"मैं रहने के लिये नहीं कह रही हूँ।"

"मैं समझ रहा हूँ... काम करने के लिये; वही बात कर रहा हूँ !" "तुम्हें कुछ करना ही होगा !"—अपनी उंगली पर रूमाल लपेटते हुये मनोरमा ने आग्रह किया—"तुम मेरी शादी की बाबत पूछ रहे थे न ? मैं खाई में गिरने के डर से भागी थी, कुयें में गिर पड़ी।"

"बात क्या है ?"

"क्या बताऊं ? मैं इस आदमी को जानती ही कितना थी। भाई का दोस्त है। एक बार हमारे यहाँ ठहरा था। फिर मंसूरी में एक ही होटल में थे। व्यवहार में बहुत सज्जन है। बात भी अच्छी करता है। इसने भाई को लिख कर विवाह की बात की। उस समय घर की स्थिति से मैं इतनी विक्षिप्त थी, कहीं भी भाग जाने के लिये उतावली। मेरी किस्मत फूटी थी। मैंने इसे तार दे दिया कि स्वीकार है। खुद ही पन्द्रह दिन के भीतर सिविल मैरेज का प्रबन्ध कर लिया लेकिन अब देखती हूँ, हम लोगों में कुछ सामान्य नहीं। उस घर में रहना मेरे लिये असह्य है। यदि दिन में कोई संतोष के लायक काम पा जाऊं तो समझूंगी, रात होटल में काट रही हूं।"

"मेरी बात को अन्यथा तो नहीं समझोगी।"

"तुम पर भरोसा है?"

"केवल असह्य परिस्थितियों से भागने के लिये, बहलावे के लिये पार्टी का काम करना चाहती हो?"

"क्यों, लाहौर में मैं काम नहीं कर रही थी? तुम मेरे विचार जानते हो।"

'पर तुम पार्टी मेम्बर नहीं बनी?"

"तुमने नहीं बनाया!...क्योंकि तुम्हें मुझ पर विश्वास न था।"

"क्या कह रही हो?"—भूषण का स्वर पिघल रहा था।

"ठीक कह रही हूं। अब पुरानी बातें न उठाओ! नहीं तो यह सब क्यों होता?" मनोरमा भूषण की ओर से आंखें बचाये कहती जा रही थी—'तब तुम कहते थे कि तुम्हारे लिये जीवन में संघर्ष के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। तीन दिन हुये तुमने कहा कि कम्युनिस्ट स्वस्थ, साधारण जीवन से ही आजीवन संघर्ष निभा सकता है।"

"मैंने कुछ और भी तो कहा था।"

"क्या?"

"कि कोई भी व्यक्ति समझा-समझाया पैदा नहीं होता।"

"मनोरमा रो पड़ी।"

"मनो क्या कर रही हो?"—भूषण ने उस का हाथ थाम लिया।

"तुम मेरे लिये पार्टी आफिस में काम का प्रबंध कर दो।"

"तुरंत कैसे हो सकेगा? मेरे चाहने पर भी बहुत जल्दी नहीं हो सकेगा।"

"क्यों नहीं हो सकेगा? तुम जोशी से कहो। मैं भी कहूँगी। सब लोग जानते हैं, मैं लाहौर में काम करती थी, वहाँ पूछ लें!"

"जोशी नियम के विरुद्ध क्या कर सकता है?"

"तो फिर मैं मर जाऊं? बिना किसी प्रयोजन के अपने आप को गलाती जाऊं, यातना सहती जाऊं?"

"हो जायगा लेकिन पहले बम्बई पार्टी में तीन चार महीने काम करो। लोग तुम्हें जान जायें !"

"मैं तो उन लोगों को जानती नहीं !"

"वह मैं कर दूंगा परन्तु अगर सुतलीवाला को कोई एतराज हुआ तो ?"

"हुआ करे। मैं करूं क्या ? मैं उससे चोरी क्यों करूं ? अपने आप को यों मारने से अच्छा है मैं इस पहाड़ी से कूद पड़ूं, समुद्र में समाप्त हो जाऊं ! मैं स्वयं अपने से घृणा कर जीवित नहीं रह सकती ! मैं उन लोगों के बीच रहना चाहती हूं जिनसे विचारों की समता हो।"

"वह तो हो ही जायगा। इसी भावना से मंगलम और पारो अपनी रियासत के उत्तराधिकार पर लात मार कर पार्टी का काम कर रहे हैं। इसी सवाल पर साकिना का पति से विच्छेद हो गया। व्यक्ति की न्याय बुद्धि इन सब व्यवधानों से बड़ी है लेकिन तुम मेरे प्रति जो अन्याय कर रही हो।"

"मैं अन्याय कर रही हूँ ?"

"तुमने कहा, मुझे तुम पर विश्वास नहीं था ?"

मनोरमा ने प्रतिकार के स्वर में कहा—"सन ३६-३८ में तुम्हारा क्या व्यवहार था। ३६ और ४० में कैसा रहा ? तुम मुझे शत्रु श्रेणी में समझते थे।" भूषण की ओर देखे बिना अपनी चप्पल नीचे पड़े पत्थर पर दबा कर वह बोली—"व्यक्ति क्या श्रेणी से अलग नहीं हो सकता ? क्यों सोमा......?"

"सोमा बैरिस्टर का खिलौना ही तो बनी....? हुआ क्या...? मैं ऐसी मूर्खता नहीं कर सकता था। उस अवस्था में तुम्हारी श्रेणी तुम्हें ठुकरा देती या मुझे खराब लेने की कोशिश करती। या हम दोनों व्यवस्था के विरुद्ध व्यक्तिगत रूप में लड़ने के मज़ाक में शहीद बन जाते ?

"फिर तुम वही बातें क्यों करते हो ? तुम जानते हो, मैं उस श्रेणी से घृणा करती हूँ, उससे बचना चाहती हूं, क्या कुछ मैं मांग रही हूँ ?" मनोरमा कुछ झुँझला सी उठी। मनोरमा के क्रोध के उत्तर में भूषण हँस दिया—"वह बचपन का चिलबिल्लापन था जो सुन्दर खिलौना देखा, उसी के लिए मचल गये।"

"ह्वाट डू यू मीन ? (क्या मतलब) तुमने मुझे खिलौना ही समझा था" चुटिया कर मनोरमा ने प्रश्न किया।

"नहीं भई, उस तक मैं स्वयं आशामय कल्पना के लोक में था। अनुभव ने बताया कि मेरे जीवन की सम्भावनायें क्या हैं? हम दोनों दो पृथक श्रेणियों के व्यक्ति थे" —भूषण ने उत्तर दिया— "लोगों में अमीरों की लड़कियों से प्रेम करने की महत्वाकांक्षा प्रायः ही होती है। इसे वे आत्मोन्नति का उपाय समझते हैं!"

"अब भी वह द्वेष बना है?"—निराशा के स्वर में मनोरमा बोली—"अब मैं अमीर नहीं हूं।"

"द्वेष के कारण को मिटाना हो तो उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। उस कारण को दूर कर देना चाहिये।" भूषण ने बहुत आश्वासन के स्वर में उत्तर दिया।

× × ×

सुबह के नाश्ते के समय मनोरमा ने सुतलीवाला से कहा— "मेरी इच्छा है कुछ सार्वजनिक कार्य में भाग लूं? लाहौर में भी मैं कुछ न कुछ किया ही करती थी।"

सुतलीवाला ने समर्थन किया—"मैं स्वयं ही सोच रहा था कि तुम्हें कहूं। सोच रहा था कि बम्बई के समाज में तुम्हारा कुछ परिचय हो जाय! सामाजिक स्थिति के लिये यह बहुत आवश्यक है। कारोबार और व्यवसाय में भी व्यक्ति और परिवार की सामाजिक और सार्वजनिक स्थिति का बहुत प्रभाव पड़ता है। एक जाने-माने आदमी की बात का मूल्य होता है। परिचय के लिये कभी-कभी क्लब में चला करो! कोई सभा वगैरः होगी तो उसके लिये निमन्त्रण मँगवाने का भी ख्याल रखूँगा।"

मनोरमा सप्ताह में दो बार क्लब गई। सुतलीवाला ने उसे ग़रीब बच्चों के लिये दूध का प्रबन्ध करने के लिये बनी सम्मानित स्त्रियों की कमेटी का मेम्बर बनवा दिया। उस कमेटी में वह जाती परन्तु नियमित रूप से वह भूषण द्वारा कराये परिचय के आधार पर वह चर्नीरोड स्टेशन के समीप गिरगाँव में एफ. एस. यू. (सोवियट मित्र संघ) के पत्र और संगठन में काम करने के लिये संघ के कार्यालय में जाती थी।

संघ के पाक्षिक पत्र के प्रकाशन की तारीख आजाने के कारण कार्यालय में काम अधिक था। मनोरमा दोपहर के खाने के लिये न लौटी। संध्या समय कार्यालय की अध्यक्षा-कामरेड नीता से केवल एक घण्टे की छुट्टी लेकर वह मकान पर आई थी। भूषण ने आने के लिये कहा था और मनोरमा भूख से भी बेचैन हो गई थी। उसके पहुँचते ही भूषण आ गया और बैरे ने खबर दी साहब कई बार फोन कर चुके हैं। बोले हैं कि मेम साहब आयें तो दफ्तर में फोन कर लें।"

मनोरमा ने फोन पर सुतलीवाला से बात की। सुतलीवाला ने कहा—"खुशकिस्मती है कि तुम लौट आई। मैं मुसीबत में पड़ जाता! आज मैंने पाँच बजे एक्ट्रेस मधु और सेठ बदनिया को चाय के लिये 'ताज' में निमंत्रण दिया है। मैं उन लोगों से तुम्हारा परिचय कराना चाहता हूँ। अभी पैंतालीस मिनिट हैं। कपड़े बदल कर टैक्सी मँगवा कर तुम यहाँ आ जाओ।"

भूषण ने देखा फोन का चोगा कान पर रखे मनोरमा के चेहरे पर चिंता झलक आई। सिर खुजलाते हुए वह बोली—"मैं आती तो अवश्य परन्तु मैं एक बहुत ज़रूरी काम के लिये आदमियों से वायदा कर आई हूँ। यदि मैं वहाँ नहीं पहुंचूगी तो स्थिति बहुत खराब हो जायगी? मैं उन्हें क्या उत्तर दूंगी? मुझे बहुत दुःख है।"

सुतलीवाला ने अपने स्वर में बल देकर आग्रह किया—"मुझे तुम्हारी अपाइन्टमेण्ट के बारे में कुछ मालूम नहीं था। मैं कह चुका हूँ कि तुम आओगी। सोचो, मेरी क्या स्थिति हो जायगी? इस का असर दूसरी बातों पर भी गहरा पड़ सकता है।" मनोरमा ने निरूत्तर हो फोन रख दिया। भूषण चाय का प्याला होंठों के सामने थामें कौतुहल से उसकी ओर देख रहा था।

रूआंसे से स्वर में मनोरमा ने कहा—"बताओ मैं क्या करूं? किसी तरह नहीं मानता! उस पार्टी में मेरी क्या ज़रूरत है? ऐक्ट्रेस मधु और सेठ बदनिया को मैं क्या जानती हूँ? यह बिल-कुल असह्य है? कल कामरेड नीता क्या कहेंगी?"

"नीता प्रसन्न होकर तारीफ़ तो नहीं करेगी परन्तु तुम कर सकती हो?…वह पति के अधिकार का उपयोग कर रहा है?"

मनोरमा अत्यन्त खिन्नता से कपड़े बदलने के लिये भीतर जा रही थी। यह सुन वह विरोध में फिर कुर्सी पर बैठ गई—"क्यों दुखाते हो, अपमान क्यों करते हो ?"—मनोरमा ने आंचल से मुंह ढँक लिया।

"अपमान कैसे ?"—भवें उपर उठा कर भूषण ने प्रश्न किया। मनोरमा उत्तर दिये बिना उठी और आँखें पोंछती हुई भीतर चली गई। भूषण प्याली में ठंडी हो गई चाय से घूंट भरता रहा।

मनोरमा बाहर आई। वह बहुत सादी, सफेद परन्तु कीमती साड़ी पहने थी और गहरे लाल रंग का ब्लाउज़। कपड़े पहनने में अनुत्साह अनिच्छा और बेपरवाही झलक रही थी। केश भी कुछ उड़े-उड़े से थे। चेहरे से आंसुओं के दाग दूर करने के लिये उसने मुंह धोकर पाउडर और आँखों में सुरमा भी लगा लिया था। देख कर भूषण मुस्करा दिया।

"क्यों ?"—मनोरमा ने पूछा।

"हम लोगों के यहाँ आती हो तो साधनी बन कर !"

"तो !"

"अब अप्सरा बनकर जा रही हो। पैसे का सम्मान है न !"

"तुम लोगों के यहाँ ऐसे जाऊं तो आँखें उठाना मुश्किल हो जाय।···क्यों, क्या बहुत ग्लार (भड़कीली) लग रही हूं ?"

क्या कह रही हो !······वेरी चार्मिंग !

"पागल !······चलो, टैक्सी तक मेरे साथ चलो !" टैक्सी में बैठ मनोरमा ने कहा—"फोर्ट तक साथ चलो, वहाँ से इसी टैक्सी में तुम कम्यून चले जाना। यह लो"—उसने दस रुपए का नोट भूषण की कमीज की जेब में खोंस दिया और फिर संकोच से पूछा—"सच कहो, मैं झुंझलाहट में थी, बहुत बेतुकी तो नहीं लग रही हूं इन कपड़ों में ?"

मैं इससे अधिक अच्छी की कल्पना नहीं कर सकता ? बच कर रहना सेठ लोगों से !"

"धत्त··!" और फिर सोच कर बोली—"जानते हो, पशु को बलि के लिये सजा-धजा कर ले जाते हैं।"

"पशु को बलि के लिए ले जाया जाते देखे तो बचा लेना चाहिये !"

"जो ऐसा करेगा उस पर समाज, धर्म, नीति, आचार, संस्कार और व्यवस्था का नाम लेकर टूट पड़ेगा।"

सुतलीवाला और उसके नियंत्रितों को ताज में चाय पीते और बात करते साढ़े छः बज गये। चाय के समय सुतलीवाला मधु और वदानिया को अपनी नयी फिल्म कम्पनी की योजना समझाता रहा। वह कम्पनी में एक्ट्रेस मधु, एक्टर शेरजंग और नूरूल की पत्ति रखना चाहता था। सुतलीवाला का सुझाव था, वदानिया दो लाख लगायें, मधु का पचास हज़ार का, शेरजंग और नूरूल का पच्चीस-पच्चीस हजार हिस्सा हो। मधु नकद न देकर पहली फिल्म में काम करने के कंट्रेक्ट से रकम कटा दे। शेरजंग और नूरूल भी यही करें। इस तरह कम्पनी की पूंजी अपने आप चार लाख हो जायगी। सुतलीवाला मैनेजिंग डाइरेक्टर का काम करे। उसके काम का हिस्सा पचास हज़ार हो! चाय के बाद सेठ वदानिया और सुतलीवाला ने इतनी बुद्धि से बातचीत करने की थकावट दूर करने के लिये ह्विस्की ली, मनोरमा और मधु के लिये शेम्पेन मंगाई गई। सेठ जी, सुतलीवाला और मधु के बहुत आग्रह करने पर मनोरमा ने दो घूंट पिये परन्तु बुरा न मालूम होने पर भी उसने छोड़ दी।

सेठ जी ने प्रस्ताव किया—"डिनर एक साथ हो!"

मधु ने भयार्त स्वर में कहा—"यह कैसे हो सकता है? मेरा तो आठ बजे से शूटिंग है।"

"ओहो, इसका मतलब है कि आपको पहुंचाना होगा?"—सुतलीवाला ने पूछा।

"हाय इतनी दूर अकेले कैसे जाऊंगी?"—कातरता से मधु बोली।

"हम छोड़ आयेंगे।"—सुतलीवाला ने आश्वासन दिया।

"तो भाई हम अकेले रह जायेंगे?"—सेठ जी मुस्कराये।

"नहीं सेठ जी"—मनोरमा की ओर देख कर सुतलीवाला ने कहा—"तुम सेठजी के साथ ठहरो। हम मधु को छोड़ आते हैं।

मनोरमा के उत्तर की प्रतीक्षा न कर सुतलीवाला जेब से गाड़ी की चाबी निकाल उसे उंगली पर हिलाते हुए उठ खड़ा हुआ।

"तो फिर डिनर कहां हो ? सेठ जी ने सुतलीवाला को सम्बोधन किया—"हमारा ख्याल है"—हमारे यहां 'मेरीन ड्राइव' पर कैसा रहेगा ?" और मनोरमा की ओर देख कर बोले—"आप हमारी जगह भी देख लेंगी। आप भी वहीं लौटिये।"—सेठ जी ने सुतलीवाला की ओर देखा।

"बहुत ठीक फर्माया सेठजी आपने"—सुतलीवाला ने समर्थन किया।

मनोरमा सेठ जी की गाड़ी में मैरीन ड्राइव पहुंची। तीसरी मंजिल में जाने के लिये लिफ्ट था। मकान के नौकर शायद मालिक की प्रतीक्षा नहीं कर रहे थे। सेठ जी ने आते ही उन्हें आवश्यक हिदायतें और आज्ञायें दीं। मनोरमा ने ड्राइंगरूम में काउच पर बैठते ही पूछा—"सेठानी जी से नहीं मिलाइयेगा ?"

"वे लोग, बाल-बच्चे तो सब काल्बादेव में ही रहते हैं।" उत्तर दे सेठ जी मनोरमा के समीप काउच पर बैठ गये। मनोरमा सेठ जी के लिये जगह करने के लिये काफ़ी दूर हट गई। उसे सहसा इतना निस्संकोच अच्छा न लगा। परे हट कर उसने पूछा—"आप यहां अकेले रहते हैं ?"

"अकेले क्या ? आप हैं तो ?······आप के साथ यहां भीड़ लाने से क्या फायदा ?" सेठ जी मुस्करा दिये। मनोरमा चुप रह गई। कुछ सोचा और बोले बिना वह कमरे से बाहर निकली और लिफ्ट पर पहुंच बटन दबा नीचे उत्तर आई। सेठ जी देखते रह गये।

× × ×

मनोरमा अपने मकान पर पहुंच दो घंटे तक बराम्दे में ही बैठी सुतलीवाला की प्रतीक्षा करती रही। सुतलीवाला के आने पर आधा मिनिट दोनों ही एक दूसरे के बोलने की प्रतीक्षा में चुप रहे। मनोरमा से न रहा गया—"मैं नहीं समझती थी, रुपये के लिये कोई आदमी इतना गिर सकता है ?"

"क्या मतलब है तुम्हारा ?"—कड़े, गम्भीर स्वर में सुतलीवाला ने पूछा।

उसकी ओर घूर कर मनोरमा ने उत्तर दिया—"मतलब तुम नहीं समझते ? उस आदमी की बैठक में मुझे अकेले भेजने में तुम्हारा क्या अभिप्राय था ?...वहां उसकी स्त्री भी नहीं थी ! चाय पर तुम मुझे साथ ले गये, वह अपनी स्त्री को क्यों नहीं लाया ?"

"अकेले से क्या मतलब है ? तुम्हें नहीं मालूम था कि मैं पांच-दस मिनिट में लौट रहा हूँ ! मुझे क्या मालूम था कि रास्ते में पहिये से हवा निकल जायगी !"—वह और भी ज़ोर से बोला—"तुम क्या अब तक पर्दे में रहती आई हो ? तुम क्या दूसरे आदमियों के साथ नहीं आती-जाती ? तुम्हें मिलने यहां आदमी नहीं आते ? दिन भर तुम अपने मित्रों के साथ रहती हो ? आज मैंने एक मित्र को निमंत्रण दिया तो तुम उस पर बवंडर खड़ा कर रही हो ? क्या किया उसने ? बताओ मैं वहीं से आ रहा हूँ ? बताओ मुझे क्या किया उसने ? तुम्हारे घूमने, फिरने, मिलने पर मैंने कभी रोक नहीं लगाई ? तुम मेरी कोई बात सहन ही नहीं कर सकती तो साथ रहने का फायदा क्या है ?"—उसका स्वर कड़वा और कड़ा हो गया—"या यह तरीका था बम्बई में अपने दोस्तों के पास पहुँचने का ?"

मनोरमा ने बहुत कुछ कहने के लिये सोचा था परन्तु आखीरी बात के बाद उसके मुंह से शब्द न निकल सका। उसने जंगले पर सिर रख दिया और आंखें झुका लीं। सुतलीवाला उसकी परवाह न कर ज़ीना उतर कर वापिस चला गया। नीचे गाड़ी के चलने की आहट हुई और गाड़ी बंगले से बाहर चली गई। मनोरमा बैठी रही। रात के दो बज गये। वह उठी और कपड़े बदले बिना, कुछ ओढ़े बिना आंखें मूंदे पलंग पर लेट गई। उसे मालूम न हुआ सुतलीवाला कब लौटा। सुबह उसकी आंख खुली तब तक गाढ़ निद्रा में अपने पलंग पर सो रहा था।

मनोरमा नहा धोकर बाहर बराम्दे में बैठी अपनी किस्मत की बात और बचाव की राह सोच रही थी। सुतलीवाला उठा और उसकी ओर लक्ष किये बिना, नाश्ता किये बिना नीचे उतर गाड़ी ले चला गया। बैरे ने मनोरमा के लिये नाश्ता लगा दिया। रात भी उसने खाना नहीं खाया था। शरीर में निर्बलता जान पड़ रही थी। उसने कुछ खाया कुछ चाय पी। मन में ख़याल आया, मैं

यहां क्यों खाऊं-पीऊं? वह तो कहता है कि मैं दोस्तों से मिलने के लिये उससे शादी का बहाना करके बम्बई आ गई।

मनोरमा को खयाल आया था—यदि घर के सुनेंगे तो क्या कहेंगे? मैं तो अपनी इच्छा से शादी करके आई हूँ। तार देकर शादी करके आई हूँ। मुझे घर से निकाल कर उन्हों ने स्वयं शादी करने का अपराध मेरे सिर डाल दिया—अब यह भी मुझे अपने प्रयोजन का न समझ घर से निकाल मुझ पर कुलटा होने का लांछन लगा देने की व्यवस्था कर रहा है। वाह रे समाज के कुचक्र! मुझ से चाहे जो भूल हुई हो, यहाँ से निकलना मेरे लिये मुक्ति ही है। लेकिन जाऊं भी तो कहाँ? कम्यून में भी तो मेरे लिये जगह नहीं। मूर्खता से ठोकरें खाने वालों को वे लोग क्यों रखेंगे? वहाँ तो चतुर लोगों की ज़रूरत है। सहसा उसे खयाल आया। कल संध्या उसके एफ० एस० यू० के दफ्तर में बिलकुल न लौटने से यदि काम रह गया होगा तो कामरेड नीता क्या कहेगी? नीता की गहरी नीली साड़ी, कुछ उड़ते-उड़ते रूखे बाल, गर्दन के सामने लटकता थैला और उसके कुछ लम्बे सांवले चेहरे पर अपनी ओर घूरती हुई आँखें मनोरमा को दिखाई दे गईं। नीता का सर्कस में हाथियों को नचाने वाले हंटरबाज मास्टर जैसा व्यवहार, जिस में ठीक और सही से रोम भर की कमी पर भी हंटर तड़ाक से बोल उठता है!······ नीता क्या कहेगी?

मनोरमा ने सोचा, यहाँ बैठ वह रोने के सिवाय क्या करेगी। कई दिन से वह घर से ओपेरा तक पैदल ही जा रही थी। प्रायः ही उसे ट्राम और बस पर या पैदल चलने वाले साथियों के सामने टैक्सी पर जाने में संकोच अनुभव होता था लेकिन आज बहुत निर्बलता अनुभव हो रही थी। वह टैक्सी पर गई और दफ्तर से पचास कदम इधर ही उतर गई। कमरे में घुसते ही नीता दिखाई दी। तुरंत उसकी निर्मम आवाज सुनाई दी—"यह दिखाई दिया है अब ईद का चाँद! जिसके लिये हैडआफिस के बहुत जिम्मेदार व्यक्तियों की बड़ी-बड़ी सिफ़ारिशें और तारीफें थीं! जिनकी मेहरबानी से अखबार चौबीस घंटे लेट हो गया!"—नीता कहती गई—"कल मदनपुरा में मीटिंग के बाद आठ बजे घर पहुँच कर खयाल आया कि बेचारी लड़की अकेली प्रूफ़ देख रही

होगी। आकर देखती हूँ तो यहाँ कोई है ही नहीं। जयराम के यहाँ जाकर जनाब के घर फोन किया! मालूम हुआ कि जनाब पांच बजे से घर से गई हैं। दिल में डर लगा कहीं कोई दुर्घटना न रास्ते में हो गई हो। कम्यून में भूषण को फ़ोन किया। मालूम हुआ कि बेगम साहिबा अपने शहनशाह खाविन्द की पार्टी की शोभा बढ़ाने गई हैं। खाविन्द की पार्टी की शोभा न बिगड़े, हज़ारों पब्लिक अखबार के लिये इंतज़ार करती रह जाये! जब मुझ से जवाब मांगा जायगा कि अखबार क्यों पिछड़ गया, मैं ईद के इस चाँद को दिखाऊंगी कि मुझे इनकी रोशनी में जो काम करना है! मन की मौज से काम करने वालों से यहाँ काम नहीं चलता लेडी साहिबा! यह ड्यूटी है! स्वयं स्वीकार की हुई ड्यूटी का जिम्मेवारी आप नहीं समझतीं!" नीता बोलती ही जा रही थी। गनीमत यह थी कि साथ काम करने वाले दूसरे लोग अखबार का काम समाप्त हो जाने के विश्वास में दफ्तर में नहीं आये थे। नीता स्वयं ही प्रूफ़ देख रही थी।

मनोरमा स्कूल की निर्दय अध्यापिका से डांट खाती हुई अपराधिनी लड़की की तरह चुप खड़ी थी। नीता ने कागज़ों पर आँखें झुका लीं। मनोरमा खड़ी ही रह गई। नीता कागज़ों में ऐसे आँखें गड़ाये रही जैसे सामने कोई है ही नहीं। कुछ मिनिट बाद उसने मनोरमा की ओर देखा "लेडी साहिबा, आप क्या खड़ी रहने के लिये ही आई हैं? शायद आप प्रतीक्षा में हैं कि मैं आप से बैठने के लिये अनुरोध करूं और क्षमा मांगूं। यह नहीं होगा! मैं अनुशासन पर चलती हूँ! अनुशासन तुमने तोड़ा है!"

मनोरमा ने आंचल से मुंह ढंक लिया। उसका शरीर रुलाई से कांप रहा था। नीता मेज के पीछे कुर्सी से उठ कर मनोरमा के समीप आ खड़ी हुई। उसके दोनों हाथ कमर पर थे, जैसे हाथापाई के लिये तैयार हो! "आखिर तुम बोलती क्यों नहीं? बात क्या है? किसी ने तुम्हें परेशान किया है?"—वह अब भी उसी स्वर में बोल रही थी—"तुम मुझे बताती क्यों नहीं जी?" नीता मनोरमा को बांह से पकड़ खींचती हुई गुसलखाने में ले गई। उसका बटुआ छीन, एक ओर रख हुक्म दिया—"मुंह धोओ!" मनोरमा सम्भल नहीं पा रही थी। नीता दीवार में नल के नीचे

लगी चिलमची की ओर उसे खींच वह स्वयं ही उसका मुंह धो देना चाहती थी। मनोरमा ने कहा—"ठहरिये" और मुंह धोने लगी। मनोरमा गुसलखाने से निकली तो देखा, नीता फिर मेज पर काग़ज़ देख रही थी।

"यहीं आ जाओ"—एक कुर्सी दिखा नीता ने कहा। उसका स्वर बदल गया था। "थोड़े से काग़ज़ और रह गये हैं। इन्हें झटपट समाप्त कर दें। बड़ी खुशामद से प्रेस खुलवाया है वर्ना आज रविवार है बाकी सब प्रूफ़ मैं भेज चुकी हूँ।" नीता ने चपरासी की ओर देखा—"छोकरा, चाय लाओ!"

चाय आने तक प्रूफ़ समाप्त हो चुके थे। नीता ने कहा—'छोकरा यह प्रूफ़ प्रेस में ले जाओ और पूछो, कितना हो गया?" मनोरमा ने चाय की प्याली की ओर आँखें लगाये बीती रात की पूरी घटना सुना दी।

अंग्रेज़ी में गाली देकर नीता बोली—"वह रुपये का कुत्ता कौन होता है तुम पर लांछन लगाने वाला?" दीर्घ निश्वास ले मनोरमा ने कहा—"मेरा ख्याल है, वह मेरे और अपने दृष्टिकोण में कोई समता न देख मुझ से पीछा छुड़ाना चाहता है।"

"पीछा छुड़ाने का क्या मतलब?"—क्रोध में नीता बोली—देखूंगी मैं पीछा छुड़ाने वाले को? उसे तुम्हारा मेन्टीनेन्स (गुज़ारा) देना होगा। तुम्हें दहेज वगैरह में कुछ मिला होगा?......तुम्हारे पिता की आर्थिक हालत कैसी है?" मनोरमा ने बताया दहेज कुछ भी नहीं मिला परन्तु पन्द्रह हज़ार रुपये के चेक खुद अपने नाम के उसने सुतलीवाला को दिये हैं। नीता को और भी क्रोध आ गया—"देखूंगी मैं पीछा छुड़ाने वाले को! उसे मेंटीनेंन्स देना पड़ेगा।" नीता के मन में मनोरमा के प्रति और अधिक ममता और कौतुहल जगा। मनोरमा ने घर की स्थिति से परेशान हो उतावली में सुतलीवाला से शादी कर लेने की अपनी भूल भी उसे बता दी!

नीता और अधिक खिन्न हो उठी—"तुम्हारी जैसी कायर लड़कियों के साथ ऐसा ही होना चाहिए। तुम्हें चाहिए था, घर वालों के अन्याय का मुकाबिला करना। ऐसे आदमी के साथ

रहने का मतलब क्या ? तुम्हें तलाक ले लेना चाहिए और ईमानदारी और इज़्ज़त से जीवन बिताना चाहिए। तुम मेरे साथ यहाँ इसी मकान में रहो, देखूँगा तुम्हें कौन परेशान करता है ?" नीता ने मनोरमा के सामने ही उसकी करुण कथा अपने कामरेड पति को सुनाई और स्वयं ही निर्णय दे दिया—"तलाक ले लेना ही इसके लिए सम्मानजनक उपाय है, मानते हो न तुम !"

वासेकर ने चिन्ता से हाथ की उंगलियाँ चटखा कर कहा—"तलाक के मुकद्दमें से हमेशा परेशानी होती है। तलाक के लिए कारण क्या ? राजनैतिक या सैद्धान्तिक मतभेद के कारण तलाक नहीं हो सकता। तलाक के लिए तीन कारणों में से एक चाहिए, या तो पति का दूसरी स्त्री से सम्बन्ध हो, या वह नपुंसक हो, या पत्नि पर मारपीट करता हो !" नीता ने मनोरमा की ओर देखा। मनोरमा ने आँखें झुका अंग्रेज़ी में उत्तर दिया—"मेरे विचार में तो आखिरी बात छोड़ कर सभी कुछ है।"

"क्या ?"—विस्मय और भय प्रकट करने के लिये नीता बहुत लम्बा साँस खींच वासेकर की ओर देख बोली—"है जुल्म, असह्य जुल्म लड़की के साथ ! मनोरमा, तुम्हें हर हालत में इस अपमान और गन्दगी से पल्ला छुड़ाना है, एक दम जब सब तथ्य सामने है ?" उसने हाथ फैला दिये, जैसे तथ्य उसकी हथेली पर रखे हों।

"तथ्य से काम नहीं बनता, तथ्यों को प्रमाणित करना होगा अदालत में। प्रमाण और गवाही चाहिये।"—वासेकर ने फिर कहा—"मनोरमा अदालत में जाकर यह सब कहेगी ?"

"क्यों नहीं"—नीता ने ज़ोर से मेज़ पर हाथ पटक दिया।

मनोरमा ने इनकार से सिर हिला दिया।

नीता का क्रोध बढ़ गया—"तो तुम्हें मुसीबत से कौन बचा सकता है ? जब स्वयं मुसीबत के गले से चिपटी रहो।" नीता के क्रोध के कारण मनोरमा के असंतुष्ट जीवन की चर्चा पार्टी क्षेत्र में फैल गया। मनोरमा इस बदनामी से संकुचित हो सिमटी जा रही थी। नीता की दृष्टि में यह संकोच पूंजीवादी संस्कृति का पाखण्ड मात्र था। वह निरंतर ज़ोर दिये जारही थी कि मनोरमा इस गंदगी से निकले।

लेकिन भूषण की राय थी कि अभी चुप रहे। ऐसी स्थिति आसकती है कि अदालत में छीछालेदार हुए बिना झगड़े से मुक्ति हो जाय—"मैं नहीं चाहता" - उसने कहा कि "अखबारों में मोटे अक्षरों में खबर छपे कि कम्युनिस्ट युवति का नपुंसक पति को तलाक ! और फिर नीता के पास कौन डाक्टर है जो आवश्यक सार्टिफिकेट देगा ?"

घर पर सुतलीवाला और मनोरमा में बात-चीत बन्द हो गई। खाने का समय दोनों का अलग अलग हो गया। पन्द्रहवें दिन सुतलीवाला बैरे के पास उसके लिये एक लिफाफ़ा छोड़ जाता जिसमें सौ रुपए रहते थे। इसी तरह महीने बीते, एक वर्ष बीता और दूसरा बीत रहा था। मनोरमा पार्टी की मेम्बर भी बन गई परन्तु काम उसका नीता के साथ ही रहा। नीता को छोड़ कर किसी दूसरे काम में हाथ लगाने की इच्छा उसने न की।

७

शरण का मूल्य

लाहौर स्टेशन पर बुरका पहने गाड़ी में बैठ जाने के बाद सोमा ने आँखें पोंछ लीं। उसने निश्चय कर लिया कि अब रोएगी नहीं। बरकत ने समझा दिया था कि गाड़ी में रोती जायगी तो साथ के मुसाफिरों को संदेह होगा। कहीं पुलिस बीच में आ पड़ी तो दोनों हथकड़ियों में बंधे फिरेंगे।

रोने से कुछ लाभ न था। सोमा अब रोती तो किसे दिखा कर और किसके लिये ? जो कुछ वह छोड़ आई थी, जहाँ से उसे निकाल दिया गया था, जिसे छोड़ते समय मर जाने के अतिरिक्त उसे कोई उपाय न सूझता था, उसकी ओर लौटने के लिए वह अब तैयार न थी। उस बीते हुये, सहे हुये भयानक अनुभव से अनजाने का भय कहीं अधिक कम था। कोई आशा या कल्पना भविष्य के सम्बन्ध में उसके मन में न थी। वह केवल सिर पर आ पड़े संकट से शरण चाहती थी। उसे याद आ रहा था, बैजनाथ तहसील की कचहरी में जब पुलिस धनसिंह को जेल में डाल देने के लिये पकड़ ले गई थी, वह सड़क पर बैठ सब लोगों के सामने फूट-फूट कर रो उठी थी। उसे याद आ रहा था, लोग घेर कर उसका तमाशा देख रहे थे। आज चाहे जान निकल जाय, वह उस तरह का तमाशा बनने के लिये तैयार न थी। गाँव की सोमा मर चुकी थी अब दूसरी सोमा थी, भले घर की गृहस्थ, धोखा खाई हुई, परिवार से निकली हुई विधवा।

बरकत सावधानी के लिये सोमा को लेकर लाहौर स्टेशन से रात के समय चला। गाड़ी में बैठते समय और उसके बाद एक

घण्टे तक सोमा बुरका पहने रही ! बरकत ने कहा था, लाहौर से निकल जाने के बाद फिर किसी पहचानने वाले का डर नहीं। तुम बुरका उतार कर कपड़ों में लपेट लेना। डाक गाड़ी अपनी तेजी और उतावली प्रकट करने के लिये धुआंधार चाल से अनेक प्रकार के शब्द करती हुई लोहे की पटरियों पर थिरकती, फिसलती अजाने अंधेरे को चीरती जाने कहाँ चली जा रही थी। छोटे-छोटे स्टेशन झपाटे से पलक मारते में निकले जा रहे थे। गाड़ी के एक बार चलने और थमने में दिनों का सफर तय होता चला जा रहा था परन्तु गाड़ी फिर भी चलती जारही थी। कहीं-कहीं स्टेशनों के प्रकाश में दिखाई देने वाले लोगों के चेहरों और भाषा में अन्तर आता जा रहा था परन्तु सोमा की पथराई हुई आँखें कुछ देख न रही थीं। उसका सुन्न मस्तिष्क कुछ सोच नहीं रहा था। बरकत ने उसे कहा था कि वे दोनों बम्बई जा रहे हैं। उसे यह मालूम था कि बम्बई बहुत दूर है। कितना दूर है, यह वह नहीं जानती थी। जितनी भी दूर हो ! उसे दूर और समीप से क्या लेना था। उसे कौन लौट कर आना था।

गाड़ी में भीड़ बहुत अधिक थी, धक्कम-धक्का था। लगभग दो बरस पहले जब सोमा धर्मशाला से लाहौर आई थी तो दूसरी तरह की गाड़ी थी, सैकंड क्लास। सब लोगों के लिये लेटने-सोने के लिये गद्दे थे, कोई धक्का न देता था, भलमनसाहत थी। यहाँ धक्के ही धक्के थे, झगड़ा था। बरकत ने उसे बिलकुल एक कोने में, काठ की बेंच पर लाकर बैठा दिया था और साथ खुद बैठ गया था। सोमा उसके स्पर्श से बचने के लिये सिमटी बैठी थी। बरकत ऊँघाने लगा परन्तु सोमा आँखें मूंदे या आँखें खोले, सजग सिमटी बैठी रही। बरकत ने अपनी बांई ओर धक्के दे दे कर कुछ जगह बना ली थी। उसने सोमा से लेट जाने को कहा। सोमा घुटने समेटे लेट गई। बरकत स्वयं बैठा रहा। नये मुसाफिर आते और धक्के देकर साथ बैठना चाहते। बरकत आस्तीन चढ़ा कर लड़ने के लिये तैयार हो जाता—"देखते नहीं हो, जनाना है ?" सोमा बरकत की रक्षा में जा रही थी, बरकत उसे ले जा रहा था।

दिन निकल चुका था। कोई बहुत बड़ा स्टेशन था। बरकत

ने बताया, देहली है। सोमा ने कुछ भी ध्यान नहीं दिया, जो भी हो। भीड़ चढ़ी आ रही थी। बरकत चौकसी पर था कि सोमा के लिये सुरक्षित जगह पर कोई बैठ कर परेशान न करे। इन बारह घण्टों में सोमा अपनी जगह से हिली न थी। बरकत ने पूछा कुछ खाने के लिये लाऊं? सोमा को कुछ खाये पिये दो दिन रात बीत चुके थे फिर भी उसने इनकार में सिर हिला दिया। बरकत ने उसके सिर के पास सिर कर ममता से समझाया—"क्या पागल हो! ऐसे क्या आदमी ज़िन्दा रह सकता है? हाथ मुंह धोओगी?"

सोमा ने स्वीकार कर लिया। बरकत टोंटीदार लोटा साथ लाया था। वह प्लेटफार्म से जल ले आया। उस लोटे को देख कर ही सोमा का मन सिकुड़ गया। एक दिन मुसलमान के हाथ बिक जाने की कल्पना से उसके प्राण निकलते थे। आज वह मुसलमान का हाथ थामे रक्षा की भिक्षा मांग रही थी। वह उसके लोटे का कैसे करती? लाचार थी। उसने खिड़की के बाहर हाथ-मुंह धोया परन्तु उस लोटे से कुल्ला न कर सकी। बरकत उसके लिये मिट्टी के कुल्हड़ में चाय ले आया। मुसलमान का छुआ कुल्हड़ था। मन ही मन बहुत बुरा लगा परन्तु चाय उसने पी ली। भभेरा में उसे मुसलमान से असीम भय और घृणा थी। उसने मुसलमानों को गूजरों के रूप में ही देखा था। सुना था कि उनके छूने से धर्म भ्रष्ट हो जाता है, वे लोग सभी बुरे काम करते हैं परन्तु लाहौर में साहब की कोठी पर उनके कई मुसलमान दोस्त आते थे। उनसे कोई परहेज़ न था। वे घर के बरतनों में खा-पी जाते थे। केवल मां जी और भाभी को यह अच्छा न लगता था। कुछ और स्टेशन बीत गये। बरकत ने एक हिन्दू पूरी वाले को बुला लिया। सोमा ने कुछ पूरी खाई। फिर वह बदने का पानी! उसका गला सूख रहा था। मन ने कहा—"क्या है?" पराजय स्वीकार करने की उपेक्षा से सोमा ने पानी पी लिया।

काठ का डिब्बा लोहे की पटरियों पर तेज़ी से सरकता दक्षिण-पश्चिम की ओर भागा जा रहा था और खेत, गांव, जंगल, पहाड़ दूसरी ओर को। सोमा ने एक बार भी नहीं पूछा कि बम्बई कब पहुँचेंगे, कितनी दूर है? वह काठ के सकरे तख्ते पर सिमटी बैठी

रही। फिर रात आई। सोमा घुटने समेटे गहरी नींद सो गई। फिर दिन चढ़ा। काठ का डिब्बा चलता ही जा रहा था। अब सोमा का मन कुछ-कुछ चेतने लगा। वह क्या करेगी? उत्तर भी सीधा था—जो कुछ करना पड़ेगा, करेगी? बरकत उसके समीप बैठा था। उसका इतने समीप बैठना सोमा को अच्छा नहीं लग रहा था परन्तु दुनिया के और सब आदमियों से तो वही उसका जाना-पहचाना था। दुनिया के भय और उसके बीच वही तो एक आड़ और सम्बन्ध था। बरकत लाहौर में जैसा छिछोरापन किया करता था वैसी कोई बात उसने गाड़ी में न की। केवल आवश्यकता की ही बात पूछता था। कभी खिड़की से सिर निकाल रेल की ताल पर गुनगुनाने लगता और कभी बिलकुल चुप गम्भीर बना रहता। शायद वह स्वयं ही सोच रहा था, क्या करना होगा?

मझेरा से आ धर्मशाला में इतने आदमी देख कर सोमा को विस्मय हुआ था। लाहौर में वह विस्मय आतंक के रूप में अनुभव हुआ और बम्बई में विक्टोरिया पर चढ़ कर बाज़ारों में से गुज़रते समय दोनों ओर उतने ऊंचे मकान, अनन्त सड़कें, गलियां और असंख्य रूप के स्त्री पुरुष देख कर उसकी विचार और कल्पना शक्ति जड़ हो गई। इस जमघट में वह केवल बरकत को ही पहचानती थी। धक्कों में खो जाने की आशंका से वह उसके घृणित हाथ को पकड़े न रहती तो क्या करती?

बरकत ने सोमा को नल बाज़ार के पास एक छोटे से हिन्दू होटल में टिका दिया। समझाया कि पूछने पर अपने आप को बरकतराम की बीबी बताये और कहे कि बीमार है, इलाज के लिये के पंजाब से आये हैं। चोरी-चकारी से सावधान रहने के लिये ताकीद कर ठिकाने का पता करने चला गया। दो रातें सोमा को होटल के तंग कमरे में गुज़ारनी पड़ीं। बरकत दिन में दो बार घंटे-घंटे भर के लिये ही और रात में भी काफी देर से आता। सोमा प्रतीक्षा कर रही थी, क्या होता है? बरकत उसके लिये तीन चमकीली साड़ियां सस्ते दाम की ले आया था। उसने रात में बैठ कर सोमा को समझाया कि तुम्हारे लिये सिनेमा में नौकरी ढूंढ़ रहा हूँ। ऐसी नौकरी मिल जायगी तो सैकड़ों रुपया तनखाह मिलेगी। कोठी-बंगला, मोटर-गाड़ी, नौकर-चाकर सब हो जायगा,

राज करोगी! घबराओ मत! दो-चार दिन की बात है। वह सोमा से नम्रता और खातिरदारी से पेश आ रहा था।

× × ×

बरकत बम्बई में पहले भी तीन वर्ष रह चुका था। नगर से काफ़ी परिचित था।

स्कूल में पढ़ते समय ही बरकत की महत्वाकांक्षा सिनेमा का एक्टर बन जाने की थी। उसे विश्वास था, एक्टर के लिये जितने गुण आवश्यक हैं, सुन्दर-रूप, सुगढ़ डोल-डौल, चुस्ती-फुर्ती, अदा और लियाकत, उसमें सब मौजूद थे। जब वह सिनेमा के गाने हू-बहू तर्जों में गाता, लड़के उस पर फ़िदा हो जाते। घर पर जब वह अपनी कोठड़ी से गाता, पड़ोस की औरतें चिकों या खिड़कियों की आड़ से सुनने लगतीं। मन की इस धारणा के कारण उसने सिर पर केश भी कुछ बढ़ा लिये थे। कलमें कनपटियों से उतरी हुईं, लम्बी-लम्बी कटवा ली थीं और मूंछें, जितनी कुछ अभी निकली थीं, ऊपर से साफ कर होंठों के किनारे पर महीन रेखा सी बना ली थीं। मुहर्रम के मौके पर सिलवाई काली कमीज़ को मौके-बेमौके सफ़ेद पतलून के साथ पहनता। शरीर यों भी अच्छा था तिस पर कंधे ज़रा पीछे खींच कर चलता। सैर सपाटे के समय कलाई पर रूमाल बांधे रहता और हाथ भर का एक डंडा हाथ में लिये रहता। बात करते समय गर्दन ज़रा तिर्छी हो जाती और सिर को हलका सा झटका दे ज़ुल्फ़ें माथे पर छितरा लेता।

बरकत के पिता बीस बरस से बिजली घर में दफ्तरी थे। तरक्की होते होते उन्हें गुज़ारे लायक तनखाह, पैंतालिस रुपये माहवार, मिलने लगी थी। उन्हें आशा थी लड़का कायदे से एंट्रैंस पास कर लेगा तो मेहरबान लोगों की दया से उसे कहीं न कहीं नौकरी पर लगवा देंगे। बरकत के शरीर की उठान और रूप अच्छा होने के कारण उसका ब्याह आठवीं कक्षा में पढ़ते समय ही हो गया था। इस ब्याह की कल्पना से बरकत को उत्साह न हुआ था। उसका विचार था कि उसका ब्याह फिल्म में शाहज़ादी से ब्याह करने वाले लकड़हारे की तरह होना चाहिये या किसी

लखपती की लड़की उस पर फिदा हो जायगी। वह उसे मोटर साइकिल पर लेकर फट-फट करता हुआ भागेगा, लोग पीछा करेंगे, मार-पीट होगी, लखपती की लड़की उसके सिवा दूसरे से व्याह नहीं करेगी। तब लखपती अपनी एक कोठी दहेज में देकर अपनी लड़की से उसकी शादी कर देगा।

लेकिन व्याह बरकत के निर्णय से नहीं उसके बाप और मां के निर्णय से हुआ। तब बरकत उन्नीस बरस का था। उससे छोटी एक बहन थी और फिर दो और भाई। मां की तबीयत खराब रहती थी। बरकत की बहन ज़ोहरा घर का काम सम्भालती थी। पन्द्रह बरस की उम्र में जब ज़ोहरा ससुराल चली गई, घर का काम सम्भालने के लिये बरकत की मां को बहू घर में लाने की उजलत ने परेशान कर दिया। बहू भी उसने ऐसी चुनी जो घर का काम सम्भाल सके।

सकीना के बाप चार बरस पहले अफ़्रीका चले गये थे। गाँव लौटकर देखा तो लड़की मां से ऊंचा सिर निकाल रही थी। कितनी ही और बातें भी अस्पष्ट रूप से सुनी। उन्होंने लड़की के व्याह की जल्दी की। अमृतसर में अपने साले के चचेरे भाई मियां लियाकत का लड़का बरकत उन्हें पसन्द आ गया। शादी हो गई। अपनी विदेश की कमाई में से काफ़ी रुपया भी उन्हों ने दहेज़ में दिया।

बरकत जब पहली रात सकीना से मिला, उसके दिल में कई अरमान और प्रोग्राम थे। सकीना सुस्त और उदास थी। वह चाहती थी उसे छेड़ा न जाय। छलकती जवानी से भरी लड़की को पहली बार पाकर बरकत के लिये निश्चेष्ट बैठे रहना उसकी सब कल्पनाओं का खून था। उसने सिनेमा के पैंतरों से अपने अधिकार का उपयोग करना चाहा। वह सकीना को चुटकी काट कर मुस्करा रहा था कि सकीना के अंगूठियां पहने पूरे हाथ का एक थप्पड़ उसके गाल पर आ पड़ा और साथ ही एक गाली भी सुनाई दी।

बरकत और सकीना दोनों ही जवान थे। सकीना देहात की सत्रह बरस की जवान लड़की और बरकत शहर का उन्नीस बरस का लड़का। फिर भी बरकत मर्द था और सकीना औरत। बरकत

ने उसे गालियाँ दे खूब पीटा। सकीना ने भी दबी आवाज़ में गालियाँ दीं और लातें मारीं। गाल की हड्डी पर पड़ गये अंगूठी के निशान के कारण बरकत कई दिन तक पगड़ी बांध कर शमले से गाल ढंके रहा। साथियों को सुनाने के लिये उसे अंधेरे में एक अनजाने बदमाश से मार-पीट होने की कई कहानियां गढ़नी पड़ीं। बरकत का दिल सकीना से फट गया। उसने अनुमान किया, बदचलन है। वह हरामजादी का कत्ल कर देगा! फिर सोचा, एक और बीबी ऊपर से लाकर बैठा देगा और सकीना को सारी उम्र बांदी बना कर रखेगा। औरत के सम्बन्ध में मिठास और रहस्य की जो कल्पना बरकत के दिल में थी वह विकृत हो गई। वह स्त्रियों के बारे में सतर्क हो गया। उसके विचार में स्त्री से खेलना सांप से खेलना था। स्त्री को छूने के बजाय दूर से पुचकारने-चटकारने में ही उसे अधिक संतोष होता।

सन १९३९ में बरकत के वालिद का इंतकाल हो गया। एंट्रेंस पास कर सकने में अभी एक बरस बाकी था। स्कूल के मास्टरों का जैसा रवैया था, पास हो जाने का उम्माद न था। पास होकर मुंशी जी बन जाने और दिन भर दफ्तर में बिता कर सांझ को रूमाल में तरकारी बांधे, सिर लटकाये, टाट के परदे से ढंके दरवाजे पर लौटने के क्रम की ज़िन्दगी बरकत को मंजूर न थी। वह मुंशी बनने के लिये नहीं बल्कि फिल्म के संसार में मजनू और देवदास बनने के लिये पैदा हुआ था। वह विचारक की भाँति सोचता था—एक्टर दुनिया में शहनशाह की ज़िन्दगी का मज़ा भी ले सकता है और घसियारे की ज़िन्दगी का भी। एक ज़िन्दगी में बीसियों ज़िन्दगियां! दुनिया का साथ उठाकर तो कोई ले नहीं जाता, जो खा-पी, पहन-ओढ़ लिया, मज़ा कर लिया, वही अपना है। मरे पीछे सौ हवेलियां भी छोड़ गये तो वह अपने किस काम की। बढ़िया से बढ़िया मकान, हसीन से हसीन औरतें, पोशाकें एक्टर के लिये हैं? कितनी हसीन और कमसिन औरतों को उसका बग़लगीर होना पड़ता है! उसकी अदायें और दिलेरियां कितनी पर्दापोश रानियों और बंगलों में रहने वाली मेमसाहिबाओं के दिल चुरा लेती हैं। ज़िन्दगी के कितने दौर एक साथ! भरपूर और तेज़...! उसे प्रायः सभी प्रसिद्ध और सफल अभिनेताओं

और अभिनेतृयों के नाम याद थे। उनकी आमदनी भी वह जानता था, उसका मन चाहता था, एक बार किसी तरह उड़ कर बम्बई पहुँच जाय; फिर वह होगा और सिनेमा की स्टेज !

बरकत सबसे घनिष्ठ और विश्वस्त मित्र रेलवे के मिस्त्री मियां नसीरुद्दीन का लड़का जमील था। बरकत ने अपने सुख स्वप्न जमील को सुनाये। जमील भी उस स्वप्न राज्य में पहुँचने के लिये बेचैन था। उसकी भी आर्थिक स्थिति अच्छी न थी। बरकत ने मां की खुशामद कर, हजारों रुपये कमा कर भेजने का वायदा कर, रूठ कर, भाग जाने की धमकी देकर १५०) लिया और कुछ अपनी बीबी के ज़ेवर हथिया लिये। बरकत और जमील ने बम्बई स्वप्न राज्य के लिये प्रस्थान कर दिया। दोनों ने मलाद, सांताक्रूज़ और दादर में सिनेमा स्टूडियो के चक्कर लगाये परन्तु स्टूडियो के पठान और गोरखे दरबान बहिश्त के दरबानों इज़राइल और जब्राइल से भी अधिक चौकस और बेमुरव्वत थे। अपना सब रुपया खत्म कर के भी वे लोग स्टूडियों के भीतर पांव न रख सके परन्तु दोनों नौजवान अपनी तपस्या में दृढ़ रहे। उन्हें भीतर जाने का अवसर मिल ही गया।। दोनों को सिनेमा के रेस्तोरां में जगह मिल गई। महीनों ह्विस्की-सोडे के गिलास और चाय की प्यालियां और तश्तरिया धोने के बाद उन्हें यहां मालूम हुआ कि अभी लोगों की नज़रों में उनकी उम्र कम है और सिनेमा की दुनिया में फरिश्ता बन सकने के लिये एक हूर का होना निहायत जरूरी होता है। सिनेमा की दुनिया में हूरों की कीमत फरिश्तों से कहीं ऊंची पड़ती है।

सिनेमा कम्पनी के मालिक की गाड़ी के ड्राइवर पंजाबी राजपूत मुसलमान मुरीदखां ने एक दिन बरकत और जमील को बहुत फटकारा—"पठान होकर यहाँ भडुओं और रंडियों की जूठन धोते हो···!" वह दोनों को ले गया और एक मोटर के कारखाने में नौकर करा दिया। जमील तो मिस्त्री का काम सीखने लगा परन्तु बरकत को वह काम पसन्द न था। कुछ दिन उसने कारखाने में नौकरी की और फिर एक टैक्सी वाले का क्लीनर बन ड्राइवरी सीख लेने पर उसे बस कम्पनी में नौकरी मिल गई परन्तु वह उससे निभी नहीं। टैक्सी चलाने में ही उसे अच्छा

लगाना, आज़ादी रहनी और मित्रों में बैठ शेखी मारना –'यार, आज एक परी को घुमाने ले गया! इतनी फ़िदा हो गई कि टैक्सी से उतरना ही नहीं चाहती थी। किराया देने लगी तो हमने आंख मार कर मुस्करा दिया। दस-दस के दो नोट दे गई। अपने बंगले पर आने को कहती थी!" ऐसी कहानी सुना कर उसे सचमुच ऐसा सुख पाने का संतोष होता। वह सिनेमा से सम्बन्ध रखने वाले लोगों के यहाँ चक्कर लगाता रहता। कभी एक्ट्रेसों को मुफ्त सवारी दे देता।

बीमार हो जाने के कारण बरकत को पंजाब लौटना पड़ा। घर पहुँचा तो हालत अच्छी न थी। एक भाई मिल में 'गेट-कीपरी' पर नौकर हो गया था। छोटा एक रिश्तेदार की सहायता से एक करघे के कारखाने में पन्द्रह रुपये पाता था और काम सीख रहा था। मां पहले से अधिक बीमार थी। उसकी औरत को लेकर काफ़ी झगड़ा हुआ था। सकीना के मां बाप कहते थे, "लड़का बदचलन और अवारा है। लड़की को सुसराल वाले तंग करते हैं।" सकीना चचेरे भाई के व्याह में गांव गई तो फिर लौटी ही नहीं। अफ़वाह थी कि बड़े चचेरे भाई ने उसे 'चादर डाल' कर घर में बसा लिया है और कहता है जिसे हिम्मत हो ले जाय! बरकत को अमृतसर में रहना अच्छा न लगा। लाहौर में नौकरी की तलाश में उसने बैरिस्टर सरोला को कई सर्टिफिकेट दिखाये। उन्हों ने उसे ड्राइवर रख लिया। बरकत बम्बई लौटने और सिनेमा में काम करने के अरमान दिल में लिये था।

* * *

होटल में दो रातें बिताने के बाद बरकत सोमा को 'महीम' ले गया। जमील ने उसे अपने पड़ोस की खाली 'खोली' (कोठरी) दिलवा दी और राशन कार्ड भी बनवा दिया। बम्बई में राशनकार्ड के बिना आटा-दाल भी न मिल सकता था। मुहल्ले में कई तिमंजली चालें (इमारतें) आमने-सामने समानान्तर बनी थीं। नीचे की मंजिल में प्रायः नागरा जूती बनाने वाले जोधपुरी मोची रहते थे। एक-एक खोली में कई-कई परिवार। जब तक सूर्य का प्रकाश रहता मोची और मोचिनें बरामदों में बैठे जूतियाँ सिया करते। मर्दों के जूती बेचने चले जाने पर भी स्त्रियां जूती बनाती रहतीं।

एक-एक खोली में कई-कई चूल्हे जलते थे। पूरी चाल धुयें से काली थी। नहाने धोने और मांजने में बहा जल चाल के सामने बह-बह कर सदा कीचड़ बना रहता। हर मंजिल में साँझे गुसलखाने और संडास थे। सामने मोचियों के कपड़े पशुओं की खालों की तरह और मोचिनों के बड़े-बड़े लाल काले लहंगे बहुत बड़ी-बड़ी छतरियों की तरह सूखते रहते। इन कपड़ों और कच्चे चमड़े की बदबू से चाल गँधाती रहती।

चालों की ऊपर की मंजिलों में मोचियों से अच्छी आर्थिक और सामाजिक स्थिति के कारखानों में काम करने वाले मज़दूर ग़रीब क्लर्क, और ड्राइवर आदि रहते थे। इन खोलियों में भी कई-कई आदमी और परिवार एक साथ रहते थे। वहीं मनुष्य जन्म लेते और बीमार और बूढ़े पैदा होने वालों के लिये स्थान छोड़ मरते भी रहते। जमील बरकत के लिये तीन परिवारों के साथ एक खोली में रहने का प्रबंध सस्ते में कर सकता था परन्तु बरकत ने अधिक खर्च करके भी सोमा को अकेली ही खोली लेकर दी।

सोमा महीम की इस खोली में आकर बहुत घबराई। पहले दिन तो बरकत ने नल से पानी और सब रसद ला दी लेकिन नित्य यह सब करना उसके लिये सम्भव न था। बरकत ने समझाया "आटा, दाल, चावल, चीनी लेने के लिये राशन कार्ड ले कर घंटों मोदी की दुकान के सामने खड़े रहना पड़ता है। मैं काम की तलाश में जाऊं या मोदी की दुकान के सामने 'क्यू' में खड़ा रहूँ ? पड़ोस में ही तो दुकान है। औरतों को सामान जल्दी मिल जाता है। तुम्हीं ले आया करो !"

लाहौर में सोमा घर की रसद लेने जाती थी परन्तु मोटर में। बम्बई में महीम की राशन की दुकानों के सामने फर्लांग भर की लाइनें लगती थीं। एक-एक कदम सरकते सोमा को घंटे बीत जाते। वह मन में सोचती, इस राशन से तो आदमी महंगा खरीद ले, या बिन खाये रह जाय। खाना तैयार कर वह बरकत की प्रतीक्षा में बैठी रहती। बरकत आकर आश्वासन देता, घबराओ मत, मैं जल्दी ही तुम्हारे लिये सिनेमा में प्रबंध कर लूंगा। मैं आदमियों से मिल रहा हूँ।

पड़ोस की खोलियों की औरतों ने सोमा से बात करनी चाही। यह लोग दो-दो, तीन-तीन परिवार एक-एक खोली में रहते थे। उन्होंने सोमा को अपने यहाँ बैठने और बात करने के लिये बुलाया भी परन्तु वह पल भर से अधिक के लिये नहीं गई। बाईं ओर की कोठड़ी के लोग दक्खिनी थे। सोमा उनकी भाषा भी न समझ सकती थी। दाईं ओर के लोग हिन्दुस्तानी बोलते थे। सोमा उन की बात कुछ-कुछ समझ पाती थी। इन लोगों के पूछने पर उसने बता दिया, वे पंजाबी हैं। उसका आदमी ड्राइवर है। काम की तलाश में है। पड़ोसियों ने उसे अकेले रहने और पैसे का गुरूर करने वाली समझ अधिक बात न की।

सोमा सोचती, सिनेमा का काम मुझ से बन भी पड़ेगा? बैरिस्टर साहब के प्रति मन में घृणा हो जाने पर भी बैरिस्टर द्वारा मन में अपने सौन्दर्य का बैठा दिया विश्वास अब भी मौजूद था। उसे अपने गले के मिठास पर भी विश्वास था परन्तु उससे यह सब कुछ हो सकेगा? सिनेमा उसने कई बार देखा था, देख कर अच्छा भी लगा था परन्तु स्वयम वह करना अपमान और लज्जा-जनक जान पड़ता था। वह चाहती थी, बरकत कुछ काम करे और वह घर सम्भाले परन्तु बरकत से यह बात किस अधिकार से कहती? महीम की चाल में आ जाने के बाद से बरकत सोमा से संकोच छोड़ अधिकार के भाव से बात करने लगा था। दिल बहलावे के लिये छेड़ छाड़ भी करता। वह चुप रह जाती। बरकत को सोमा की वही मुद्रा याद आ जाती जब लाहौर में उसने एक बार साहस कर कहा था—"हुजूर गरीबों पर भी कुछ नज़रें इनायत हो जायं!" और सोमा ने माथे पर त्योरियाँ डाल कर उत्तर दिया—"क्या बकता है···! साहब से बोलो!" अब भी कहीं डाट दे तो?

सोमा न झुंझलाती, न मुस्कराती। बरकत के लिये चाय या खाना तैयार करने के बहाने कतरा जाती। उसके बाद किसी बात के लिये सम्बोधन कर बात करने की आवश्यकता होती तो उसे अनुनय से 'भाई!' कह कर सम्बोधन कर बात करती। झुंझलाने और इनकार करने लायक स्थिति सोमा की न रही थी। स्वयं ही तो सब कुछ के लिये 'हाँ' करके वह बरकत के साथ, उसकी शरण

आई थी। अब तो वह सब तरह से उसकी दया की मोहताज थी। बरकत ही उसके लिये सब कुछ कर रहा था। वह उसके सामने अकड़े और इनकार करे तो किस मुंह से! मर्द औरत को इसी बात के लिये तो पालता और सहता है। केवल एक उपाय उसके पास था कि बरकत को भाई कह कर, उसके हृदय में किसी बदले की इच्छा के बिना सहृदय बने रहने का विचार जाग सके। वह काम काज की बात करने लगती—"भाई, सिनेमा का काम जाने मुझ से होगा भी या नहीं? मुझ में इतना समझ कहां है! भाई, तुम दिन भर परेशान होते थक जाते हो। न हो, किसी के घर के काम काज की ही नौकरी दिलवा दो! भाई, यह तो बड़ा शहर है। यहां तो तुम्हें भी अच्छी नौकरी मिल सकती है।

बरकत रात को लौटता तो शराब पिये रहता। इस शराब की दुर्गन्ध से सोमा का दिल मतलाने लगता। साहब कभी रात में पीते थे तो उससे ऐसी गंध न आती थी। कई बार तो वे सोमा को भी अपने गिलास से घूंट भरने के लिये विवश कर देते थे। पीकर वे कैसी बातें और हरकतें करते थे? उस समय उन से मस्ती का सुख बरसता था। आज उनकी स्मृति कितनी कटु और अपमानजनक थी। वही सब क्या फिर होने को है? नहीं, अब तो पतंग कट कर नीचे नाली में आ गिरी है, और क्या गिरेगी? पतंग कितनी ऊंची चढ़ गई थी.......? सोमा परोस कर बरकत को खिलाती और फिर स्वयं खाकर बरतन मलने बैठ जाती। इतने में बरकत सो जाता। सोमा बिजली की बत्ती बुझा अंधेरे में आंखें खोले पड़ी रहती, ऐसे कब तक निभेगा, क्या होगा? बरकत को सोमा के लिये स्टूडियो में जगह ढूंढ़ते तीन सप्ताह बीत चुके थे। वह जमील से भी उधार लेकर चालीस खा चुका था। वह जहां भी जाता, कोरा सा उत्तर मिलता—"एक्टर-एजेंसी से बात करो!"

बनवारी बरकत का पुराना परिचित था। बरकत उसे तबसे जानता था जब बनवारी ने मुसीबत के दिनों में एक्स्ट्रा एजेंसी की मारफत काम किया था और बरकत उस पर हंसता था—"साले, हम पारट करेंगे तो अपने बूते पर!" बनवारी अब "तारे फैज" कम्पनी में डायलाग लिखने का काम करने लगा था। बरकत को मालूम नहीं था कि वह इतना पढ़ा लिखा था। बरकत ने बनवारी

से सोमा के हुस्न और लियाकत की प्रशंसा कर कहा—"एक गौहर ले आया हूं पंजाब के पहाड़ों से दोस्त ! उसे स्टूडियों में कहीं जगह दिला दो !"

बनवारी ने उत्तर दिया—"भाई, एजेंसी से कहो, वर्ना वह बिगड़ जायगा। आज एक तो तुम ला दोगे, कल पचास की ज़रूरत होगी तो कौन बटोरेगा ? यह सिर दर्दी कौन मोल ले भैया !" बरकत ऐक्स्ट्रा-एजेंसी वालों से घबराता था—जो उनके बस पड़ा, उम्र भर एक्स्ट्रा रहा। साले खून पीते हैं। कम्पनी से दस रुपये औरत के लेंगे तो उसे पाँच थमायेंगे। औरत पर एक बार उनकी मोहर लग गई तो कोई कम्पनी उसे सीधे अपने स्टूडियो में ले नहीं सकती। वो साले अच्छा नाचने वालियों को दस-पन्द्रह रुपये में टरकाते हैं। सोमा तो अभी कुछ जानती नहीं। मुसीबत है कि साले एक्स्ट्रा वाले स्टूडियों का दरवाज़ा घेरे रहते हैं। कमीशन पाये बिना किसी को भीतर जाने नहीं देते ! कोई डाइरेक्टर या चला हुआ आदमी ही किसी को जगह दिला सके तो दिला सके।

बरकत निराश होकर दारे फैज़ स्टूडियो के रेस्टोरां वाले जीवा भाई के यहाँ पहुँचा। पाँच बरस पहले बरकत ने उसके यहाँ बरतन धोने का काम किया था। उस समय उसका रेस्टोरां भी ऐसा-वैसा ही था। अब जीवा भाई के दो तीन मकान थे। एक टैक्सी थी। रेस्टोरां तो चलता ही था। इसके साथ ही ऐक्स्ट्रा की एजेंसी भी थी। बरकत जीवा भाई को अपना पुराना परिचय न देना चाहता था। परन्तु जीवा भाई की मार्मिक दृष्टि और अधिकार पूर्ण प्रश्नों के सामने वह कुछ छिपा न सका। जीवा भाई ने पूछा—"···कहाँ से लाये हो ?"

बरकत ने उत्साह से उत्तर दिया—"सेठ, पंजाब के पहाड़ों का गौहर है। देखोगे तो समझोगे ?"

"कितनी उम्र है ?"

बरकत ने खूब घटाकर बताया—"होगी, उन्नीस-बीस बरस !"

"क्या कुछ जानती है ?"

"आप देखिये तो उसे !···सब जान जायगी न ?"

"अच्छा देखेंगे ?"—जीवा भाई ने पता पूछ लिया लेकिन उपेक्षा कर गया। बरकत सेठ के यहाँ दोपहर तक प्रतीक्षा कर उसे दोपहर बाद मढ़ीम की ओर ले जाने में सफल हुआ।

बरकत जीवा भाई को झेंपता-झेंपता अपनी खोली में ले गया। सोमा को उसने परिचय दिया—"···हमारे मिलने वाले सेठजी हैं।" सोमा एक ओर सिमटी बैठी रही। जीवा भाई कनखियों से उसके चेहरे और शरीर को देखकर आंकते रहे। लौटते समय बरकत ने जीवा भाई को आश्वासन दिया—"यह कोठियों और साहब लोगों में रही है। अभी सहमी हुई है। मौका आने पर खुलेगी तो देखोगे। स्टेज पर रौशन, मधु और चन्द्रा को फीका न कर दे तो पेशाब से मूंछ मुड़ा दूंगा।"

जीवा भाई ने बरकत को भाईचारे के व्यवहार से गाड़ी में बराबर बैठा लिया और एक सिगरेट देकर समझाया—"देखो मियाँ, लादी की घोड़ी रेस में नहीं चल सकती। यह औरत स्टूडियो में जगह भरती के सिवा और क्या करेगी ? कुछ जानती नहीं। दो बरस इसके कुछ सीखने में लगेंगे। तब तक तुम इससे कमाओ ! फिर कोई दूसरी हाथ आ जायगी ! इसे स्टूडियो में पांच नहीं, दस रुपये दे देंगे। हम तुम्हें बीस-पच्चीस दिलाते हैं। बरकत इतना मजबूर हो गया था कि उसे जीवा भाई का प्रस्ताव मान लेना पड़ा। जीवा भाई ने उसे खड़ा पारसी के पास एक चाल दिखा दी कि रात दस बजे औरत को यहाँ ले आवे। उन्होंने दस रुपये का एक नोट भी बरकत के हाथ में पेशगी दे दिया और शाम को गाड़ी भेज देने का आश्वासन भी दिया।

बरकत सुबह का गया प्रायः आधी रात गये लौटता था। उस दिन वह सूर्यास्त के समय ही आगया। बादामी कागज की एक थैली उसके हाँथ में थी। थैली सोमा को थमा उसने कहा—"आज पकाना-खाना जल्दी करलो। नौ बजे एक जगह चलना है। सेठ की मोटर आयगी। सिनेमा के काम के लिये तुम्हें दो-चार आदमियों से मिलाना है। वे लोग बड़े आदमी हैं। बड़ी मुश्किल से यह इंतजाम किया। इतनी खुशामद की है तो माने हैं। ज़रा खातिर और समझदारी से बात करना। सिनेमा की अच्छी नौकरी आसानी से नहीं मिलती।"

कागज़ की थैली में कुछ चेहरे का पाउडर और सुर्खी इत्यादि सामान था। धर्मशाला में धनसिंह ने भी उसे पाउडर-क्रीम लाकर दिया था। लाहौर में भी वह पाउडर, काजल लगाने लगी थी। मनोरमा और दूसरी परिचित स्त्रियों को देखकर सिर के केश भी नये ढंग से बांधने लगी थी परन्तु इस तरीके से कि दूसरों को मालूम न हो कि उसने बनाव सिंगार किया है। रात में साहब के पास जाते समय वह बिन्दी भी लगती थी। बिन्दी को देख कर साहब के चेहरे पर कितनी प्रसन्नता छलक आती थी? आज उसके लिये सिंगार की इतनी व्यक्तिगत, उसके शरीर से सम्बंध रखने वाली चीज़ें बरकत इस ढंग से लाया है! वह घुटने पर ठोड़ी टिकाये बहुत देर तक खोयी सी बैठी रही। लगभग नौ बजे बरकत के याद दिलाने से साड़ी बदली। बरकत की लाई चमकीली साड़ियां उसने घर में नित्य के व्यवहार के लिये लगा ली थीं और लाहौर से जो सफ़ेद साड़ी पहन कर आई थी, उसे धुलवा कर आवश्यकता के समय के लिये रख लिया था। बड़े आदमियों के सामने जाने के लिये उसने वही साड़ी उपयुक्त-समझ कर पहन ली। उसका हृदय कांप रहा था पर चारा न था। जीवा भाई की गाड़ी आ गई। बरकत गाड़ी में उसके साथ बैठ कर फिर उसे समझदारी से व्यवहार करने की नसीहत देता रहा।

अमीर, बड़े आदमियों के ढंग का एक बड़ा सा मकान था। नौकर वर्दी पहने हुये थे। सेठ भी दिखाई दिये। सेठ ने बरकत से पूछा—"आगये!" और एक बहुत छोटे से कमरे की ओर हाथ से संकेत किया—"आइये!" सेठ और एक आदमी भी उनके साथ भीतर आये। सोमा देख न सकी। साथ के आदमी ने कुछ किया। कमरे का जंगलेदार दरवाज़ा खटाक से बन्द हो गया और उन लोगों के पाँव के नीचे फर्श उठने लगा। चारों ओर की दीवारें तेज़ी से नीचे सरकती जा रही थीं। सोमा की बगल में खड़ा सेठ शान्ति से सिगार पी रहा था। सोमा घबराकर चीखना ही चाहती थी कि पिंजरे जैसा वह कमरा रुक गया। सामने बराम्दा दिखाई दिया। साथ के आदमी ने दीवार को छुआ। दरवाज़ा खटाक से खुल गया। सेठ ने बाहर आने के लिये संकेत किया—"आइये।"

सेठ सोमा को एक अच्छे सोफ़ा, कुर्सी लगे कमरे में बैठा कर

गया। वह घबरा रही थी—यह क्या जाल है। यहाँ से तो वह निकल भी नहीं सकती। ज़मीन से वह जाने कितनी ऊपर आ गई थी। पुकारने से बरकत भी नहीं सुन सकेगा। यह तो बैजनाथ के थाने से भी भयंकर जगह है। कमरे के बाहर हंसने और बोलने के स्वर सुनाई दिये। किसी ने ज़रा किवाड़ दबाकर झांका और पीछे हट गया। दो मिनट बाद सेठों के से कपड़े पहने एक आदमी भीतर आया और सोफ़ा पर बिलकुल सोमा से सट कर बैठ गया। सोमा घबरा कर सरक गई। इस नये सेठ ने उसकी ओर देख कर कहा—"अरे, ऐसा सरमाती हो?" और मुस्करा दिया। उसके चेहरे पर अधिक शराब पी लेने से भारीपन और सुर्खी सी जान पड़ती थी। सोमा उस ओर देख न सकी परन्तु सेठ के श्वास से विलायती शराब की गन्ध आ रही थी। सेठ ने अपनी बांह सोमा की कमर में डालने के लिये उसकी पीठ पीछे बढ़ाई। सोमा सोफ़ा पर हाथ भर परे सरक गई। "अरे, बात भी नहीं करोगी! ...हमने तो बहुत तारीफ़ सुनी थी।"—सेठ मुस्करा दिया।

सोमा ने सिर झुका लिया। वह पसीना पसीना हो रही थी। सेठ ने जेब में हाथ डाला और सौ रुपये का एक नोट निकाल कर सोमा की गोद में डाल दिया—"ले, बस अब तो ठीक है?"

सोमा ने कांपती हुई उंगलियों से साड़ी की खूंट के धागे बंटते हुये बहुत धीमे स्वर में कहा—"मैं नौकरी की बात करने के लिये आई थी।" सेठ शायद पूरी बात नहीं समझा। वह उत्साहित हो फिर सोमा के शरीर से आ सटा और उसने कुचेष्टा से सोमा का सीना मसल दिया। सोमा तड़प कर खड़ी हो गई।

उसी समय बन्द दरवाज़े पर किसी के ज़ोर से धक्का देने की आहट सुनाई दी और झगड़े का शब्द भी।—"...हमने पैसा जमा किया? हमारा पैसा फोकट का है?" सेठ भी उठ खड़ा हुआ। सोमा के सहसा उठ खड़े होने से फर्श पर गिर पड़ा नोट उसने उठा लिया और दरवाज़े के समीप जा भर्राये स्वर में पूछा—"कौन है?"

"कौन है का बच्चा!"—बाहर से बदहवास ललकार सुनाई दी—"इस नम्बर का पैसा हमने दिया। हमसे पैसा लिया कि

बिलकुल नया, सरीफ़ घर का औरत आया है। बुलाओ अपने सेठ को !···साला, धोखा करता है ? हमारा पैसा फोकट है ?"

सेठ ने किवाड़ की चिटखनी खोल दी—"लो, तुम अपना पैसा वसूल लो !"—कहता हुआ सेठ बाहर निकल गया। बाहर से झगड़े की बात ऊंचे स्वर में और भी साफ़ सुनाई दे रही थी—"हमने सबसे पहले का पैसा दिया, अब क्या ? हमारे साथ धोखा !···सेठ को बुलाओ !"—सोमा भीतर खड़ी कांप रही थी। भीतर के दरवाज़े से एक नौकर आया। उसने सोमा को सम्बोधन किया—"बाई, इधर से आओ !"

एक गुसलखाने में से होकर छज्जे पर जा फिर एक कमरे में से गुजर वह आदमी सोमा को जीने से नीचे ले चला। सोमा के पांव कांप रहे थे और जीना समाप्त ही न होने में आ रहा था। इस आदमी ने सोमा को एक छोटे सूने से कमरे में काठ की कुर्सी पर बैठा दिया। ऊपर भीषण झगड़ा चल रहा था—'पैसा',···'पहले', 'फोकट',···'धोखा',····'बेईमानी', आदि शब्द ज़ोर-ज़ोर से और बार-बार सुनाई दे रहे थे। सोमा दोनों हाथों में सिर थामे सुन्न सी बैठी रही। बरकत का स्वर भी सुनाई देता था। सोमा समझ न सकी, वह क्या कह रहा था। उसके उत्तर में मालिक सेठ का क्रोध भरा स्वर सुनाई दिया—"साले, तुम हमको ठगता है ! ···तुमारी लाश समुन्दर में फिकवा देगा ! हम उसको यहां से निकलने नहीं देगा। तुम हमें बेवक़ूफ बनाता है !"—यह सुन सोमा की जड़ता कम्पन में बदल गई।

एक आदमी ने आकर उसे सम्बोधन किया—"चलो बाई !" वह बाहर आई तो बरकत दिखाई दिया। बरकत के चेहरे पर घबराहट और क्रोध दोनों ही दिखाई दिये। उसके साथ ही एक अपरिचित दुबला-पतला आदमी कुर्ता-धोती पहने दिखाई दिया। यह आदमी सोमा को ध्यान से देख रहा था।

बरकत सोमा को देख क्रोध में दांत पीस कर बोला—"चलो !"—वह आदमी भी उन दोनों के साथ-साथ चल दिया। कुछ कदम आगे बढ़ बरकत ने आशंका से कहा—"मालूम नहीं, अब बस भी मिलेगी कि नहीं ?"

साथ के आदमी ने उत्तर दिया – "बस इस वक्त कैसे मिलेगी ? ग्यारह कब का बज गया ! यह लो, टैक्सी कर लो ! औरत का साथ है। अच्छा फिर मिलना।"—उसने बरकत को एक नोट थमा दिया।

उन दिनों युद्ध का समय, सन् १९४४ था। शत्रु के हवाई जहाज़ रात में पृथ्वी पर रोशनी देख जगहें पहचान कर बम न फेंक जाँय, इसलिये बम्बई में 'ब्लैक-आउट' रहता था। बिजली की बत्तियां सड़कों पर से हटा दी गई थीं। दुकानों में भी ढंका हुआ मध्यम सा प्रकाश रहता था। प्रकाश न होने के कारण लोग-बाग भी रात में सड़कों पर कम निकलते। मोटरें भी अपनी लाइटों पर काग़ज़ लगा कर रोशनी धुंधली किये रहतीं। बरकत सोमा को लिये सूनी अंधेरी सड़क पर टैक्सी की तलाश में आगे बढ़ता जा रहा था और दांत पीस-पीस कर दबे स्वर में धमका रहा था— "घर चल, तुझे ठीक करता हूँ।" अंधेरे में बरकत की यह धमकी सोमा को बिजली से जगमगाते, सोफा से सजे कमरे में सेठ के प्यार की अपेक्षा आश्वासन की बात मालूम हो रही थी।

कुछ दूर जा उन्हें टैक्सी मिल गई। सोमा आँखें मूंदे चुप बैठी थी। बरकत टैक्सी में अपनी बाँहें सीने पर बांधे, भरा हुआ बैठा रहा। वे लोग भूखों मरने की नौबत पर पहुँचे हुये थे। उसे सोमा पर बहुत भरोसा था कि बहुत समझदार औरत है। अवसर के अनुसार सब कुछ सम्भाल लेगी।.........साहब को उंगलियों पर नचाती ही थी। लेकिन उसने वहां उलटा नखरा दिखाया। सीधे मुंह बात नहीं की। मुझे उल्लू बनाती है। मैं क्या इसका मजदूर हूँ ? यह उसकी बेईमानी और धोखा है। वह अपनी कोठरी में पहुँचने की प्रतीक्षा में था।

अपनी खोली में पहुंच सोमा का इतने समय से सम्भाला हुआ धैर्य बह गया। वह फफक-फफक कर रो उठी और मुख आंचल से ढंक दीवार से पीठ लगाकर बैठ गई। बरकत ने आस्तीनें समेट कर तैयारी में कमर पर हाथ रख उसके सामने खड़े होकर दांत पीस पूछा—"मैंने तुझे क्या कहा था ? मैंने तुझे उन लोगों की खातिर करने को कहा था और तूने वहां सीधे मुंह बात नहीं की ?"

सोमा ने चेहरे से आंचल हटा भीगी आंखें ऊपर उठा उत्तर दिया—"तुम्हें क्या मालूम, वह क्या कर रहा था ?" उसने फिर आंचल से मुंह ढंक लिया और रोने लगी।

पूरे ज़ोर से एक लात सोमा की बगल में पड़ी और साथ ही दो तीन थप्पड़ उसके सिर और कंधों पर। सोमा का हृदय धक से रह गया। उसका रोना बन्द हो गया। बरकत क्रोध की झल्लाहट में बकता जा रहा—"हरामज़ादी, वहां उस साहब के बच्चे के सामने टुकड़ों पर टाँगे फैलाती थी तो शरम नहीं आती थी। यहां ⋯में दही जमा के बैठी है। मारर⋯चली है पारसा बनने: हया दिखाने;⋯⋯सौ घर का पानी पीकर ! साली की⋯⋯चीर डालूंगा। मेरे सामने बनती है !⋯जैसे मैं जानता नहीं ?"

सोमा मार खा कर सुन्न रह गई। घुटने पर सिर रखे निश्चल निर्वाक बैठी रही। "अब बोलती क्यों नहीं ?" –बरकत ने एक और लात और मारी।

"क्या बोलूं भाई ?—दबे स्वर में सोमा ने उत्तर दिया। उसकी रूलाई रुक गई थी—"मैं तो तुम्हारा हाथ पकड़ कर आई थी।"

बरकत और भी झल्ला उठा—"आई है बड़ी भाई बनाने वाली ? वहाँ तो गले पड़ गई ले चल मुझे ! यहां मैं तुझे अपनी हड्डियां खिला कर पालने के लिए लाया हूं ?⋯आज तेरा गरूर तोड़ता हूं। तू यों सीधी नहीं होगी !"

बरकत खोली के किवाड़ बन्द कर चला गया। सोमा को बाहर से सांकल में ताला लगाने की आहट भी आई। वह शरीर और मस्तिष्क से सुन्न बैठी रही। आधे घंटे से अधिक उसी प्रकार बैठे रहने पर उसकी चेतना और विचार शक्ति लौटी। एक बात बार-बार मन में उठ रही थी कि वह व्यर्थ ही जीवित रहने का यत्न कर रही है ? उसे "मझेरा" में ही मर जाना चाहिए था, धर्मशाला में मर जाती, नहीं तो लाहौर में ही मर जाती। उसके साथ सभी ने दगा किया और अभी जाने क्या होने को है ? घुटने पर ठोड़ी टेके निस्पन्द बैठी वह कुछ सुध में और कुछ स्वप्न में सोचती रही, सहजाने के अतिरिक्त कोई राह नहीं ! बच नहीं सकती ! उसकी आँखों से अविरल धारायें बहने लगीं।

किवाड़ की सांकल गिरने की आहट सुनाई दी। सोमा ने से आंसू पोंछ लिये। यह आहट पड़ोस की खोली से भीतर की साँकल खुलने की थी। पड़ोसी मर्द रात की पाली में काम कर मिल से लौटा था। सोमा सोचने लगी ये भी आता होगा। शराब ढूंढ रहा होगा। दीवार के परे से मर्दाने स्वर में गाली देने और धम्म-धम्म मारने की आहट और एक स्त्री के रोने की आवाज़ आई। उसके साथ दो स्त्रियां परस्पर गाली देती सुनाई दीं। जवान स्त्री बूढ़ी को झूठी चुगली करने के कारण गाली देकर कोस रही थी। बुढ़िया जवान पर छिनाल होने को लांछन लगा थी और मर्द उसका सिर काट लेने की धमकी दे रहा था।

पड़ोस की खोली में शान्ति हो गई। बरकत अब भी लौटा न था। गहरी साँस ले सोमा ने मन ही मन सोचा, उधर छिनाल होने के कारण मार पड़ रही है, इधर छिनाल बनाने के लिये मार पड़ रही है। उसे धर्मशाला में धनसिंह के हाथों खाई मार याद आगई। उस मार की स्मृति बड़े गर्व की थी। धनसिंह ने उसे मारा था।...इसी बात पर तो उसने दो क़त्ल कर दिए, अपनी उम्र बरबाद कर दी। मर्द जिसे अपनी औरत समझता है, उस पर दूसरे की नज़र नहीं सह सकता। बरकत मुझे रंडी बना कर बेचने के लिए लाया है। उसकी अपनी औरत की ओर कोई देखे तो मरने-मारने के लिये तैयार हो जायगा।

सोमा ने स्वयं अपनी प्रतारणा की, रोने से क्या लाभ ? कौन सुनेगा तेरा रोना ? उसे ध्यान आया—"वह कह गया है, अच्छा तेरा मिजाज़ आज तोड़ूंगा।" शराब पीने गया है। साहब भी शराब पी कर बहुत रंग में आ जाता था। कैसी कैसी बातें करता था। सोमा को उस स्मृति से घृणा हुई। बरकत के शराब पीकर धमकी पूरी करने के इरादे से ग्लानि घृणा हुई। फिर ख्याल आया, बरकत यदि उसे अपनी स्त्री की तरह समझेगा तो रंडी बना कर तो नहीं बेचेगा ! सैकड़ों के हाथ पड़ने से तो कोई बुरे से बुरा एक आदमी भला; बरकत हो या कोई दूसरा। उसे एक मर्द की आड़ तो चाहिए। मर्द की आड़ बिना औरत कैसे रहे ? उसे पड़ोस की खोली में अपने मर्द से मार खाने वाली औरत से ईर्षा होने लगी। उसी समय बाहर ताले में कुंजी घूमने की आहट

सुनाई दी। बरकत आया और साथ ही देशी शराब की तीखी दिल मचलाने वाली गंध आई। उसके कदम लड़खड़ा रहे थे। सोमा को उसका मिजाज़ तोड़ने की धमकी याद आई। उसका मन घृणा से भर गया परन्तु साथ ही सोचा—यदि यह सह कर भी वह रंडी बनाई जाने से बच कर घर वाली बन सके ?

नशे की विवशता में बरकत के होंठ फैल हुए थे। वह सोमा की बगल में गिर सा पड़ा। "अब बोल !"—विलम्बित लय में कठिनता से उसने कहा और सोमा की बाँह थाम ली। मन की घृणा दबा कर सोमा ने कुछ सिमटते हुये मुस्करा कर उत्तर दिया—"तुम्हारे साथ ही तो आई हूं।"—वह मुस्कराते हुए, निर-विरोध मरने के लिये तैयार हो गई।

बरकत जड़ से उखड़ गये पेड़ की तरह एक ओर लुढ़क गया। सोमा को ऐसी ग्लानि हो रही था की नाबदान में डूब गई हो। वह उठ कर दीवार का सहारा ले बैठ गई। वह एक अवसाद के संतोष में डूबी हुई थी। उसने गहरी सांस ली—"यह भी सहा… आखिर अन्त तो हुआ।" वह वैसे ही बैठी रही। सुबह के सन्नाटे में मंजिल के सांझे गुसलखाने के नल से पानी की धार गिरने की आहट सुनाई दी। वह उठ कर नहाने चली गई। नहा कर वह फिर दीवार से पीठ सटा कर बैठ गई। समीप शराब से गंधाता, धीमे-धीमे खर्राटे लेते बरकत का शरीर पड़ा था। सोमा को उससे घृणा हो रही थी परन्तु अब वही उसका सहारा था। उसकी इच्छा हो रही थी, क्यों न मर जाय ? और स्वयं ही सोचती—मरना था तो पहले मरती, धनसिंह के जाने के दिन ही !

दिन काफी चढ़ जाने पर सोमा ने चाय तैयार कर बरकत को पुकारा। उसकी नींद न टूटी तो वह फिर दीवार के सहारे बैठ गई। दोपहर के समय बरकत स्वयं उठा। उठते ही उसने ज़ोर से सिर दर्द होने की शिकायत की। सोमा ने चाय फिर से गरम कर एक प्याला उसे देकर कहा—"सिर में दर्द ज्यादा है तो चार पैसे दो, पड़ोसिन के लड़के से सिर दर्द की गोली मंगवा दूं।"

बरकत शरीर को मैले चादरे में ढंकते हुये उठा—"किस मादर… "गाली दे वह बोला—"के पास अब गोली के लिये चार

पैसे भी बचे हैं। तू मुझे ऐसे खायेगी, वैसे भी खाएगी। कल उस हरामी से बात बनी थी। तूने दुलत्ती न मार दी होती तो इस वक्त जेब में बीस-पच्चीस रुपये होते।......मुझे क्या मालूम था तू इतनी ठग है? ऐसा ही करना है तो तू अपनी राह देख! हमारा क्या है; हम आज जा कर फौज में भरती हो जायंगे। रोटी कपड़ा सरकार देगी। तू सड़क पर हाथ पसारती फिरना। तब पारसाई का मज़ा आयेगा!"

सोमा ने कांप कर पल भर को आँखें मूंद लीं। उसने सोचा था इतना गिर जाने के बाद तो उसने पांव तले ज़मीन पाई परन्तु वह भी उसका भ्रम था। उसने बकरत से आंखे मिला दृढ़ स्वर में कहा—"खैर, जो हो गया, हो गया अब सही।"

बरकत नरम पड़ गया—"कर लेगी तो मलका बन जायगी, लोग तेरे कदम चूमेंगे। तुझ पर अशर्फियां लुटायेंगे। आखिर तेरा यह हुस्न टुकड़ों पर बिकने की चीज़ है? तू तो बेवकूफ है। या तो साले साहब को ही काबू किया होता। चालीस पचास हजार उससे पेंठती। अलग कोठी लेकर रहती। अब यहां आई है। वैसी ही बेवकूफ़ी यहाँ भी करेगी तो क्या होगा? अमा फूल का क्या है, मेज पर रख दो तो गुलदस्ता नहीं तो साला नाली में पड़ा सड़ जायगा। तू तो पढ़ी लिखी है। यहां हज़ारों गधियां कमा रही हैं। यह तो ज़माना ही औरत का आगया है। समझे! तेरी बदौलत हम भी रोज़ी पा जायंगे। यह तो मौका मिलने की बात है। वह साला बनवारी जीवा भाई की ड्राइवरी करता था। सेठ ने डाइरेक्टर से कह दिया अब साला डायलाग लिखता है, मज़ाकिया पारट करता है और हज़ार रुपया पीट लेता है। साले की बगल में जब देखो नयी रंडी और विलायती की बोतल! डाइरेक्टर की नाक का बाल बना है। बस यह है कि गिट पिट मार लेता है। उसे तो जब चाहूँ बुला लाऊं। साथ का पीने वाला था।

❀ ❀ ❀

बरकत अपने सभी परिचितों से थोड़ा बहुत उधार ले चुका था। लिया हुआ वापिस कर सकने का कोई मौका न आया। वह इस अवस्था में पहुँच चुका था कि निर्लज्जता ही उसका साहस थी। पिछली रात बनवारी ने बरकत को 'फुलमून' होटल में एक

स्त्री की भलमनसाहत के कारण संकट में फंसा देखा और "ब्लैक आउट" में उस स्त्री के साथ छः मील पैदल चलने के लिये विवश देखा। बनवारी ने स्त्री के प्रति सहृदयता के कारण बरकत को पहला उधार न लौटाने पर भी टैक्सी किराये के लिये पांच रुपये दे दिये थे।

बरकत और कोई राह न देख दोपहर बाद फिर बनवारी से मिलने "दारफैज़" के स्टूडियो में अंधेरा पहुँचा। बनवारी ने उसे देखते ही पूछा—"उसी औरत को फिल्म में रखाने को कहते थे? दोस्त, कहीं डायरेक्टर के ही चप्पल जमा देती तो?" और फिर मज़ाक किया "वाह मियां, घोड़ी को रास किये बिना ही सवारी के लिये ले आये? ऐसा उतावला? बिलकुल नौसिखिये हो न! किसी के करारी दुलत्ती तो नहीं जमा दी उसने?

बरकत ने मूंछों पर हाथ फेर कर कहा—"उस्ताद, कोई लद्दू तो है नहीं! पानीदार घोड़ा तो रान पहचान जाता है।"

"हम भी देखें?"—बनवारी ने आँख मार कर पूछा।

"तुम से तो हमने पहले ही कहा था कि तुम समझदार पढ़े लिखे आदमी हो! साहिबे कलम हो!"

"आयेंगे"—बनवारी ने कहा और बरकत के मांगने पर उसे पाँच रुपये और दे दिये। उस दिन संध्या समय "दारफैज़" में शूटिंग नहीं था। बात बनवारी के ख्याल से न उतर जाय इस आशंका से बरकत स्टूडियो के बाहर प्रतीक्षा करता रहा। उसके बाहर निकलने पर बरकत ने याद दिलाया—"चलते हो?" बस पर चढ़ दोनों माहीम पहुंचे। अंधेरा होकर बिजलियाँ जल चुकी थीं। सोमा ने दाल, चावल रांध कर एक ओर रख दिये थे और फर्श पर दरी बिछा कर लेटी ही थी कि बरकत एक आदमी को साथ लिये पहुँचा। सोमा ने उन लोगों के लिये दरी छोड़ दी और दीवार से पीठ सटा कर एक ओर बैठ गई।

बरकत ने परिचय कराया—"यह हमारे पंजाबी दोस्त हैं। सिनेमा का डायलाग लिखते हैं बड़े इलमदार आदमी हैं। इनको डायरेक्टर और मालिक लोग बहुत मानते हैं।" बनवारी सोमा के उदास चेहरे की ओर देख रहा था। उसने भांप लिया कि सोमा

बरकत की बात का मतलब समझ, उसके स्वागत में मुस्कराने का यत्न कर रही है। बरकत बनवारी की योग्यता और प्रभाव की प्रशंसा किये जारहा था। बरकत को चुप कराने के लिये बनवारी उसके मुह के सामने हाथ कर पंजाबी में बोला—"बस, बस अब रहने दे!"

"इनके लिये चाय बनाओ।" बरकत बोला—"अपने वतन के आदमी हैं।" फिर बनवारी की प्रशंसा करने लगा। बनवारी चाय से इनकार कर दूसरी बातें करने लगा। बरकत ने सोमा को सावधान किया—"अच्छा, मैं इनके लिये कुछ फल वल ले आऊं। तुम चाय तैयार करो।"

जाते हुए बरकत को बनवारी ने हाथ थाम कर रोकने की चेष्टा की परन्तु वह—"यह कैसे हो सकता है?" उत्तर दे चला गया। बरकत के जाते ही सोमा के चेहरे पर आती उदासी की घनता बनवारी की आँख से छिपी न रही। हृदय से उठती एक गहरी सांस दबा उसने बेतकल्लुफी से सोमा को पंजाबी में सम्बोधन किया-"जान पड़ता है, बम्बई आये अभी अधिक दिन नहीं हुए?"

"थोड़े दिन हुये हैं"—सोमा ने मुस्कराने का यत्न किया।

बनवारी ने कहा—"अपनी तरफ़ के लोगों को यहाँ का हवा पानी ठीक नहीं बैठता। खुराक भी ऐसी ही मिलती है! बहुत दुबलाई हुई लगती हो?"

अब की सोमा ने मुस्कराने की आवश्यकता न समझी और महमान की ओर देख कर चुप रह गई। बनवारी ने दीवार से पीठ सटा ली और पूछ बैठा—"क्या यह आदमी आपके यहाँ नौकर था?"

सोमा ने बनवारी के अनुमान से सहम कर उसकी ओर देखा और उत्तर न दे सिर झुका लिया। बनवारी फिर बोला-"सिनेमा में काम करना चाहती हैं?"

सोमा ने मुस्कराहट से उत्तर दिया—"जी।"

बनवारी अनुभव कर रहा था कि वह स्त्री अपने हृदय के दुख को पूरे यत्न से दबा रही है। आराम के लिये बनवारी ने दीवार के सहारे और नीचे खिसक, सिगरेट से लम्बा कश खींच कर

कहा—"सिनेमा बहुत भले लोगों की जगह नहीं है पर दूसरी बरबादी से बहुत अच्छी। दुनिया में नेक बने रहने की कीमत बहुत देनी पड़ती है। आदमी मिट जाता है।" हाथ का सिगरेट फेंक वह बोला—"अच्छा मैं चलूं, बरकत तो जाने कब आयगा?"

सोमा अपनी उदासी से जागी। 'सोचा, इनकी खातिर तो कुछ भी नहीं हुई! यह भी अनुभव किया कि बरकत की अपेक्षा इस आदमी का खोली में रहना कहीं अधिक निरापद है, सान्त्वना का कारण है। उठते हुये उसने कहा-"नहीं बैठिये मैं चाय बनाती हूँ।"

"नहीं नहीं"—बनवारी ने हाथ हिला इनकार किया—"चाय मैं इस समय नहीं पियूंगा। सब ठीक है तुम चिन्ता न करो।" हाँ एक बात है, सिनेमा में जाओगी तो वहाँ अपने आप को क्या बताओगी? दुनियां में एक आदमी की आड़ होना अच्छा रहता है।" बनवारी उठ खड़ा हुआ।

सोमा ने कातर स्वर में अनुरोध किया—"कुछ देर तो बैठिये, चाय ज़रूर पीजिये, मैं दो मिनिट में बनाती हूं।" कई दिन बाद उसे एक आदमी मिला था जिसे वह आदमी समझ सकी थी। सोमा के स्वर की कातरता से बनवारी फिर बैठ गया और सोमा उठ चाय बनाने लगी। चाय की प्याली बनवारी के सामने रख वह एक ओर सिमिट कर बैठ गई। सिर झुकाये ही साहस कर उसने पूछा—"मुझसे सिनेमा का काम हो जायगा?"

"करोगी तो सब हो जायगा।" बनवारी ने उत्तर दिया—"दिल रोता रहने पर जो आदमी मुस्करा सकता है वह सिनेमा का काम बहुत अच्छा कर सकता है।" चाय पी कर उठने से पहले बनवारी ने कहा—"सुनिये, आप मुसीबत में हैं। बरकत को मैं जानता हूँ। यह दो नोट रख लीलिये अपने पास।" उस ने दो नोट जेब से निकाल सोमा के सामने डाल दिये। बरकत आप को भूखा भी मार सकता है। वह सब कुछ कर सकता है। कोई भी ज़रूरत पड़ सकती है। दुनियां में रुपये का बड़ा सहारा होता है। इन्हें ऐसे रखिये कि बरकत देख न पाये। अब चलता हूँ।" सोमा ने नोटों को छुआ नहीं। इनकार भी नहीं किया।

बनवारी के चले जाने के बाद सोमा आंचल में मुंह छिपा

कर रो पड़ी, खूब रोयी फिर उसने नोटों को उठा कर छिपा लिया। वह सोच रही थी—"अगर यही भला आदमी मुझे आड़ दे दे तो अब भी बच जाऊं!" बनवारी के चाल से निकल कुछ कदम जाते ही बरकत मिल गया। बरकत की उत्सुकता भांप बनवारी ने उससे हाथ मिला कर कहा—"दोस्त बड़े ज़ोर का माल लाये हो! पीछे-पीछे वारंट तो नहीं चल रहे हैं?"

"उस्ताद इसका एतबार रखो!"—बरकत ने सिर हिला दिया "कुछ काम दिलाते हो!" बनवारी ने एक सिगरेट बरकत को दी और एक स्वयं लगाई। सोच कर उत्तर दिया—"कल सुबह ग्यारह बजे स्टूडियो में आना। कुछ सोचेंगे।"

* * *

सिनेमा जगत में बनवारी की साख जम रही थी। वह अपने अवारापन और सूझ दोनों के लिये ही प्रसिद्ध हो रहा था। आयु उसकी कम न थी। कुछ वह अपनी आयु से अधिक भी जान पड़ता था। वह जीवन के दूसरे क्षेत्रों और सिनेमा जगत के बहुत से पापड़ बेल चुका था।

बनवारी ने १९२९ के सत्याग्रह आन्दोलन में असहयोग कर सैकड़ों दूसरे विद्यार्थियों की तरह कालिज छोड़ दिया और देश की स्वतंत्रता के लिए राजनैतिक संघर्ष में स्वयंसेवक के रूप में लग गया। कुछ ही बाद नेताओं ने असहयोग को सहयोग का रूप दे दिया। कांग्रेस युद्ध के मोर्चे के बजाय वैधानिक-आन्दोलन बन गई और उसे वैतनिक स्वयं-सेवक सिपाहियों की आवश्यकता रही। उस में समय और रुपया खर्च कर सकने वाले कार्यकर्ताओं का ही महत्व रह गया। बनवारी के परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी न थी। उसने निर्वाह के लिये पत्रों के कार्यालयों में नौकरी ढूंढी। पत्रों में वह अपनी इच्छा से लिख न सकता। आवश्यकता भर पैसा भी न मिलता। वह अपने कुचले हुए जीवन से असंतुष्ट था। वह आर्थिक स्तर से निम्न-मध्यम श्रेणी में और बुद्धि के स्तर से उच्च वर्ग में रहता था। एक लेखक के नाते सम्पन्न परिवारों में भी उसका आना जाना रहता।

बनवारी ने अपने आपको चतुर समझ कर भी धोखा खाया।

वह एक सम्पन्न परिवार की एक सुशिक्षित विधवा से प्रेम करने लगा। सम्पन्न विधवा ने उसके प्रेम को स्वीकार करके भी उसके साथ जीवन का सम्बन्ध बांधना स्वीकार न किया। उस प्रेम ने एक झगड़े का रूप ले लिया। प्रेम का मोहक आवरण जीवन की विषम वास्तविकताओं को छिपा रहा था परन्तु झगड़े ने विषमताओं को स्पष्ट कर दिया। बनवारी अपने आप को विचारों के क्षेत्र में समझ कर मानसिक संतोष अनुभव करता आया था परन्तु जीवन के वास्तविक, सामर्थ्य और सफलता के तराजू पर उसका वजन कुछ भी न निकला। इस सत्य को स्वीकार करने के लिये बाध्य हो जाने पर जीवन का नया अध्याय आरम्भ करने के विचार से, बनवारी लाहौर छोड़ कर बम्बई चला गया।

जीवन के साधनों और सामर्थ्य के तराजू पर हल्के समझे जाकर ठुकरा दिये जाने पर भी बनवारी को अपनी कला की प्रतिभा का अहंकार शेष था। उसने कला के सबसे प्रकांड क्षेत्र सिनेमा के व्यवसाय में घुसने का यत्न किया। अपनी लिखी-ऊंची कला-पूर्ण कहानियाँ बगल में दबाये वह सिनेमा व्यवसाय के ठेकेदारों के यहाँ घूमता फिरा। कला के व्यवसायी और इंजीनियर उसके भोलेपन पर मुस्करा दिए। एक अजानी प्रतिभा की सूझ पर पांच-दस लाख रुपये का दाव लगा देने की मूर्खता कौन करता?

बनवारी के भूखे रहने की नौबत आगई। पर उसका आत्म-सम्मान और बौद्धिक अहंकार अभी शेष था। उसने निश्चय किया, अपनी बुद्धि को बेचने की अपेक्षा वह अपने शरीर का ही श्रम बेचेगा। उसने अपने आप को अशिक्षित बताया। चपड़ासी की नौकरी कर ली परन्तु जीवन का वह स्तर उससे सहन न हो सका। उसे निरंतर ज्वर सा रहने लगा। खांसी आने लगी। आयने में अपना रूप देखने पर स्वयं अपने ऊपर तरस आने लगा। उसे मानना पड़ा, उसकी बुद्धि कल्पना और मन का संतोष शरीर की परिस्थितियों की उपेक्षा नहीं कर सकता। उचित भोजन वस्त्र और कुछ पढ़े-लिखे बिना वह ज़िन्दा नहीं रह सकता।

बनवारी ने सोचा वह एक्टर ही बन जाय। इसके लिये भी उसकी योग्यता के परिचय की आवश्यकता थी। अपने अनुभव से उसने विवश हो स्वीकार कर लिया कि सिनेमा के क्षेत्र में

खुशामद से बड़ी योग्यता दूसरी नहीं है। वह एक्सट्रा की एजेन्सी करने वाले मोतीराम की मार्फत सिनेमा में एक सेना का कैम्प दिखाने के लिये इकट्ठी की गई भीड़ में शामिल हो स्टूडियो गया। उसने अपना अहंकार छोड़ डायरेक्टर साहब का खिलौना बन जाने में, अपनी तुच्छता की तुलना से डाइरेक्टर साहब की महत्ता दिखाने में अपनी प्रतिभा दिखाई और वह डाइरेक्टर का पसन्द आ गया। बनवारी स्टूडियो में मूर्ख अभिनय करता था। दूसरे की "मूर्खता" देख दर्शकों को अपनी बुद्धिमानी के अहंकार का संतोष होता है। बनवारी के इस काम का बहुत मूल्य समझा गया।

बनवारी चमक गया। अब उसका सिद्धान्त था, तुम क्या चाहते हो ?...जो कहो मैं बन कर दिखा सकता हूं ! बनवारी मज़ाकिया एक्टिंग के साथ-साथ मज़ाकिया डायलाग भी लिखने लगा था। डायरेक्टर के सामने वह अपनी सूझ सदा उनकी ही बात के रूप में रखता। यदि डायरक्टर कोई बेतुकी बात करना चाहे तो वह उसका समर्थन करने को तैयार था। डायरेक्टर मि० महन्त उसे अपना दाहिना हाथ मानते थे। कला के प्रति भक्ति और सचाई का अहंकार वह छोड़ चुका था। अब उसके लिए कला वही थी जो उसे जीविका दे सके ! पहले वह अपने आपको कलाकार समझता था अब वह अपने आप को कलाबाज कहने लगा।

"दारफँज़" कम्पनी में "जलता घोसला" फिल्म बन रही थी। फिल्म की कहानी डायरेक्टर साहब की सूझ से, दो खूब सफल अंग्रेजी फिल्मों के मेल से, उसका भारतीय संस्करण करके गढ़ी गई थी। नाच-गाना उसमें काफी था। डायरेक्टर साहब "सोशल-हिट" तैयार कर रहे थे। फिल्म में घरेलू जीवन के रहस्यपूर्ण दृश्य दिये जा रहे थे। कहानी के कुछ नोट लिखे गये थे शेष अभी डायरेक्टर साहब या बनवारी के मस्तिष्क में ही था।

अब यह दृश्य बनाया जा रहा था कि नायक अपनी साली के विवाह में ससुराल जाता है और वहां नायिका की एक सहेली के रूप पर मुग्ध हो जाता है। नायिका मणि के लिए मि० महन्त ने मँजी हुई एक्ट्रेस चन्द्रा को चुना था। नायिक की बहिन के सीन अधिक नहीं थे। इस पार्ट के लिए उन्होंने गोमती से दो हजार पर ठेका कर लिया था। वह तीन दिन रिहर्सल कर गई थी। ड्रेस

रिहर्सल के दिन नहीं आई। नायिका की सहेली का पार्ट रहीमा कर रही थी इसका भी ठेका था। गोमती और रहीमा दोनों कई जगह थोड़ा-थोड़ा समय काम करती थीं। गोमती के न आने से कम्पनी का तो नुकसान था ही, सेट के दूसरे सब एक्टरों और स्टूडियो का खर्च व्यर्थ सिर पड़ रहा था परन्तु रहीमा को भी नुकसान था। उसे 'आर्केड' कम्पनी वाले आज दो गाने के लिए बुला रहे थे परन्तु "दरफैज़" से अपने ठेके का ख्याल कर उसने इन्कार कर दिया था। रहीमा ने डायरेक्टर से चुगली कर दी, गोमती 'आर्केड' में गई है।

डायरेक्टर महन्त को एक्ट्रेस की इस बेईमानी पर क्रोध आ गया। आर्केड वाले 'दरफैज़" को नुकसान पहुँचाने की और भी हरकतें कर चुके थे। बनवारी ने अवसर देख डायरेक्टर महन्त से कहा—"सुना है, गोमती को बीमारी लग गई है। दो दिन मुंह में पर छाले फूट आयेंगे तो कमबख्त का मेकअप कैसे होगा? आवाज़ में भी हुजूर कितना फर्क आगया है। हज़ूर जो बात चाहते थे वह भी तो नहीं हो पा रही है……"

महन्त ने अपना सिगरेट केस बनवारी की ओर बढ़ाकर प्रश्नात्मक दृष्टि से देखा—"यानी?" बनवारी ने सिगरेट लेते हुये कहा—"गोमती असिता बनी है। वह ऐसी तो नहीं जंचती कि 'मणी' यानी चन्द्रा के मुकाबले में हीरो का दिल छीन ले, या यह कि पब्लिक का दिल थाम ले। या तो उसका मेकअप आप कुछ और सोच डालिये! 'साइलेंट लार्क' में 'विनसन' से 'डोरा' काफ़ी ज्यादा हसीन दिखाई गई है! एक्टिंग चाहे बहुत न हो, शकल तो तसल्ली लायक हो……!"

"हूँ!"—डायरेक्टर साहब ने सिगरेट के धुयें से चरचराती आंखे सिकोड़ कर स्वीकार किया!

"हज़ूर कल एक औरत देखी है स्टेज़ पर आ जाय और आप का डायरेक्शन हो तो 'जलता घोंसला' सब फिल्मों को मार ले जाय। औरत ज़हीन भी काफ़ी है, बिलकुल 'साइलेंट लार्क' (खामोश बुलबुल)! आप के डायरेक्शन को समझेगी भी खूब! हुक्म हो तो बुलवा कर देखा जाय! गोमती की रिहर्सल भी कौन पूरी हो गई है?" हुजूर, एकाध नया चेहरा भी तो आना चाहिये?"

डा० महन्त ने कुर्सी की पीठ का सहारा लेते हुए कहा—"अभी आ सकेगी ?......बुलवा लो। फैसला करो !"

सोमा सिनेमा कम्पनी की मोटर में महीम से अंधेरी जा रही थी। बरकत उसकी बगल में बैठा अनुनय में नसीहत कर रहा था—"देखो, बड़ी मुश्किल से यह मौका हाथ आया है। इस वक्त सम्भाल लोगी तो ज़िन्दगी सँभल जायगी।" सोमा दांत दबाये उसकी ओर देखे बिना सोचती जा रही थी—"तुझ से बचने के लिये तो मैं कूएं में कूदने के लिये तैयार हूँ। अब रह ही क्या गया है, जिससे डरूंगी ? कल वाला वह भला आदमी ज़रा सहारा दे दे। परमेश्वर करे वह वहां हो !"

स्टूडियो में सबसे पहले बनवारी ही उसे मिला। उसने कहा—"घबराइये नहीं किसी बात से।" सोमा कुएं में कूदने का साहस बांध कर आई थी। उसे जान पड़ा यह आदमी हाथ का सहारा देकर पार कूद जाने में सहायता देगा। सोमा को डायरेक्टर ने बिना किसी संकोच के उसके चेहरे को गहरी निगाह से घूर कर देखा। सोमा उस निगाह से संकुचित न हुई। ऐसे ही जैसे अपरिचित डाक्टर के सामने कपड़ा हटाने से कुछ नहीं होता।

डायरेक्टर महन्त ने उसके माथे, नाक, आंखें, होंठ, गाल, ठोड़ी, सब पर तेज़ निगाह डाली और बनवारी की ओर घूम कर गम्भीरता से कहा—"शीइज़ स्मैशर (बिलकुल खंजर है)..."—जैसे किसी औज़ार को परख रहे हों—"बट कैन शी स्पीक ?" (बोलना जानती है ?) उन्हों ने सोमा को सम्बोधन किया—"रास्ते में आपको तकलीफ तो नहीं हुई ?"—सोमा ने बेमालूम इशारे से सिर हिला पलकें झपक इनकार कर दिया।" महन्त मर्मज्ञ के स्वर में बनवारी की ओर देख अङ्गरेज़ी में बोले—"यह तो आंख से बात करती है। आंखें कितनी सुन्दर हैं।"

बनवारी ने अंग्रेज़ी में समर्थन किया—"इसकी अदा के साथ, 'चरणा एंडपार्टी' का ग्रेस्ट म्युज़िक जुड़ जाय तो 'जलता घोंसला' बम्बई में एक बरस तक चले ?"

सोमा को रिहर्सल के लिये स्टूडियो में ले जाया गया। वहां आठ और स्त्रियों को देख सोमा को भरोसा हुआ परन्तु यह

समझते उसे देर न लगी कि उन स्त्रियों की आंखों में सहानुभूति नहीं, ईर्षा है।

मेकअप रूम में ले जाकर सोमा के कपड़े बदले गये और उसके चेहरे पर रंग लगा कर नये ढंग से सवारा गया। फोटोग्राफर ने एक कांच ले उसके चेहरे को समीप से देखा कि त्वचा के रोम कूप तो कैमरे के चित्र में नहीं आ जायंगे ?

स्टेज पर औरतें दुलहन को घेर कर गीत गाने के लिये बैठी हुई थीं। सोमा को भी उनके साथ बैठाया गया। डायरेक्टर साहब एक हाथ भर की छड़ी से इशारे करते सब लोगों को हुक्म दे रहे थे। उन्होंने सोमा को दुलहन के समीप आकर बैठने के लिये कहा। नायक एक खिड़की से झांक रहा था। डायरेक्टर ने सोमा को सम्बोधन किया—"देखिये !"—और दुलहन की ओर छड़ी से संकेत कर कहा—"इनकी ठोड़ी छूकर कहिये, हाय, इतनी उदास क्यों होती हो ?"

सोमा ने हुक्म माना। डायरेक्टर साहब ने कहा—"उहूँ, ऊंचा बोलिये।" सोमा ने ऊंचे स्वर में दोहराया। डाइरेक्टर ने छड़ी अपनी जांघ पर मार कर कुछ डपट के स्वर में हुक्म दिया—"मुस्कराकर बोलिये !" सोमा ने यत्न किया पर डायरेक्टर को संतोष नहीं हुआ। सोमा की असफलता पर साथ बैठी स्त्रियां मुस्करा दीं।

बनवारी ने रूखे स्वर में टोका—"बीबी जी, यहां मुस्कराने के दाम दिये जाते हैं, शर्माने के नहीं।" सोमा ने एक बार पलक झपक मुस्कराने का यत्न किया और मुस्करा कर दिखा दिया। डायरेक्टर गुणग्राही थे—"गुड!" उन्होंने तारीफ़ में हाथ उठा कर कहा। कैमरामैन को सम्बोधन किया—"मि० घुरघुरे नोट करो, इसका 'क्लोज़अप' लेना होगा।"

डायलाग डायरेक्टर के बताने से दुलहन ने आंसू भरे स्वर में उत्तर दिया—"बहिन, तुम लोगों के साथ बचपन बीता है। तुम लोगों को छोड़ कर जा रही हूँ।"

सोमा से मुस्करा कर कहलाया गया—"अभी ऐसा कह रही हो ? वक्त आयगा कि हम लोग तुम्हारी खबर को तरसेंगी और

तुम्हें खत लिखने की फुर्सत न होगी।" सोमा ने मुस्कराया और कहा। बनवारी ने टोका—"वकत नहीं 'वक्त बोलो!"—साथ की स्त्रियां फिर हंस दी। कई दूसरे शब्दों—'इंतजार' को 'इंतज़ार', 'सबर' को 'सब्र' 'बशक' को 'बेशक' बोलने के लिये उसे कहा गया। दूसरी स्त्रियां हर बार हंस देतीं परन्तु सोमा उस हंसी की उपेक्षा कर गई। पहले ही दिन कानो-कान बातचीत होकर सब लोगों को मालूम हो गया कि यह औरत पंजाब के पहाड़ों से अभी नई-नई आई है। उसका नाम पहाड़न पड़ गया।

दूसरे दिन सोमा बताये गये समय पर बरकत के साथ स्टूडियो पहुँची। वहां झगड़ा हो रहा था। जीवा भाई नाराज़गी से कह रहा था—"एक्टर-एक्ट्रेस लाने की जिम्मेवारी जब आपने हम पर डाली है तो आप अपने एक्ट्रेस कैसे ला सकते हैं? गोमती नहीं आ रही थी तो आप हमें खबर देते। हम आपको आपकी ज़रूरत के मुताबिक दूसरी एक्ट्रेस सप्लाई करते। जो औरत आपने रखी है, इसके लिये हम इसके आदमी को पेशगी दे चुके हैं। वे क्रोध में बरकत की नाक के सामने उंगली करके बोले—"तुम बोलो, तुमने हमसे इसके दस रुपये अडवांस लिये कि नहीं?"

बरकत साफ़ इनकार कर गया। जीवा भाई को इस बेईमानी पर क्रोध आ गया। उन्हों ने बनवारी को ही पंच बनाया—"तुम बताओ जी; तुमने उस रात औरत को हमारे होटल में देखा था कि नहीं?......वह हमारी आसामी है। हमारे आदमी आप सीधे कैसे काम पर लगा सकते हैं? हमारा कमीशन कहां जायगा? यह बिजनेस है कि डकैती है?"

बनवारी ने देखा, जीवा भाई अपने कमीशन के लिये सोमा की फजीहत कर डालेगा। वह उसे समझाने के लिये एक ओर ले गया। जीवा भाई तैश में आ रहा था—"जब पचास औरत की ज़रूरत हो तब हम परेशान हों और जब आप को कोई औरत पसन्द आ जाय, आप हमारी आसामी उड़ालें! यह भी कोई बिज़नेस है? वह हमारी आसामी है, हम चाहे उसे स्टेज पर भेजें, चाहे दूसरे काम में! आप हमारा बिज़नेस बिगाड़ेंगे तो हम आप की मदद कैसे करेंगे? सिनेमा वाले एजेंसी के बिना फिलम बनाना चाहते हैं तो बनायें! हम एजेंसी खतम किये देते हैं।

कल आप कहेंगे, एक्टर हमारा पैसा मार कर ले गये तो हम जमानत नहीं होंगे, समझ लीजिये !"

बनवारी ने समझाया -"सेठ, तुम कारोबारी आदमी हो। अक्खड़पने में क्या रखा है। एक चिड़िया जाल से उड़ ही गई तो क्या; जाल क्यों तोड़े डालते हो? और सैकड़ों फसेंगी! यह औरत तुम्हारे बस की नहीं है?"

"हमने ऐसे सैकड़ों बेच डारीं"—सेठ ने मूंछ पर हाथ रखा।

"होगा," बनवारी ने धीमे में कहा। "डायरेक्टर महन्त को यह औरत बहुत पसन्द आई है। उससे बिगाड़ क्यों कराते हो! दूसरी जगह कसर निकल जायगी। हम वायदा करते हैं।" सोमा दीवार के पीछे से यह सब सुन सुन कर कांप रही थी।

पहाड़न डाइरेक्टर साहब की आशा से तेज निकली। वह जी जान से सब कुछ ठीक ढंग से कर पाने का यत्न कर रही थी। संध्या समय फुर्सत होने पर बनवारी बरकत को सलाह देकर पहाड़न को प्रायः सिनेमा ले जाता। एक्ट्रेसों के भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यवहार की ओर संकेत करके पूछता—"क्या तुम ऐसा नहीं कर सकतीं?"

सोमा ने लाहौर में मनोरमा और भावी के साथ कई बार सिनेमा देखा था। उस समय भी सिनेमा अच्छा लगता था। लेकिन वह एक्ट्रेसों का व्यवहार देख कर सोचती थी -"हाय कैसी हैं यह लोग? सबको दिखाकर ऐसा करती हैं? इन्हें शरम नहीं आती?" अब वह सोचती. यह तो मैं भी कर सकती हूं।" बनवारी और बरकत भी समझाते कि ऐसा कर सकना तुम्हारे लिये कुछ कठिन नहीं। दो फिल्मों में अच्छी तरह काम कर लो फिर सिनेमा वाले तुम्हारी खुशामद करते फिरेंगे। वे उसे मधु, चन्द्रा, हेमा और बालो की बातें सुनाते, कितने-कितने हज़ार रुपये महीना वे कमा रही हैं। एक फिल्म में पहाड़न को दिहाती नाच दिखाकर बनवारी ने पूछा "तुम नहीं ऐसा नाच लोगी?" पहाड़न ने स्वीकार किया, सिखाने से वह नाच लेगी। वह गाने के लिये भी तैयार थी।

पहले पहाड़न को केवल तीन सीनों के लिये बुलाया गया था।

आरंभ में विचार था कि नायक के "रेणु" (पहाड़न) पर मुग्ध हो उसके प्रेम में अपनी पत्नी की उपेक्षा करने के कारण नायिका अपनी बहिन रेणु को विष देकर मार डालती है और फिर जासूसी प्लाट चलता है परन्तु पहाड़न की सफलता देख डायरेक्टर महन्त ने उसे स्क्रीन पर रख उसके रूप से लाभ उठाने के लिये दो सीन और जोड़ लिये। बनवारी ने यू० पी० में प्रचलित 'खोड़िया' का एक गाना कहीं से लिखकर ला दिया और डाइरेक्टर महन्त को सुझाया कि पहाड़न का एक नाच इस पर हो जाय ? डायरेक्टर इस सूझ पर उछल पड़े—वाह !

उस्ताद भूरे को हिदायत दी गई कि साज इस तरह से बजे कि पहाड़न ताल सम्भाल सके। पहले उसे गीत गाकर सुनाया गया। फिर एक एक कड़ी बीस-बीस बार गवाई गई। डायरेक्टर महन्त और साउण्ड इंजीनियर मि० चोखे रिकार्डिंग रूम से बार बार स्वर के ऊंचे नीचे किये जाने के लिये संदेश देते थे। साउण्ड इंजीनियर गाने को पास ही नहीं कर रहे थे। पहाड़न के चेहरे पर सुर्खी आ गई और पसीने की बूंदें छलक आईं। बनवारी ने डायरेक्टर के कान के पास मुंह कर कहा—"हुज़ूर अगर इस वक्त टेकनीकलर कैमरा होता ?"

साउण्ड इंजीनियर मि० चोखे कई बार पहाड़न की आंखों में देख कर मुस्करा चुके थे। उससे बात करने की कोशिश भी उन्हों ने की थी परन्तु पहाड़न आंखें झुका टाल गई। बनवारी ने यह भांपा और अकेले में पहाड़न को समझाया—"पहाड़न, यह सिनेमा का अखाड़ा है। समझ लो, यह आदमी चाहे तो तुम्हारा गला बंसी का बोल बन जाय और चाहे तो फटे बांस की झनझनाहट ! कैमरे का मोर्चा तो तुमने जीत लिया। महन्त खुद भला आदमी है कैमरे को खूब समझता है। कैमरा मैन उसे चरा नहीं सकता लेकिन चोखे दूसरे ढंग का आदमी है। इसे सम्भालो !"

पहाड़न को उदास होते देख बनवारी ने रूखे स्वर में कहा—"तो फिर इधर पांव क्यों रखा था ? हमने पहले ही कह दिया था ? अभी सम्भाल लोगी तो फिर हम लोग तुम्हारी जूतियां झाड़ेंगे।" दूसरे दिन रिहर्सल से पहले चोखे ने पहाड़न की आंखों में झांका

तो वह लजाकर मुस्करा दी। चोखे ने कहा—"आज शाम हमारे साथ खाना खाइये।"

पहाड़न ने उत्तर दिया—'हमें तो आप से बहुत डर लग रहा है। हमारा गाना आपको अच्छा नहीं लगता। डर के मारे भूख ही नहीं लगती, खायें क्या।" उस संध्या पहाड़न के गाने की काफ़ी तारीफ़ हुई। संध्या समय वह चोखे के साथ "ग्रेट मोगल" में खाना खाने गई। रात एक बजे चोखे ने उसे टैक्सी में मढ़ीम पहुँचाया। सोमा मन ही मन डर रही थी कि बरकत झगड़ा करेगा, बकेगा शायद हाथ चला बैठे? स्वयं ही उसने क्रोध में कहा बोले तो सही!...उस रात साथ की खोली में पिटने वाली स्त्री की बात याद आई। इस कमबख्त का मुझ पर क्या हक है? उसने सोचा!

सोमा के काफ़ी सांकल खटखटाने पर बरकत नींद से उठा पर उसने कुछ कहा नहीं। चुपके से फिर अपनी चादर में लिपट कर सो गया। सोमा को बहुत देर तक नींद नहीं आई, यह क्या हो रहा है? जो हो, पांव रखने की जगह तो उसे मिली! डेढ़ मास उसे स्टूडियो में जाते बीता था। आठ सौ रुपये उसे मिल चुके थे।.........शायद कुछ दिन बाद वह अपनी इच्छा से चल सकेगी। तब इस कोठरी से पीछा छूटेगा।

पहाड़न के गाने का रिकार्डिंग बहुत ही बढ़िया हुआ। अब गाने का रिकार्ड बजता था और उस पर नाच की रिहर्सल होने लगी। फर्श पर लकीरें खींच दी गईं और बता दिया गया कि किस बोल पर उसे कहां कदम रखना है। फुलड्रेस-रिहर्सल में पहाड़न को लहंगा और चोली पहनाया गया। उसका पतला पेट उघड़ा था। उसके अच्छे खासे गोरे शरीर पर जहां भी उघड़ा था, और सफेदी लगादी गई कि कैमरे में रोम छिद्र न दिखाई दें। चोली खूब कस दी गई थी। चोलीयों भी भरी थी, कुछ रूई और भर कर उन्हें और नोकीला बना दिया गया।

रिकार्ड बार-बार दोहरा रहा था—"दोपहरिया का मामला मेरा गोरा बदन कुम्हलाये।" डायरेक्टर ने उसे समझाया कि "दोपहरिया का मामला" कहते समय चेहरे पर भोलेपन का भाव लाकर दोनों हाथ फैलाये और "मेरा गोरा बदन" कहते समय

अपने कंधों को छू कमर को बल देकर शरीर को आगे बढ़ाये। 'कुम्हलाये' बोलने के साथ आँचल से हवा करे। इस कड़ी का भाव पूरा करने में प्रायः अढ़ाई घण्टे लग गये। कभी पहाड़न के पांव फर्श पर बने निशानों से आगे-पीछे हो जाते, कभी फोटोग्राफ़र रोशनी बदलवाते। पहाड़न हांफ गई। बीस बार इस पद के भाव का अभिनय कर चुकने पर "टेक" लिया गया। उसे चाय पिला कर कुछ देर विश्राम का अवसर दिया गया।

फिर दूसरे पद पर नाच आरम्भ हुआः—"सासुरी, तेरा बेटा री, तेरा बेटा री, मेरे जोबन को हाथ लगाए !" इस पद में पहले की अपेक्षा और भी देर लगी। मुस्करा कर घूंघट खींचते समय पांव फश पर बने निशान से आगे पीछे हो जाता है। पहाड़न ने जी तोड़ मेहनत की और जैसे भी बना डायरेक्टर साहब का हुक्म पूरा कर दिखाया। डायरेक्टर साहब पूर्ण रूप से सन्तुष्ट थे। उसका 'क्लोज़अप' और 'स्टिल' लिए गये, उस दिन "दरफैज़" कम्पनी के प्रोड्यूसर एम० पालीत अपने यहाँ आई नई एक्ट्रेस की तारीफ़ सुन कर देखने आये थे। डायरेक्टर महन्त और सभी लोग उनके आगे पीछे घूम रहे थे। पालीत ने शूटिंग समाप्त होने के बाद पहाड़न को अपनी गाड़ी में ले जाकर चाय का निमंत्रण दिया।

पहाड़न अपनी कीमत समझने लगी थी। उसके चेहरे और चाल में भी अन्तर आगया था। उसने बहुत थके होने के कारण क्षमा मांग इनकार कर दिया। वह उनके लिये कुर्सी से उठी भी नहीं। पालीत साहब ने विनय से मुस्करा कहा—"अच्छा कल सही।" और चले गये। बनवारी ने देखा और आकर बोला—"पहाड़न, गज़ब कर दिया तुमने ! यही तो सब से बड़ा सांप है ! यही तो मालिक है। इसके चाहने से डाइरेक्टर और दूसरे लोगों को, गोबर की औरत को भी हाथी दांत की मूरत मानना पड़ेगा। कम से कम यह फिल्म पूरी होने तक इसे फंसा कर रखना है।"

अगले दिन पहाड़न पालीत के साथ ताज में डिनर खाने गई और वहां से टैक्सी में महीम लौटी। पहाड़न को उन्होंने तीसरे दिन फिर ताज में मिलने के लिये बुलाया। पालीत ने डायरेक्टर साहब को समझाया— यह औरत किसी दूसरी फिल्म कम्पनी में न जाने पाये। अब तक पहाड़न पच्चीस रुपये रोज़ पर काम कर

रही थी। पालीत के समझाने से महन्त ने उससे छः मास का शर्तनामा लिख देने के लिये कहा। पहाड़न ने बनवारी से राय ली और बनवारी ने समझाया—"पन्द्रह सौ महीना मांगना और हर महीने की तनख्वाह पेशगी !" पहाड़न बनवारी की राय को पागलपन समझी थी परन्तु उसने महन्त से यही कहा और उसकी बात मान ली गई।

एक साथ रुपया हाथ में आते ही पहाड़न ने महीम की चाल से पीछा छुड़ाया। बनवारी के साथ घूम कर उसने दादर में एक फलैट दो सौ रुपये माहवार पर ले लिया। बरकत के साथ एक ही कमरे में रहना उसके लिये असह्य यातना थी। अब तक स्टूडियो से जो कुछ मिलता था उसका अधिकांश बरकत के हाथ चला जाता था। बनवारी ने पहाड़न को नकदी लेने से मना कर समझाया—"चेक लिया करो और बैंक में जमा करो !" सोमा की इस हरकत पर बरकत बहुत बिगड़ा:—"अभी से हमें आँखें दिखाने लगी ?" उसने सोमा को बहुत गालियाँ दीं और पीटने की धमकी दी।

पहाड़न उसके सामने तन कर खड़ी हो गई। उसके माथे पर त्योरियां थीं। बरकत को घूर कर उसने कहा—"खबरदार, बकवास किया तो ! अभी पुलिस में भिजवा दूंगी। रहना है तो सीधी तरह रहो, बाहर के कमरे में।" बरकत को पहाड़न में फिर लाहौर वाली सोमा दस गुने उग्र रूप में दिखाई दी। वह सहम गया। वह कभी खुशामद से और कभी गुस्सा दिखा कर अपनी आवश्यकता के लिये पहाड़न से रुपये एंठने लगा। उसका खर्च कम न था। पाँच छः रुपये उसे रोज़ चाहिये थे।

* * *

गोमती दो दिन तकलीफ़ अधिक रहने के कारण "दरेफैज़" में न पहुँच सकी थी। तीसरे दिन वह पहुँची तो उसे मालूम हुआ की उसकी जगह दूसरी औरत रख ली गई। गोमती ने डायरेक्टर की खुशामद की—आदमी को सुख दुख हो ही जाता है। वह किसी दूसरी जगह काम करने नहीं गई। कोई साबित करके दिखाए ! परन्तु दरेफैज़ को उसकी ज़रूरत न रही थी। उन्हों ने

उत्तर दिया—"जो पेशगी तुम खा गई, सो तुम्हारी! अब हमें छुट्टी दो!"

"दरेफैज़" से गोमती के हटाये जाने की बात फैली तो उस की बीमारी की बदनामी भी फैली। दूसरी जगह उसे काम मिलना बन्द हो गया। इलाज होते रहने से उसकी बीमारी दबी हुई थी अब इलाज के लिए पैसा न रहने से बीमारी भी भड़क उठी। गोमती को पहाड़न पर क्रोध था कि पहाड़न को रखने के लिये ही उसे निकाला गया है। वह घूम घूम कर पहाड़न की निन्दा करने लगी। वह कहती फिरती—"पहाड़न जानती क्या है? गाने के नाम सरगम तक तो जानती नहीं। एक्टिंग क्या करेगी? जंगली बकरी की तरह आंखें निपोर कर मिमिया देती है। कम्पनी वाले सफ़ेद रंग का गहर अमरूद देख कर लपक पड़े हैं, चार दिन में कुचल कर फेंक देंगे।"

गोमती डायरेक्टर, प्रोड्यूसर और कम्पनी का कुछ बिगाड़ न सकती थी। दिल की जलन से वह लड़ने के लिए पहाड़न के फ्लैट पर पहुंची। उसके घर में जा पहाड़न को गाली देने लगी:—"तू ने हमपेशे के पेट पर लात मारी है, तेरा सत्यानाश हो! जिस हुस्न का तुझे गुमान है, अल्ला तेरे उसी हुस्न को बरबाद करे! जिसकी तू कमाई खाती है तेरी .... में कीड़े पड़ें! बरस भर में तुझे बीमारी न हो जाय तो मुझे सड़क पर सौ जूता मारना।" पहाड़न घबड़ा कर भीतर के कमरे में जा छिपी और किवाड़ मूंद लिए। उसकी महाराजिन गोमती से ज़बान लड़ाने लगी। गोमती को चुप होते न देख बरकत जूता हाथ में ले सामने आ गया। गोमती को गर्दनिया दे उसने फ्लैट से नीचे उतार दिया। गोमती गालियां बकती चली गई। पहाड़न का दिल बहुत देर तक ज़ोर से धड़कता रहा। वह किवाड़ मूंदे, आँखें मूंदे, पलंग पर लेटी अपने भविष्य की कल्पना करती रही।

गोमती के इस विरोधी प्रचार से दूसरी कम्पनियों में भी पहाड़न का चर्चा होने लगा। "जलता-घोंसला" फिल्म खतम होते ही मणीमाला ने भी पहाड़न के विरुद्ध प्रचार शुरू कर दिया। पहाड़न को खामुखाह हीरोइन बना कर उस पर लाद दिया गया था। फिल्म के इश्तहार में तो मणिमाला का नाम था परन्तु फिल्म

के भीतर थी पहाड़न ! सब जानते थे, अब आगे की फिल्मों में पहाड़न का नाम सबसे ऊपर जायगा। डायरेक्टर और प्रोड्यूसर चाहे जिसे चढ़ा दें, जिसे गिरा दें ! बरस बीतते पहाड़न की तीन फिल्में बम्बई में दिखाई जा रही थीं। इन में से "मासूम चोर" और 'मन का सौदा' में पहाड़न ने नायिका की भूमिका में काम किया था। बम्बई का आकाश पहाड़न के नाम से गूंज उठा। उसका चेहरा, दस-दस गुना बड़े चित्रों में दीवारों पर सब ओर दिखाई देने लगा। मकानों में रेडियो से और चाय-पानी की दुकानों पर, पान बीड़ी की दुकानों पर ग्रामोफ़ोन और रेडियो से उसके गानों के रिकार्ड सुनाई देते रहते। वह हर समय अपना ही चेहरा देखती और अपना ही सुर सुनती—"......मेरे जीवन को हाथ लगाये।" "......मन पंछी भूल जाना।" "......बसाएँ प्रीत का संसार !"

अब पहाड़न चार फिल्मों में एक साथ काम कर रही थी। कम्पनी वालों को अपनी शूटिंग और रिहर्सल उसकी सुविधा के अनुसार निश्चित करने पड़ते थे। बैंक में उसके पास तीस हजार रुपया जमा था। रुपये को वह फूंकती न थी। बनवारी बार-बार समझाता रहता—"असल चीज़ यही है।......एक्ट्रेस की जिंदगी पांच नहीं सात बरस ! अब उसका मिजाज़ भी कम न था। वह कम ही लोगों से मिलती। उससे प्रेम निवेदन करने वाले लोग अनेक थे। उन्हें वह मुंह न लगाती ! बनवारी का उपदेश था—"इस जंजाल में न फंसना ! पहाड़न प्रेम तुम्हारा हथियार है। इस खंजर को अपने ही पेट में न भोंक लेना।" सफलता का नशा उस पर छा गया था। अपना गत जीवन भी उसे खूब याद था। उसकी तुलना में अपनी क्षमता और सफलता अनुभव कर उसे वर्तमान से असंतोष न था। कभी सोचती—वह सब न झेला होता तो यह भी न होता। जो हुआ ठीक ही हुआ। वह दुनिया के लिये मन-बहलाव और आनन्द बखेरती थी परन्तु स्वयं गम्भीर होती जा रही थी।

बरकत से वह अलबत्ता परेशान थी। बरकत को कई बार एक्स्ट्रा में काम मिला परन्तु उसे दो-तीन रुपये से अधिक में कोई न पूछता था वह चाहता था कि पहाड़न उसे अपने साथ

हीरो का पार्ट दिया जाने के लिये जिद् करे। इसके लिये पहाड़न तैयार न थी। बरकत इसे पहाड़न की बेवफाई समझता था। इस बात पर वह झगड़ा कर बैठता। पहाड़न के पास एक ही जवाब था—"···माफ़ करो, तुम्हें मुझसे जो लेना है, एक बार ले लो और चले जाओ !"

बरकत के जुये में हार जाने के कारण पहाड़न दो बार डेढ़-डेढ़ हज़ार रुपया इस शर्त पर दे चुकी थी कि वह सदा के लिये चला जायगा परन्तु रुपया लेकर भी वह गया नहीं। एक्टर बनने की महत्वाकांक्षा छोड़ उसने अपने रहने-सहने का ढंग भी बदल लिया। कमीज़, पतलून छोड़ वह रेशमी कुरता और तहमत पहनने लगा। मूंछे छांटना छोड़ कर उसने बढ़ा लीं और उन्हें ऐंठ कर रखता। एक छोटा डंडा भी हाथ में रखता। हर समय ताल ठोंक कर धमकी देता रहता—"···कहो तो दो हाथ लगवा दें ?" चार पांच आदमी साथ लगाये रखता। उनके नशे पानी का खर्च भी उसी के जिम्मे था। एक बार वह कोकीन के मामले में फंस गया। पहाड़न ने अपनी बदनामी के डर से बनवारी को भेज, पुलिस को डेढ़-दो सौ रुपया देकर छुड़वाया। इसके बाद बरकत की कोतवाली के लोगों से भी मित्रता हो गई।

पहाड़न की ख्याति बढ़ती जा रही थी और उसी परिमाण में रुपया भी। वह फ्लेट छोड़ एक बंगले में रहने लगी। एक बड़ी सी मोटर भी उसने लेली। अब वह पहले से भी अधिक चुप रहने लगी। बरस भर उसने न दिन देखा न रात। एक साथ छः छः कम्पनियों में काम किया। अब वह प्राप्तः रोल देने के लिये आतुर कम्पनी वालों को इनकार कर देती। बनवारी के उपदेशों का अब उलटा प्रभाव हो रहा था, 'वह सोचती' मैं कितने दिन तक लट्टु की तरह नाचती रहूंगी ? आखिर मेरा क्या है ? रुपया काफ़ी है।·······क्या बरकत के लिये छोड़ जाने के लिये कमाती जाऊं ? दूसरे एक्टर-एक्ट्रेसें रुपया कमाते थे और उसका अधिकांश रेस और शराब में उड़ा देते थे। पहाड़न ऐसा न करती। बैंक में उसकी जमा खूब बढ़ रही थी।

बरकत ने अफवाह सुनी थी कि प्रोड्यूसर सेठ पाली भाई, प्रोड्यूसर सुतलीवाला और डाइरेक्टर ज़मान पहाड़न के पीछे पड़े

हैं कि वह उनसे विवाह कर ले। उसने यह भी सुना कि पहाड़न प्रोड्यूसर सुतलीवाला और असिस्टैंट डायरेक्टर बनवारी से प्रेम करने लगी है।....जल्दी ही किसी को लेकर बस जायगी ! उसका मन सिनेमा से फट रहा है। यह सुन कर बरकत आशंकित हुआ। बनवारी पर उसे विश्वास था कि वह ईमानदार आदमी है। उसी ने पहाड़न को सब कुछ समझाया है। बेचारा दिक का मारा हुआ है लेकिन दूसरे लोगों से वह सतर्क रहने लगा। यह लोग पहाड़न के यहां आते तो बरकत उत्पात करता, उनसे झगड़ता। पहाड़न बाहर जाती तो रखवाली के लिये ड्राइवर के साथ आगे की सीट पर बैठ कर साथ जाना चाहता। उसने प्रचार करना शुरू किया—"पहाड़न मेरी निकाह की बीबी है।......कोई साला उसकी तरफ़ आंख उठायेगा तो आंख फोड़ दूंगा।...को अदालत में ले जाकर खड़ा कर दूंगा।"

पहाड़न के लिये बरकत का यह व्यवहार असह्य हो गया। वह सोचती, यह मुझे कब तक नोच-नोच कर खायेगा। मैं क्या इसकी दुधार गैया हूँ ? मुझे कुछ हो जाय या मैं कमाना बन्द कर दूं तो यह यहां से ऐसे भाग जायगा जैसे आग लगे घर से चूहे भागते हैं। यह कौन होता है मुझ पर चौकीदारी करने वाला। यदि मैं बस जाना चाहूं तो यह मुझे रोकने वाला कौन है ? क्या मैं सारी उम्र यों ही बे आसरे, ठगी जाने के भय से कांपती रहूंगी ?

संध्या समय स्टूडियो से लौट पहाड़न मन की इस खिन्नता में बरामदे में बैठी थी। 'नवोदय' कम्पनी की नयी फिल्म 'रंगीली कनकैया' में वह पचास हज़ार के ठेके पर हीरोइन का पार्ट कर रही थी। उस दिन स्टूडियो में उसका नदी में नहाने का दृश्य चल रहा था। प्रश्न यह था कि नहाते समय उसका शरीर अधिक से अधिक कितना दिखाया जा सकता है ? स्टूडियो की व्यस्तता और अनुशासन में तो वह डाइरेक्टर ज़मान की हिदायतों पर चल रही थी परन्तु गाड़ी में लौटते समय उसे याद आ गयी पांच वर्ष पूर्व की घटना।......वह बावड़ी पर चादर में लिपटी कपड़े धो रही थी और धनसिंह आ गया था। वह लज्जा और भय के मारे कैसे सिमिट गई थी ! फिर लाहौर की कोठी में मन्नो बीबी और बैरिस्टर अच्छे कपड़े पहन कर बाज़ार चलने के लिये कहते

तो वह लज्जा के मारे सिमिट जाती थी। रात में सब लोगों के सो जाने पश्चात साहब के कमरे में जाती थी तब भी बत्ती जलाने से पहले सतर्कता से देख लेती थी कि सब खिड़कियों पर पर्दे पड़े हैं या नहीं ? उस समय उसे गर्व था कि उसे कोई नहीं देख सकता। आज उसे उघाड़-उघाड़ कर सब को दिखलाया जाता है !

पहाड़न के बंगले के दाईं ओर चौराहे के पार एक ऊंची दीवार पर उसका विराट चित्र बाहें फैलाये सीने का उभार दिखा रहा था। रेडियो की तीखी आवाज में उसे अपना ही स्वर सुनाई दे रहा था—"कस गरे डारो बहियां, मोरे सैयां ! इस विध करिये प्रीत !" मेरा प्रेम दुनिया भर के लिये बाज़ारू चीज़ है ? सोच कर मन में टीस सी उठी। साहब से गुप्त प्रेम की बात याद कर उसने एक गहरी सांस खींची !...यह कितने दिन तक चलेगा ? उसे क्या मिलता है ?...पैसा ! पर पैसा तो ज़िन्दगी के लिये होता है, जिन्दगी कहाँ है ? क्यों न वह यह सब छोड़ कर किसी के साथ बस जाये ? इस समय तो लोग उसकी खुशामद कर रहे हैं। चार बरस बाद कौन पूछेगा ! पर कौन है ऐसा ? किस का भरोसा और विश्वास करे ? प्रेम में अपने आए को दे डालने की बात अब वह नहीं सोचती थी। वह जीवन के लिये सहारा चाहती थी। प्रोड्यूसर पाली, डाइरेक्टर ज़मान उसकी ओर हाथ बढ़ा रहे थे परन्तु खिन आदमियों के स्पर्श से उसे छिपकली को छूने की सी घिचलाहट होती थी, उनके हाथों अपने आप को कैसे सौंप दें ? अपने आपको बेचने की ज़रूरत अब उसे क्या ?

दूसरे लोग पहाड़न का विश्वास पाने की चेष्टा कर रहे थे परन्तु बनवारी उसे किसी का, स्वयं अपना भी विश्वास न करने की नसीहत करता था। इसलिये उसे बनवारी पर ही विश्वास था। वह उसका विश्वास आँख मूंद कर करती थी। बनवारी ने कभी अपना कोई मतलब पूरा करने की चेष्टा न कर सदा उसकी सहायता की थी। कभी उधार लिया भी तो जिद्द कर लौटा गया। वह सोचती थी, यदि बनवारी से ब्याह कर ले ? समाज में इस समय उसकी स्थिति बनवारी से ऊंची थी। कुछ लोग हंसेंगे। हंसने दो उनको ! हम लोग कहीं दूर पहाड़ों में जा बसेंगे। बनवारी ने उसके यहाँ एकान्त में बैठ कर घंटों बात की, बैठ कर शराब पी,

परन्तु उसकी निगाहों में वह बात कभी नहीं दिखाई दी जो पुरुष की आंखों में औरत को औरत समझ कर आ जाती है। यह याद करके कि उसने बनवारी के सम्मुख आत्मसमर्पण के स्पष्ट संकेत किये हैं, पहाड़न को कटुता भी अनुभव होती। बनवारी की यह उपेक्षा ही उसे अधिक आकर्षक बना देती थी।

पहाड़न इसी अप्रिय उलझन में फंसी हुई थी कि सामने सड़क पर बनवारी पैदल चला आता दिखाई दिया। एक दीर्घ श्वास ले पहाड़न ने मन में निश्चय किया—आज इससे आखिरी बात हो जाय! बनवारी ने अपने दुबले शरीर को एक बड़ी कुर्सी के आधे से भी कम भाग में समेट कर पूछा—"खोयी सी कैसे बैठी हो? ...आज पीने की तबीयत है।"

"भई मैं अब तंग आ गई हूँ।"

"किससे?"

"ज़िन्दगी से।...प्यार करने वालों से! कल शाम पाली भाई ने सिर खाया, आज ज़मान साहब ने!"

"बधाई है! निकलवाओ बोतल इसी बात पर! अभी तुम्हारा बाज़ार और चढ़ेगा?"

"हम बाज़ार की चीज़ हैं?"—पहाड़न ने उसकी आंखों में घूर कर पूछा—"शरम नहीं आती?... ...तुम भी ऐसा ही समझते हो?"

"आज तुम बिगड़ी बैठी हो!"—बनवारी झेंप गया।

"मैं दुखी हूँ"—पहाड़न ने आंचल से मुंह ढँक लिया।

"बात क्या है पहाड़न?"—बनवारी ने सहानुभूति से पूछा।

"तुम बताओ मैं क्या करूं? तुम खुद ही कहते हो यह सब बहुत चलेगा चार-पांच बरस चल जायगा।"

"सचमुच ब्याह की बात सोच रही हो...? तुम्हें किस पर भरोसा है?"

"तुम पर......" पहाड़न ने आंचल से मुख ढंक लिया।

"तुम खता खा रही हो"—बनवारी हंस दिया। तुम से पक्ट्रेसी नहीं निभ रही तो किसी गहरी आसामी को पकड़ो, जिसकी बीबी न हो, जिसकी उम्र काफ़ी हो। और सुनो, पहले अदालत में व्याह कर लेना तब प्रेम !····हम चलते हैं।"—बनवारी उठ खड़ा हुआ।

"ठहरो मैं मँगवाती हूँ"—आंखें पोंछ कर उसने कहा

"नहीं अब नहीं पीयेंगे। हम अपनी खुशी के लिये आए थे। तुम हमें अपना गम सुना रही हो।"—वह चला गया।

पहाड़न कटुता से दांत भींच कर रह गई—यही तो आदमी है जिसे मैं भरोसे लायक समझती हूँ। वह ईमानदारी से कह रहा है कि मुझ से खेलने आया था।·········आग लगे इसकी ईमानदारी में।

उस समय फिर उसका ध्यान चौराहे से आती अपने रिकार्ड की आवाज़ की ओर गया—"कस गरे डारो बहियां, मोरे सैयां, इस विध करिये प्रीत !" उसने सोचा दुनिया भर मेरे गले में बांह डाल कर खेलना चाहती है परन्तु बांह थाम कर सहारा देने के लिये कोई तैयार नहीं।

८

मालिकों की अदला बदली—

धनसिंह सरकार से प्राण बचाने के लिये भागता हुआ सिपाही की वर्दी पहन कर सरकारी आदमी बन गया। सभी कार्रवाई नियमानुसार हुई। उसके शरीर को ठोक-बजा कर देखा गया कि उसका स्वास्थ्य सरकार का महत्वपूर्ण काम करने योग्य है या नहीं? फौजी दफ्तर से उसके बताये अपने घर के काल्पनिक पते पर, थाने में पूछताछ के लिये कागज गये कि वह सरकारी नौकरी के लिये विश्वास योग्य है या नहीं? परन्तु जाब्ते और नियम के विराट आडम्बर के नीचे सभी जगह पोल थी। सरकार को इस समय आदमियों की आवश्यकता थी। स्वास्थ्य की परीक्षा करने वाले डाक्टर ने उसके कपड़े उतारते ही, छोटे आदमी के मैले शरीर को छुये बिना, नाक सिकोड़ कर उसे अंग्रेजी सरकार के दुश्मन की गोली के सहारने योग्य पूर्ण स्वस्थ समझ लिया। ज़िला होशियारपुर के "चिन्तपुर्नी" के थाने से उसके विश्वास योग्य होने के प्रश्न पर तहकीकात हुई। मुंशी ने सिपाही को चौदह मील पगडण्डी पर जाकर तहकीकात कर आने के लिये कहा। बिना किसी लाभ की आशा के, इतनी दूर तक एड़ियां न रगड़ कर ही सिपाही ने खबर दे दी कि एतराज के लिये कोई वजह नहीं है।

धनसिंह का ट्रायल लिया गया। प्रायः बरस भर बाद फिर मोटर के "स्टियर, क्लच" और "ब्रेक" हाथ में आने पर और इंजन की गमगमाहट की गूंज सुन पाने पर धनसिंह ने जीवन को स्वाभाविक अवस्था में लौट आया समझा। भर पेट खाना, बैरक में लम्बी नींद, मोटर चलाने का काम, जो उसके शरीर के लिये स्वाभाविक हो चुका था। वह एक दूसरे ही देश और समाज में

आ गया था। यहाँ सभी सिपाहियाना कपड़े पहनते थे, सिपाहियाना रिवाज़ थे, सिपाहियाना बोल चाल थी। यहाँ सब जवान थे, आओ जवान! जाओ जवान! खाओ जवान! मरो जवान! यहाँ इज्जत और बेइज्जती का रूप भी दूसरा था। खाकी वर्दी पहने सभी लोग भूखे-नंगे, सिकुड़े सिमटे लोगों की अपेक्षा सशक्त और सम्मानित थे। इस समाज में सिपाही से नायक, नायक से जमादार, और जमादार से सूबेदार बिना गाली और बूट की ठोकर के बात नहीं करता था। इस गाली और ठोकर का कोई विरोध भी नहीं था। सब ओर हुक्म का राज था। छावनी के इस समाज में मनुष्य जीवन की अनेक श्रेणियां थीं। यह श्रेणियां वर्दी से पहचानी जाती थीं। जिस वर्दी पर फीते की एक कत्तर या पीतल की एक फुल्ली बढ़ जाती, उस की शक्ति और हुक्म बढ़ जाता। साधारण सिपाही को स्त्री साथ रखने का अधिकार नहीं था लेकिन बड़े अफ़सर, कीमती कपड़ों में सजी, गोरी-गोरी, लचकीली स्त्रियों को साथ ले कर गर्व से चलते और बंगलों में रहते थे। यह बड़े लोग थे, जैसे धर्मशाला के लाला जी, बैरिस्टर साहब, मन्नो बीवी, उनके भाई बन्द; पढ़े लिखे लोग, जिनके पास रुपया था, जिन्हें हजारों तनखाहें मिलती थीं। यह लोग हुक्म देते थे और सिपाही काम करते थे।

साधारण सिपाही के समाज में एक अस्वाभाविकता थी, एक तनाव था। विचार और इच्छा की बात न थी, केवल हुक्म था। वहां औरत नहीं थी, बच्चे नहीं थे। स्वराज्य के लिए अंग्रेज़ों से लड़ने वाले हिन्दुस्तान की कोई बात न थी। न इनकलाब जिन्दाबाद था, न महात्मा गांधी की जय! न सुभाष बाबू की जय, न जेल जाने की बात! छावनी की बैरकों की यह दुनिया शेष हिन्दुस्तान की दुनिया से बिलकुल पृथक थी। यहां कांग्रेस, सोशलिस्ट, कम्युनिस्ट, और राजनीति की कोई बात न थी। सिपाही कभी बाज़ार जाते तो कोई पढ़े लिखे लोग अखबार पढ़ कर दूसरी दुनिया की बातें जान पाते और दूसरों को बताते! लेकिन अखबार पढ़ना मना था। यहां परेड की, राशन की, फ्रंट की बात थी, जहाँ तहाँ देखी औरतों की बात ऐसी थी जैसे खेत से मूली या ईख चोरी से उखाड़ लेने की बात हो!

धनसिंह का बाहरी रूप बदल गया था परन्तु मन की भावना नहीं बदली थी। उसका वास्तविक जीवन अंग्रेज़ी सरकार के मिट जाने और स्वराज्य मिल जाने पर ही सम्भव था। तभी वह अपने पहाड़ों में लौट कर सोमा को पा सकता था। उसे सोमा की आँसू भरी सूरत दिखाई देती रहती जो लाला जी की कोठी में मज़दूरनों का काम करती हुई उसकी प्रतीक्षा कर रही होगी। अपनी जैसी वर्दी पहने सभी लोग उसे अपने और देश के, जनता के शत्रु दिखाई देते थे जो अंग्रेज़ी सरकार को देश में बैठाये हुये थे, जो देश भर में रेल की पटरियों पर खड़े होकर अंग्रेज़ी सरकार की रक्षा के लिये पहरा दे रहे थे। जब वह सुनता तीन-चार लाख आदमी ऐसे हैं तो उसे निराशा होने लगती...... अंग्रेज़ों का राज कैसे हटेगा? आज़ादी कोई नहीं चाहता। लोग खुद ही, अपनी इच्छा से ही गुलाम बने हैं।

गाड़ी सुथरे ढंग से चला सकने के कारण धनसिंह की ड्यूटी स्टाफ की कार चलाने पर लगी हुई थी। साधारण सिपाहियों के छावनी से बाहर आने-जाने पर जो रोक थी वह अफसर साहबान के लिये न थी। बरसात के दिन आगये थे। रात में मूसलाधार बारिश होने पर भी मेजर साहब आधी रात तक क्लब में नाचते रहते और धनसिंह बाहर, बौछार से गाड़ी में सिमटा उनका खेल समाप्त होने की प्रतीक्षा करता रहता। वे कभी एक मेम को, कभी दूसरी को लिये बाज़ारों और होटलों में घूमते रहते। मेजर साहबों को साहब और उनके साथ घूमने वाली स्त्रियों को, चाहे वे हिन्दुस्तानी हों, मेमसाहब पुकारा जाता था। धनसिंह सोचता, इन्हें स्वराज्य की क्या ज़रूरत है? बल्कि यह लोग स्वराज क्यों होने देंगे? पुलिस और फौज स्वराज क्यों होने देगी? यह तो अंग्रेज़ों के ही भाई बंद हैं? बड़े लोगों, अमीर लोगों को स्वराज से मतलब? उन्हें कौन तकलीफ है? अंग्रेज़ों ने अपना राज चलाने भर को लोग अपनी तरफ़ समेट लिये हैं।

मेजर साहब के अर्दली यारमुहम्मद से उसकी मित्रता होगई। यारमुहम्मद बहुत हंसोड़ आदमी था। साहब के सामने वह बहुत चुप और आज्ञाकारी बना रहता परन्तु पीठ पीछे उनका खूब मजाक करता। वह अर्दली के काम के लिए बहुत चतुर समझा

जाता था। कोई अफसर बदल कर आए वही अर्दली रहता। यार-मुहम्मद धनसिंह को समझाता—बेवकूफ़, अकड़खां लोग अर्दली की ड्यूटी पसन्द नहीं करते। इसी ड्यूटी में सब से अधिक मज़ा है। कवायद परेड से छुट्टी, बस तन कर सलाम करो! साहब के जूते भी पालिश कर दिये तो क्या? चार घण्टे की परेड में जिस्म कौन तोड़े! वह पहले खिलाफ़त और कांग्रेस में भी काम कर चुका था। सुनाता, उसमें भी मज़े थे। वालंटियरों को खूब हलवा पूरी मिलती थी। उसमें भी हम अपनी ड्यूटी लीडरों की चाकरी में लगवा लेते थे। कांग्रेस दब गई तो हम इधर आगये! अक़्लमंदी तो इसी में है! खुदा ने गीदड़ बना कर पैदा किया है शेर तो बन नहीं जायंगे! पर शेर के पीछे लगे रहो! शेर की जूठन भी अपने लिये बहुत है। धनसिंह इन बातों पर खूब हंसता परन्तु एकान्त में यही बातें उसे निराश करने लगतीं।

पहाड़ी सड़कों पर गाड़ी चलाने का अभ्यास करने के लिये धनसिंह की कम्पनी की बदली रानीखेत छावनी में हो गई। पहाड़ों को देख कर धनसिंह को अपना देश और सोमा और भी अधिक याद आने लगी। पहाड़ बहुत कुछ उसके पहाड़ों जैसे ही थे परंतु फिर भी भिन्न थे। इन पहाड़ों के पुरुष और स्त्रियां भिन्न थीं। सब से बड़ी बात यह कि वे लोग उसकी बोली नहीं बोलते थे। अभ्यास के लिये खाली लारी सड़क पर चलाते समय मुसाफिरों से भरी लारियों को ले जाते ड्राइवरों को देख कर उसे ईर्षा होती। छावनी में प्रायः अंग्रेज़ और अमरीकन जख़्मी सिपाही गाड़ियों पर आते रहते थे, हिन्दुस्तानी सिपाही भी आते थे। सड़क के किनारे और पहाड़ों पर सब जगह फौजी इन्तज़ाम थे। सिपाही पहाड़ों में लड़ाई लड़ना सीख रहे थे। धनसिंह ने कभी नहीं समझा था कि यह देश इतना बड़ा है और अंग्रेज़ी सरकार की ताकत इतनी विस्तृत है। हजार, दस हजार सिपाहियों का मर जाना इनके लिये कोई बात नहीं। उसे अपना अस्तित्व बिलकुल निरर्थक जान पड़ने लगा। लड़ाई के मोर्चे से हजार मील दूर भी अंग्रेज़, अमीरकन और हिन्दुस्तानी जख़्मी सिपाही गाड़ियों में भरे चले आरहे थे। जल्दी ही उसे भी वहीं जाना होगा। छावनी में सिपाहियों को फौजी अख़बार दिया जाता था। इस अख़बार में अंग्रेज़ों की जीत के ही समाचार रहते थे। रानीखेत के बाज़ार

में वह लोगों को दूसरे अखबार पढ़ते देखता था। सिपाहियों को यह अखबार पढ़ने की इजाज़त नहीं थी। लेकिन कानों में भनक पड़ती रहती कि अंग्रेज़ हार रहे हैं।

धनसिंह की कम्पनी फ्रंट पर भेज दी गई। तीन रातें लगातार रेल में रहने के बाद और जहाज़ पर नदी पार कर वह गोहाटी पहुँचा और गोहाटी से दीमापुर स्टेशन के साथ ही खूब चौड़ी सड़क के दोनों ओर बसा हुआ, बांस की टट्टियों और छप्परों का एक शहर। छप्पर बहुत करीने से लाइनों में बने हुए। बस्ती केवल खाकी वर्दी पहने सिपाहियों की थी। दस मील तक सिपाही ही सिपाही। हज़ारों सिपाही, मोटरें और तोपें प्रति-दिन आ जा रहे थे। धनसिंह इतना सरंजाम देख विस्मित रह गया। इतनी शक्ति को कौन गिरा सकता है ?

धनसिंह कनवाय में लारी चलाता था। चार मोटरें एक साथ चल सकने लायक चौड़ी सड़क पर कनवाय मनीपुर आते जाते थे। लारियों पर जाल डाल कर उनमें वृक्षों की टहनियां और झाड़ फंसा दिए जाते थे ताकि आकाश में उड़ने वाले जापानी जहाज़ लारियों को न देख सकें। सिपाहियों से भरी या सामान से लदी लारियां एक दूसरी के पीछे धीमे-धीमे, सम्भल-सम्भल कर, आगे पीछे से इशारे लेकर चलतीं। सड़क पर पचासों लारियों के एक साथ चलने से और सिर पर मंडराते हवाई जहाज़ों की गूंज से पहाड़ी घाटियां थर्राती जान पड़तीं। ऐसा जान पड़ता, प्रलय काल में आकाश और पृथ्वी कांप रहे हैं। कोहीमा की ऊँची चढ़ाइयों के पार मनीपुर के समीप पहुँचने पर तोपों और बन्दूकों की आवाजें ऐसी सुनाई पड़तीं जैसे गोलियों की वर्षा हो रही है और तोपों की गड़गड़ाहट बादल की गर्ज के समान जान पड़ती। घने जंगलों में आधी रात का अंधेरा, मूसलाधार वर्षा कोई भी अड़चन सिपाहियों के मोर्चे की ओर जाने और ज़ख्मियों के लौटने के काम में रुकावट न डाल सकती थी। केवल आकाश से बमों की वर्षा होने पर कनवाय के आगे या पीछे चलने वाली गाड़ियों से संदेश मिलने पर लारियां रुक जातीं। जब तक रुक जाने का हुक्म न मिलता, ड्राइवर आकाश में उड़ते हवाई जहाजों को अपने जहाज समझे रहते।

निरंतर प्राणों के भय में रह कर, हुक्म से प्राणों का भय न करने वाले सिपाहियों में रह कर धनसिंह भी उस भय को जीवन का साधारण क्रम समझने लगा। सड़क पर कई बार बमों से लारियों के उड़ जाने के बाद भी सड़क फिर ठीक कर दी जाती और लारियां चलती ही रहतीं। प्राणों के इस संकट में एक साथ चलने वाले लोग एक दूसरे के लिये मां-बाप और सहोदर भाई-बहिन से भी सगे हो गये। अपने प्राणों पर आतंक देखकर दूसरे को संकट में छोड़कर भागने की बात न सोचते। उनमें आपस में भेद भाव और पर्दा न था, न शारीरिक न मानसिक! जीवन के सब ज़रूरी काम वे एक दूसरे के सामने और साथ ही करते। बिना झिझक के सब बातें कह-सुन लेते। मर्दान, जवाहर, पहलवानसिंह, खेमसिंह आपस में सगे भाइयों से हो गए थे। मस्तिष्क और शरीर पर निरंतर बने रहने वाले बोझ की उपेक्षा करने के लिये, अपनी बात में ज़ोर अनुभव करने के लिये वे सदा गाली देकर बात करते। प्यार-क्रोध, सुख-दुख सब गाली देकर ही प्रकट करते।

दीमापुर से लारियों में सिपाहियों को लेकर या गोला बारूद भर कर या मोर्चे पर लड़ते सिपाहियों के लिये खाने पीने का सामान लेकर मनीपुर की ओर जाने और ज़ख्मी सिपाहियों को लेकर लौटने में चालीस, अड़तालीस, साठ घण्टे तक लग जाते। इतना समय धनसिंह और उसके क़ाफ़िले (कन्वाय) के लोग तलवार की धार पर रहते। परन्तु उन्हें अपनी वीरता पर गर्व करने का भी अवसर न था। कोई एक ही आदमी तो यह सह नहीं रहा था, सभी लोग यही कर रहे थे। उन्हें सोने और खाने के लिये फ़ुर्सत न मिलती। वे चबैना फांकते रहते। आकाश से गिरने वाले गोलों के भय से गाड़ियों को रोक देने का हुक्म मिलने पर आकाश से बरसती मृत्यु के नीचे ड्राइवरों को नींद आ जाती। यह किसी को ख्याल न था कि साठ सत्तर रुपए माहवार के लिये वे यह सब सह रहे हैं। यह उनकी ड्यूटी थी और वे उसे पूरी कर रहे थे।

इस यात्रा से लौटने पर कम्पनी के डाक्टर के हुक्म से सब को छटांक-छटांक भर रम (शराब) मिल जाती। उन्हें कैम्प में प्रायः

चौबीस, बत्तीस घण्टे सुस्ताने के लिये मिलते। वे लोग अपनी गाड़ी को समीप नाले पर ले जाकर धोते साफ़ करते, कैंटीन में जा अपने पैसे से शराब पीते। उससे भी मन न भरता तो बस्तियों में जा कर "जंग" (देहाती शराब) पीते। कैम्पों में आकर अनन्नास, नारंगी और उबले हुए अंडे बेचने वाली औरतों से लेकर कुछ खाते और दिल्लगी करते। आस-पास की बस्तियों में टहलते चले जाते। जगह-जगह तसवीरें लगी हुई थीं जिनमें बहादुर हिन्दुस्तानी सिपाही जापानी राक्षस को कुचल रहा था। जगह-जगह मलेरिया और आतशिक, सूज़ाक से सावधानी की सूचनाएं लिखी हुई थीं। सिपाहियों के मन और शरीर की थकावट दूर करने के लिए अफ़सर लोग ग्रामोफ़ोन के रिकार्ड बजवा देते. सिनेमा भी दिखाया जाता। कभी कभी गाने और नाचने वाले लोग भी बुला लिए जाते थे परन्तु सिपाही लोग इससे संतुष्ट न होकर बस्तियों में घूमने चले जाते। कैम्प से आने-जाने पर रोक थी। फौजी पुलिस पहरा देती थी। हुक्म न मानने पर गोली भी मार दी जा सकती थी। परन्तु सभी जानते थे कि इतनी कठिनाई में काम करना है तो कानूनों को कहां तक माना जा सकता है? सिपाहियों को अधिक डराना और असंतुष्ट करना भी उचित नहीं समझा जाता था।

निरंतर रहने वाले, भय का सामना करने वाले सिपाहियों के लिये भय की उपेक्षा करना स्वाभाविक हो गया था। तबीयत में आवारापन बढ़ने पर वे सूर्यास्त की हाजरी के बाद भी चोरी-चोरी कैम्प से निकल बस्तियों में चले जाते। इस शरारत के लिये कभी दो एक को सज़ा दे दी जाती। प्रायः उपेक्षा भी कर दी जाती। उपेक्षा नहीं थी तो केवल एक बात की! सिपाही आपस में युद्ध की गतिविधि के बारे में, बढ़ते हुये शत्रु से भयभीत होने के बारे में और जापानियों या आजाद हिन्द सेना के पक्ष की तो बात नहीं करते? इस बात के लिये कोई क्षमा नहीं थी। जापानियों के तेज़ी से बढ़ते चले आने की बात उन्हें कोई न बताता था। यह बातें केवल अफ़सर जानते थे।

सतर्कता अधिक होती जा रही थी। जख्मियों की संख्या बढ़ रही थी। कन्वाय छोटे छोटे बना दिये गये थे। सिपाही जानते

थे कि दुश्मन बढ़ा चला आ रहा है। ज़िक्र होता भी था तो दुश्मन को गाली देने के लिये। ज़ख्मी सिपाही गाली देकर बकते हुये आये थे,……"मोर्चे के सिर्फ पचास कदम दूर।" एक दिन सड़क से कुछ ही दूर खड्ड के पार से आ० हि० से० के सिपाहियों ने गाली देकर ललकारा,…… "अंग्रेज़ों के कुत्तो, अपने भाइयों पर गोली चला कर अपनी जान दोगे ?", लारी पर सवार सिपाहियों ने जवाब में और ज़ोर से गोली चलाई। धनसिंह ने सुना। उसके मन की गुप्त इच्छा ने सिर उठाया परन्तु यह बात वह किसी से कह न सकता था।

अप्रैल के दूसरे सप्ताह में धनसिंह चालीस लारियों के कन्वाय में कोहीमा से ज़ख्मियों को ला रहा था। सिर पर आकर हवाई जहाज़ चीलों की तरह झपट रहे थे। संकेत मिला और कन्वाय घने पेड़ों की आड़ में खड़ा हो गया। सड़क पर कन्वाय के आगे-पीछे बमों के विस्फोट का भयंकर शब्द हुआ। कन्वाय छः घण्टे दम साधे खड़ा रहा। अंधेरा घना हो जाने पर कन्वाय चला और रात भर बिना रोशनी किये कन्वाय सरकता रहा। सुबह के समय फिर हवाई जहाज़ घिर आये। कन्वाय फिर रुक गया। फिर बम गिरे। कन्वाय चला तो पीछे की दो लारियां उड़ गई थीं। तीसरे पहर कन्वाय दीमापुर पहुंचा। ड्राइवर बमों के गिरने की घटना पर हंस रहे थे। मर्दानसिंह और होतूसिंह लारियों के साथ ही उड़ गये थे। ज़ख्मियों को हस्पताल में उतार कर कन्वाय ने अपनी लारियां लाइन में खड़ी कर दीं। कप्तान साहब सब ड्राइवरों की पीठ अपने हाथ से ठोक रहे थे। बड़े अंग्रेज़ अफसर भी ड्राइवरों की ओर देखकर प्रशंसा से सिर हिलाकर मुस्करा रहे थे। सब सिपाहियों को गोदाम से छटांक छटांक भर रम और बिस्कुट-मिठाई का राशन मिला। लारियां धोने का आर्डर दूसरे दिन के लिये था।

धनसिंह और तोतासिंह सिगरेट लगाकर टहलने लगे। तोतासिंह ने सलाह दी—"चल कन्टीन से और शराब पियें ?" धनसिंह को तैयार न देख उसने गाली देकर कहा—"……पैसा साथ ले जायगा साले ! मर्दान और होतू की तरह परसों सड़क पर रह जायगा तो पैसा क्या………में रख रख लेगा।"

"चल……"–धनसिंह ने प्यार से गाली दी ! दोनों ने कन्टीन

से एक-एक छटांक शराब और पी। वे और भी पीना चाहते थे परन्तु इससे अधिक देने का कन्टीन वाले को हुक्म न था। वे दोनों टहलते हुये उधर चले गये जहां बस्तियों से आकर औरतें अनन्नास, नारंगी और दूसरी चीज़ें बेचती थीं।

तोता धनसिंह की बांह में हाथ डाले टहल-टहल कर औरतों को देखता हुआ जवान छोकरियों को देख कर अपनी राय प्रकट कर रहा था। वह थोंगमा को ढूंढ रहा था। धनसिंह से उसने कहा—"वह······बिलकुल पटाखा है।······फूटने के लिये तैयार।"

थोंगमा केले के पत्तों पर कटा हुआ अनन्नास नमक मिर्च लगा कर बेच रही थी, दो दो आने में एक-एक पत्ता। थोंगमा के फूले-फूले होंठ पान से लाल थे। चौड़े गोल-गोल चेहरे पर दबी-दबी, लम्बी-लम्बी आंखें। धनसिंह को इन चेहरों की आयु पहचानने का अभ्यास नहीं था। ठोस, गदबदा शरीर, बीस-बाइस की होगी। थोंगमा अपनी रंगीन धारीदार चादर में शरीर को लपेटे, सिमटी हुई बैठी थी। तोतासिंह धनसिंह की बांह में बांह डाले, उसे साथ खींच पंजों पर बोझ दे थोंगमा के सामने बैठ गया। उसने दो पत्ते लिये, एक धनसिंह के लिये और एक अपने लिये।

तोतासिंह के रुपये में से थोंगमा ने बारह आने उसकी ओर बढ़ाये। तोतासिंह ने पैसे वापिस लेने के लिये हाथ बढ़ाया और थोंगमा का हाथ अपने हाथ में दबा लिया। थोंगमा ने मुस्करा कर हाथ पैसों सहित खींच लिया। तोतासिंह ने पूछा—"ज़ूंग है।"

"उधर गांव में"—थोंगमा ने उत्तर दिया।

तोतासिंह ने एक रुपया और थोंगमा को थमा दिया। थोंगमा ने अपने शेष पांच-सात पत्ते डलिया में समेट लिये और उठ गई। उससे बीस कदम पीछे तोतासिंह और धनसिंह टहलते हुये चले। थोंगमा का गांव कैम्प से अढ़ाई मील था। तोतासिंह ने दो कुल्हड़ ज़ूंग पी। धनसिंह को भी पिलाई तोतासिंह ने धनसिंह से एक रुपया दिला दिया। तोतासिंह थोंगमा से और मज़ाक करने लगा।

थोंगमा ने मज़ाक से मुस्कराकर कहा—"चीनी कपड़ा!" तोतासिंह ने दोनों हाथ फैला कर कहा—"इतना चीनी देगा। कम्बल देगा।" सूर्य अस्त होने को हो रहा था। तोतासिंह ने

धनसिंह को कहा—"...हाज़िरी का वक्त हो रहा है।" दोनों लौट पड़े। राह में देर हो जाने के भय से उन्हें दौड़ना पड़ा। दूसरे दिन मोटर को नाले पर धोने के लिये ले जाकर धोते समय तोतासिंह बकता रहा—"साली को सेर भर चीनी और कम्बल थमा देंगे दोनों का काम बन जायगा।" धनसिंह ने सुना परन्तु उसे यह बात अच्छी नहीं लगी। चीनी कम्बल की बात कोई खास नहीं थी। कोहीमा में उसने सड़क किनारे की मोदी को चार पैकट सिगरेट के बदले एक कम्बल लारी में से निकाल कर दे दिया था। सरकारी माल का क्या है ?...तोता बड़ा बदमाश है—उसने सोचा—रंडी-बाज़ी करता है। वह सोचने लगा, ऐसे ही झगड़े में तो मैं दो की जान लेकर आया। यहाँ तो दुनिया ही ऐसी है।

दो दिन की छुट्टी के बाद भी धनसिंह के और साथियों की ड्यूटी कन्वाय पर नहीं लगी। ड्राइवरों ने आपस में गुपचुप कहा—"शायद सड़क जापानियों ने ले ली है।" उन्हें इस बात से न कोई दुख था न भय। धनसिंह दिन में खूब सोता और टहलता इसलिये रात में उसे नींद न आती। वह लेटा-लेटा सोचता अगर जापानी जीत जांय ? ......जाने कितने दिन लगेंगे ? ....थोंगमा......।

पूरे तीन सप्ताह गुज़र गये। कन्वाय कोहीमा मनीपुर की ओर न जाकर दीमापुर से गोहाटी की ओर ज़ख्मियों को लेकर गया और वहाँ और सिपाही लाया। सिपाही चले आ रहे थे, रेल से भी और मोटरों से भी। अफ़वाह थी कि मोर्चे पर बंगाल से हवाई जहाज़ों में सिपाही जा रहे हैं। लड़ाई बहुत ज़ोर पर हो रही है। बर्सात भर धनसिंह गोहाटी की ओर कन्वाय ले जाता रहा। सड़क टूट जाने के कारण कन्वाय दो-दो दिन बीच में रुका रहता।

सितम्बर में जापानी और आज़ाद हिन्द सेना पीछे हट गये थे। धनसिंह का कन्वाय फिर मनीपुर की ओर गया। उसकी गाड़ी सब से आगे थी। उसमें वायरलेस का आदमी साथ बैठा रहता। दूसरी दफ़ा मनीपुर जाकर धनसिंह कन्वाय के आगे-आगे लौट रहा था। कोहीमा से लौटते समय गाड़ियां ढलवान पर ब्रेक लगा धीमे-धीमे उतर रही थीं। धनसिंह की गाड़ी के इंजन पर

सहसा गोलियाँ आ पड़ीं और एक गोली उसकी बाँह छेद गई। दूसरी साथ बैठे वायरलेस वाले आदमी की कनपटी छेद गई। गाड़ी के पहिये का टायर फट कर हवा निकल गई। इंजन चलता रहने के कारण गाड़ी सड़क किनारे खाई में लुढ़क जाना चाहती थी। धनसिंह ने एक ही हाथ से बहुत कठिनता से उसे बचाया।

सड़क के किनारे से उसकी ओर स्टेनगन की (बन्दूक) नालियां झांकने लगीं। कीचड़ में लथ-पथ हिन्दुस्तानी सिपाहियों के चेहरे बन्दूकों की ओट में दिखाई दिये। उन्होंने ललकारा—"अपने मुल्क और कौम के लिये हमारी तरफ आते हो तो गाड़ी रोक दो!" धनसिंह ने पहचाना, आ० हि० से० के सिपाही हैं। उसने हाथ उठा दिये। उसके पीछे आने वाली लारियां भी रुक गईं। सब ड्राइवर हाथ उठा गाड़ी से उतर आये। लारियों में अंग्रेज़ ज़ख्मी सिपाही भरे हुये थे। आ० हि० से० के अफ़सर के हुक्म से गाड़ियों को चालू कर ड्राइवरों ने फुट बोर्ड पर खड़े हो, खड्ड की ओर लुढ़का दिया। लारियां सड़क से गिर कर गेंदों की तरह उछलती हुईं कई सौ गज़ तक लुढ़कती चली गईं। उनमें पड़े ज़खम अंग्रेज़ और अमरीकन बिखर गये। सभी ड्राइवरों ने राइफलें ले लीं और आ० हि० से० के सिपाहियों के साथ "जय हिन्द" का नारा लगा कर खड्ड में उतर जंगलों में पूरब की ओर चले गये।

* * *

धनसिंह दूसरे बीस ड्राइवर साथियों और बीस संतरियों के साथ आ० हि० से० के केवल बारह आदमियों के पहरे में आठ मील पैदल चल कर घने जंगल में फूस से छाये एक छोटे से कैम्प में पहुँचा। आ० हि० से० के अफसर ने खबरदारी के लिये ड्राइवरों और संतरी सिपाहियों की राइफलों से गोलियां निकलवा ली थीं और कह दिया था—"आप लोग देश के दुश्मन का साथ छोड़ कर अपनी कौमी-फौज में शामिल हो रहे हैं। हमें आप पर एतबार है कि आप लोग भागने की कोशिश नहीं करेंगे। अगर आप लोग ऐसा करेंगे तो हमें मजबूरन आप लोगों को गोली मार देनी पड़ेगी।"

धनसिंह गले से लटकाई पट्टी में अपनी जख्मी बांह डाले बायें हाथ से राइफल का बोझ सम्भाले, साहस से सब साथियों के साथ चला जा रहा था। इन लोगों के कैम्प में पहुंचते ही दूसरे एक हिन्दुस्तानी अफसर ने एक चपटे चेहरे वाले उस्तरे से सिर मुंडे जापानी अफ़सर के सामने एक एक सिपाही को अलग-अलग बुलाकर अंग्रेज़ी सेना की स्थिति के विषय में प्रश्न पूछे। ड्राइवर लोग जितना जानते थे बता देने में उन्हें आपत्ति नहीं थी। उन्होंने यह अनुभव नहीं किया कि वे विश्वासघात कर रहे हैं। अपने दुश्मन की नौकरी से छूट कर अपनी कौम की सेना में आ मिलने से उन्हें संतोष था। सभी लोग आ० हि० से० में शामिल होकर अंग्रेज से लड़ने के लिये उत्सुक थे।

एक हिन्दुस्तानी फौजी डाक्टर ने धनसिंह की बांह पर दवाई लगा कर पट्टी बांध दी। उसे दूसरे जापानी और हिन्दुस्तानी जख्मी सिपाही खच्चरों पर या बरमी-कुलियों के कंधों पर स्ट्रेचरों में थे और चल सकने वाले पैदल चल रहे थे। अंग्रेज़ी फौज के कैम्प में जख्मी सिहाहियों के लिये जितना सामान और आराम था, वैसा यहाँ न था परन्तु धनसिंह को इसकी शिकायत न थी। वह अंग्रेज़ की नौकरी थी यह घर का काम था। घने पेड़ों और चट्टानों की आड़ में बने हस्पताल में जख्मी फूस के बिस्तरों पर लेटे हुए थे। जापानी और हिन्दुस्तानी सिपाही अलग-अलग थे। धनसिंह अपनी बांह को सम्हाल कर थोड़ा बहुत घूम फिर सकता था। तुरन्त ही उसने भांप लिया कि समान की कमी है। जापानी सिपाहियों की खातिर ज्यादा है और हिन्दुस्तनी सिपाहियों की दुर्दशा है।

हिन्दुस्तानी फौजी डाक्टर परेशान था। सिपाहियों के शरीर से गोलियां निकालने के लिये उसे दर्द न होने देने वाले इंजेक्शन की दवाई न मिल रही थी। वह दवाई केवल जापानी सिपाहियों के लिये ही उसे दी जाती थी। डाक्टर ने धनसिंह को तसल्ली दी—"बहादुर आदमी हो, हौंसला करो!" कम्पाउण्डर और दूसरे हिन्दुस्तानी अर्दली सिपाही ने धनसिंह की बांह थामी। उसने दांत भींच लिये। गोली निकाल दी गई। धनसिंह की बांह ठीक होने में पूरा एक मास लग गया। कम्पाउण्डर कांगड़े ज़िले का

हो था। अंग्रेज़ों के हथियार डालने के समय वह अंग्रेज़ी सेना के साथ सिंगापुर में ही था। वह सुनाता रहता कैसे सिंगापुर के घिर जाने पर और जापानियों के पूरा कैम्प उड़ा देने की धमकी देने पर अंग्रेज़ कमाण्डर ने हुक्म दिया कि हम तुम्हें जापानी फौज के कमाण्डर के हाथ सौंप रहे हैं। अब तुम्हें जापानी कमाण्डर का ही हुक्म मानना होगा,"......जैसे कोई अपनी बकरियों का गोल बेच देता है......फिर नेता जी आये थे!"— नेता जी की बात कहते समय उसकी आंखें उत्साह और आशा से चमक उठतीं। जापानियों की मदद है परन्तु हम अपने देश से अंग्रेज दुश्मन को भगा कर फिर अपना राज कायम करेंगे।"— वह अपनी पहाड़ी बोली में जापानियों को भी गाली देता......"ये लोग आदमी थोड़े ही हैं! बड़े दग़ाबाज, बड़े राक्षस! अंग्रेज फिर भी आदमी है! वह राज करना जानता है। फुसला कर, खुश रख कर, नौकर को पेट भर खाना देकर काम लेता है। जापानी तो बदन में संगीन घुसेड़ कर काम लेता है। नेता जी का हुक्म है, जापान की मदद हमें चाहे मिले चाहे न मिले, हमें अपनी जान देकर अपना देश लेना है। हिन्दुस्तान में बर्मा की तरह अंग्रेजों के खिलाफ बग़ावत हो जाय तो महीने भर में हम लोग कांगड़े के किले तक पहुँच जायं! धनसिंह, सोचता था जल्दी उसकी बाँह ठीक हो जाय तो वह मोर्चे पर जा कर लड़े और हिन्दुस्तान की ओर सबसे आगे बढ़ने वाली फौज के साथ रहे।

धनसिंह की बांह हिलने-डुलने लायक होते ही उसे ड्यूटी पर भेज दिया गया। आजाद हिंद सेना में मोटरों के काफ़िले न चलते थे। फौज का राशन या सामान लाने और जख्मी सिपाहियों को पीछे ले जाने का काम प्रायः खच्चरों और फौजी कुलियों के कंधों पर होता था। धनसिंह की बांह अब भी बिलकुल ठीक न होने के कारण उसे दो खच्चरों पर पीछे के कैम्प से एक तोपची रिसाले के लिये राशन लाने-ले जाने का काम दिया गया। राशन की भी कमी थी। यहाँ अंग्रेजी फौज की तरह चीनी और बिस्कुटों की बोरियाँ नहीं लुढ़का दी जाती थीं। उसे याद आ रहा था—दीमापुर और कोहीमा के कैम्पों में सिपाही राशन को बूटों तले रौंद कर चले जाते थे और सड़क के किनारे बच्चे और स्त्रियाँ अपने

शरीर को दिखा-दिखा कर मुट्ठी भर चीनी, नमक और कम्बल के लिये अपना शरीर देने के लिये तैयार थे। वह आधा पेट खा कर भी लड़ने में गर्व अनुभव करता था। अब वह जनता का दमन करने वाला नहीं, जनता का सिपाही बन गया था। उसे यह भी नहीं मालूम था कि उसे क्या तनखाह मिलेगी, कब मिलेगी, मिलेगी भी या नहीं ? वह सोचता—एक बार आज़ाद हिन्द सेना का सामना दीमापुर की हिन्दुस्तानी सेनाओं से हो जाय। सभी लोग अंग्रेजों से जले बैठे हैं। फिर तो दिनों की बात है।

सात नवम्बर कैम्प में राशन समाप्त हो गया था। बेसकैम्प से दिन भर राशन न आने पर अफ़सर ने धनसिंह को दूसरे हिन्दुस्तानी अर्दली सिपाही के साथ बेसकैम्प जाकर राशन लाने का हुक्म दिया। धनसिंह आठ मील पीछे गया। गोदामों के जापानी अफ़सर को उसने अपने अफ़सर की चिट्ठी दी। जापानी अफ़सर ने चिट्ठी देखी और अपने साथ के दूसरे दो जापानी अफ़सरों से चिड़चिड़ाहट में बात करता रहा। इन लोगों से पहले कैम्प से आया अर्दली भी खड़ा था। उसने धनसिंह और अर्दली कालेखाँ के कान के पास मुंह ले जाकर कहा—"पाँच घण्टे से खड़ा हूँ। बहन··· जापानियों को राशन दे रहा है। साले ने मेरी चिट्ठी फाड़ कर फेंक दी।"

जापानी अफ़सरों का ध्यान आकर्षित करने के लिये धनसिंह के साथ के अर्दली ने फिर सलाम किया। अफ़सर के माथे पर त्योरियाँ गहरी हो गईं परन्तु धनसिंह और उसके साथ के अर्दली सिपाही को संकेत से अपने पीछे बुला कर वह एक गढ़े में उतर गया। गढ़े में बीस-पचीस बोरियां उपर नीचे रखी हुई थीं। अफ़सर के इशारे से दोनों सिपाही एक-एक बोरा उठा कर अफ़सर के सामने लाते। अफ़सर बोरी में हाथ डाल कर देखता जा रहा था कि भीतर क्या है। चावल और आटे की बोरियाँ उसने एक ओर रखवा दीं। एक बोरी में काली मिर्च भरी हुई थी। काली मिर्च हथेली पर ले अफसर ने इशारे से पूछा, यह क्या है ? अर्दली ने उत्तर दिया—"काली मिर्च।" अफसर ने इशारा किया—"क्या काम आती है ?" अर्दली ने मुख की ओर हाथ कर बताया कि खाई जाती है ? अफ़सर ने बूट की ठोकर से इशारा किया, ले जाओ !

अर्दलियों और धनसिंह ने समझाना चाहा कि यह चीज़ ऐसे नहीं खाई जाती। परन्तु जापानी अफ़सर नाराज हो गया। काली मिर्च की बोरी न छोड़ते बनता था और न ले जाने से कुछ लाभ था। वे लोग काली मिर्च की बोरी खच्चर पर लादे उदास लौट रहे थे। अर्दली कालेखां ने धनसिंह को फटकारा "अब घबराता क्यों है ? हम लोग तो जानवर सिपाही हैं। पहले अंग्रेज़ जोतता था। उसके पास अच्छा चारा था। वह खूब लड़ाने के लिये हरी-हरी चराता था। अब जापानी के बस हैं। कभी नेता जी की दया से रूस जैसा राज होगा तो हम लोगों के दिन भी फिरेंगे। नेता जी का हुकम है कि मुल्क की आजादी के लिये सब कुछ सह जाओ ! नेता जी आते हैं तो यह लोग हम से हँस-हँस के बात करते हैं नहीं तो जो हाल बर्मियों का सो अपना ! यह लोग तो हमें कच्चे खा जाते !

दो घण्टे पहले दो अंग्रेज़ी हवाई जहाज़ इधर बम फेंक गये थे। पगडण्डियां टूट-टूट कर बिखर गई थीं। राह पहचानी न जा रही थी। यह लोग अनुमान से दक्षिण पश्चिम की ओर चले जा रहे थे। कालेखां बार-बार कह रहा था, राह भूल गये हैं, अंधेरे में और भटक जायंगे। कहीं रुक जाएं दिन निकलने तक। काली मिर्च का बोरा पहुंचा ही देंगे तो क्या होगा। दूसरे अर्दली चित्तरसिंह और धनसिंह ने बन्दूक चलने की दूर से आती आहट की ओर चलते जाना निश्चय किया। उत्तर पश्चिम की ओर दो मील जाने पर पौ फटने का अभ्भास पूर्व की ओर होने लगा। यह लोग राह का निश्चय अब भी न कर पाये थे। खच्चर बोझ के नीचे बार बार लड़खड़ा जाती थी यह लोग एक घने वृक्ष के नीचे, चट्टान की आड़ में बैठ गये। बैठ कर कमर सीधी करने के लिये लेट गये और नींद आ गई ?

सांस रुकने से धनसिंह ने छटपटा कर उठने का यत्न किया पर हिल न सका। आंखें खोलने का यत्न किया परन्तु आंखों पर भी कपड़ा दबा दिया गया था। उसके हाथ पीछे बांध दिये जाने पर आंखों पर से कपड़ा हटाया गया। उस के दूसरे दोनों साथियों की भी ऐसी ही अवस्था थी। उनके सामने पिस्तौल की नाली कर धीमे से कहा गया—"अगर चिल्लाओगे तो गोली मार दी

जायगी। उनके मुख से कपड़ा हटाया गया और पूछा गया कि तुम्हारी शेष सेना कहां छिपी है ?"

धनसिंह और उसके साथी अंग्रेज़ी सेना के स्काउटों के हाथ गिरफ़्तार हो गये थे। उन्होंने कोई भी खबर देने से इनकार कर दिया। उन्हें कैम्प में लाकर अलग-अलग कैद कर दिया गया। उन्हें छः घण्टे समय सोच कर निश्चय कर लेने को दिया गया कि शत्रु का सब भेद बता दें नहीं तो गोली मार दी जायगी। छः घण्टे बाद धनसिंह को फिर एक हिन्दुस्तानी और एक अंग्रेजी अफ़सर के सामने पेश किया गया। वह भय से कांप रहा था परन्तु उसका उत्तर एक ही था—"मैं कुछ नहीं जानता।"

धनसिंह को गोली न मार कर दूसरे सैनिक कैदियों के साथ कैद कर दिया गया। अगले दिन कालेखां भी आ गया। चित्तरसिंह तीन दिन बाद आया! उसके शरीर पर चोटों के निशान थे! चित्तरसिंह को खूब पीटा गया था। उसने अपनी कहानी सुनाई कि वह अपनी चालाकी के कारण पिटा। डर कर उसने झूठ बोला था कि उसे आ० हि० से० ने ज़बरदस्ती सिपाही बनाया था। वह अंग्रेज़ी सेना में मिल जाने के लिये भाग कर आ रहा था। अफसरों ने उसकी वफ़ादारी की तारीफ़ की। उसे साथ चल कर आ० हि० से० के मोर्चे और कैम्प की राह बताने के लिये कहा। वह स्काउट पार्टी को चौबीस घण्टे भटकाता रहा। उसे बार-बार गोली मारने की धमकी दी गई। वह गिड़गिड़ा कर कह देता, हुजूर रास्ता नहीं मिल रहा। उसे पीटा भी गया और फिर लाकर अफ़सर के सामने पेश किया गया। अफ़सर ने कह दिया—"हटाओ, डरपोक आदमी है। शायद भूल ही गया हो! दिमाग़ में गोबर होता है इन सिपाहियों के।"

धनसिंह ने पन्द्रह दिन प्रायः सौ सिपहियों के साथ तारों से घिरे फूस के कैम्प में बिताये। बाद में उन्हें गोरखे सिपाहियों की गारद की कैद में दीमापुर की राह सिलीगुरी कैम्प में भेज दिया गया। आ० हि० से० के सिपाही हिन्दुस्तानी थे और हिन्दुस्तानी सिपाही ही संगीन बांधकर उन पर पहरा दे रहे थे। अफ़सरों का हुकम था कि पहरेदार सिपाही और कैदी सिपाही आपस में बिलकुल बात न करें। पहरेदार सिपाही अपनी राजभक्ति और

स्वामीभक्ति के अभिमान में आ० हि० से० के सिपाहियों को नमक-हराम समझ कर घृणा करते थे और आ० हि० से० के सिपाही उन्हें अंग्रेज़ के टुकड़ाखोर कुत्ते, टुकड़े के लिये देश को बेचने वाले ग़द्दार समझते थे। आ० हि० से० के सिपाहियों को आशा थी कि शीघ्र ही उनकी विजय होगी और वे अपने आज़ाद भाइयों से गले मिलेंगे। शनैः शनैः पहरेदार और कैदी सिपाहियों में जाति और भाषा का सर्मान्य प्रकट होने लगा। कायदे की सख़्ती के बावजूद बाहर से खबरें आने लगीं। छिपाकर अखबार भी आने लगे। अंग्रेज़ों की जीत से सिपाहियों के दिल मुर्झाने लगे। वे अपने अंधकारमय भविष्य के लिये तैयार होने लगे। उन्हें एक ही सान्त्वना थी कि वे देश के लिये लड़े थे, उसका जो भी परिणाम हो!

× × ×

युद्ध अंग्रेज़ों की जीत से समाप्त हो गया। कैम्पों में आ० हि०से० के निराश कैदी सिपाहियों को समाचार मिलने लगे कि देश की जनता उन की मुक्ति का आन्दोलन कर रही है। कैम्पों में छुंटनी और जांच-पड़ताल होने लगी। सिपाहियों के पुराने लेखे और हिसाब देखे जाने लगे। किस अवस्था में वे आ० हि० से० में जा मिले थे? विवशता से अथवा अपनी इच्छा से? जो भय और विवशता से आ० हि० से० में सम्मिलित हुये थे, निर्दोष समझे गये। जो अपनी इच्छा से कर्तव्य समझ कर आ० हि० से० में गये थे, वे अविश्वास के योग्य और अपराधी माने गये। धनसिंह के छूटने की बारी नहीं आ रही थी क्योंकि वह डरपोक न होने के कारण विश्वास योग्य न समझा गया।

देहली में आ० हि० से० के नेताओं का मुकद्दमा चल रहा था। सम्पूर्ण देश और आ० हि० से० के कैदी उत्सुक प्रतीक्षा में उसके परिणाम की प्रतीक्षा कर रहे थे। जनता की प्रबल मांग के सामने अंग्रेज़ सरकार को झुकना पड़ा। आ० हि० से० के नेताओं के छूटने के तीन मास पश्चात धनसिंह भी बांकीपुर कैम्प से रिहा कर दिया गया।

अपनी अपनी राहें—

'ग़रीब की आह' फिल्म में नायिका की भूमिका करने के लिये प्रड्यूसर सुतलीवाला पहाड़न से बातचीत कर रहे थे। पहाड़न ने पहले तो कहा— कि मैं तीन फिल्मों में काम कर रही हूँ। मेरे पास समय कहां है ? परन्तु जब सुतलीवाला ने उसकी सुविधा से सब प्रबन्ध कर देने का आश्वासन दिया तो पहाड़न ने पूरी फिल्म में पार्ट करने के पचहत्तर हज़ार मांगे ! सुतलीवाला ने मुस्करा कर पूछा—"ग़रीब की आह के इतने दाम मिलें तो भी क्या ग़रीबी शेष रह जायगी ?"

इस परिहास से पहाड़न मुस्कराकर चुप रह गई। सुतलीवाला ने स्वर में कुछ दरद लाकर कहा—"असल बात तो यह है कि ग़रीब की आह सुनी ही नहीं जाती। नहीं तो उसकी आह में इतना बल है कि मौजूदा सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था भस्म हो जाय !" और उन्होंने समाज के प्रति भयंकर क्रोध प्रकट करने के लिये मुख से सिगार के धुयें का बहुत बड़ा बादल छोड़ दिया। उन्होंने हाथ में थमें गिलास में आँखें गड़ा उसे हिला दिया। सहसा सैकड़ों बुलबुले ह्विस्की मिले सोडे में से फूट पड़े, जैसे बड़े भारी विक्षोभ का विस्फोट हो गया हो। सुतलीवाला पहाड़न की आंखों में देख कर कहते गये—"जानती हैं आप, इस युद्ध में एक अरब रुपया रोज़ाना खर्च हो रहा है। इसलिये कि एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रों के शोषण का अधिकार चाहता है। परन्तु यदि संसार में 'ग़रीब की आह' सचेत रूप से संगठित हो जाय तो संसार भर के समाज से शोषण की समस्या एक दिन में............एक दिन में हल हो जाय !"

पहाड़न ने सुतलीवाला की बुद्धिमत्ता के प्रभाव से मौन रह कर स्वीकृति में पलकें झपकीं। अपनी बात जमती देख, हाथ के गिलास की उपेक्षा कर सुतलीवाला बोले—"ग़रीब कौन है? ग़रीब स्वयं नहीं जानता कि वह लुट रहा है।" उन्हों ने पहाड़न की आँखों में आँखें गड़ा कर कहा—"आप कहती हैं, इस फ़िल्म में पचहत्तर हजार लेंगी। आप कहेंगी तो मैं दूंगा। आप समझतीं हैं बहुत ले लिया। पर मैं कहाँ से दूंगा? पूंजीपतियों का रुपया है। कुछ आप को दूंगा, कुछ दूसरे एक्टरों को दूंगा, दिन रात सिर तोड़ परीश्रम कर फ़िल्म बनवाकर फिर उसे बेचने का परिश्रम कर कुछ मैं लूंगा। पूंजीपतियों की बैंकों में पड़ी प्रायः चार लाख की पूंजी लगेगी। आप जानती हैं इस फिल्म से कितना रुपया आयगा?" हाथ उठा कर उस ने कहा—"बारह चौदह लाख! वह जायगा पूंजीपतियों के पास! मैं और आप अपनी कला से, अपने परिश्रम से पूंजीपतियों को कमा कर देते हैं। उनके पास हमारी मेहनत के रूप में और अधिक पूंजी जमा हो जाती है। हम पर उनका कब्जा और अधिक जम जाता है।" उन्हों ने स्वर धीमा कर कहा—"मैं सोशलिस्ट हूँ, इसलिये यह सब भेद आप को बता रहा हूँ। मैं चाहता हूँ, हम इंटेलेक्चुअल (बुद्धिजीवी) लोगों का शोषण न हो। आप कम्पनी से पचहत्तर हजार नहीं एक लाख मांगिये! दिलाना मेरा काम है।" उन्होंने अपने सीने पर हाथ रखा और धीमा स्वर करके कहा—"आप को खर्च चलाने की तो तंगी है नहीं, दूसरी कम्पनियों में आप का काम चल रहा है, ज़रूरत हो भी तो उसका प्रबन्ध हो सकता है। आप कम्पनी से कहिये, इस फिल्म में पार्ट करने के लिये कम्पनी में मेरे एक लाख के 'शेयर' होंगे। इस तरह मुनाफ़े में आप को मिलेगा तीन लाख!"

उन्हों ने पहाड़न की विस्मय से फैली आँखों के सामने हाथ फैला दिया—"कम्पनी के प्रबन्ध में आप का हक़ होगा। आप पचहत्तर हजार रुपये की नौकर बन कर अपना शोषण क्यों करायें? आप मेहनत करती हैं, आप को मालिक होना चाहिये। जो मेहनत करता है उसी को मालिक होना चाहिये।" सुतलीवाला की उंगलियों में थमा सिगार बुझ गया था और मेज़ पर

उनका हाथ पड़ने, से उपेक्षित पड़ी ह्विस्की के गिलास में से महीन बुलबुलों का भंवर उठने लगा। "इसी तरीके से हम समाज में वैधानिक और शांत क्रांति कर सकते हैं। एक यह कम्युनिस्ट लोग हैं कि मज़दूरों को भड़का कर शोर कर देते हैं। मज़दूर पिट कर चुप हो जाते हैं। क्रान्ति मज़दूरों के बस की बात नहीं है। आप 'इकनामिक्स' (अर्थशास्त्र) और पालिटिक्स (राजनीति) में गहरे जाइये तो देखेंगी कि क्रान्ति मिडिल क्लास (मध्यम श्रेणी) के बुद्धिजीवी लोगों का ही काम है। वही लोग तो वास्तव में समाज को चला रहे हैं। आज वे समाज को पूंजीपतियों के लिये चला रहे हैं। कल वे सचेत होकर अपने हित में समाज को चला सकते हैं। उन्होंने पहाड़न की विस्मय से फैली, बड़ी-बड़ी आंखों में देख कर मुस्करा दिया और बोले—"आप सोच लीजिये, आप को जैसे भी सुविधा होगी, दो चार इधर—दो चार उधर में निश्चय हो जायगा। बात मेरे ही हाथ में है। यह तो अपनी निजि बात मैंने आप के सामने रख दी।"

"गरीब की आह" में, सुतलीवाला के प्रस्ताव के अनुसार काम करने के विषय में पहाड़न ने कई दिन तक सोचा। मन में आया कि बनवारी को बुला कर राय ले। परन्तु उसके व्यवहार से वह चिढ़ गई थी, अपने आप को जाने क्या समझता है? मेरा काम क्या उसके बिना चल नहीं सकता? सुतलीवाला पहाड़न से मिलते रहे। वह प्रत्येक मुलाकात पर उनसे अधिक प्रभावित होती गई। सुतलीवाला स्वयं ही उसके भविष्य की समस्या का हल उसके सामने रख देते। पहाड़न ने उनका प्रस्ताव मान लिया। अपनी ओर से उसने बनवारी को फिल्म में असिस्टेंट-डाइरेक्टर बनाने का अनुरोध किया।

"गरीब की हाय" फिल्म बनने का प्रचार बहुत ज़ोर से हुआ। प्रोड्यूसर सुतलीवाला ने सब से प्रसिद्ध एक्टर मुनव्वर को भी पचास हजार के ठेके पर नायक की भूमिका के लिये लगा लिया था। उसके भी पचीस हज़ार के शेयर थे और पचीस हज़ार नकद लेने की बात थी। अपने समय के दो मुख्य एक्टर और एक्ट्रेसों के इस फ़िल्म में काम करने से शेष एक्टर और एक्ट्रेस

सुतलीवाला को काफ़ी सस्ते दामों मिल गए। दूसरे दर्जे के एक्टर, एक्ट्रेसों को लोभ था कि प्रसिद्ध अभिनेताओं के साथ काम करने से, भविष्य के लिए उनका भी नाम चमक जायगा।

फिल्म का शूटिंग तेज़ी से हो रहा था। बम्बई के "मधुवन" सिनेमा ने, लाहौर, दिल्ली, कलकत्ता आदि के कई सिनेमाओं ने फ़िल्म के बुकिंग के लिए पेशगी पाँच लाख जमा कर दिया था। पद्दाइन संतुष्ट थी कि उसने भूल नहीं की। सुतलीवाला प्रायः उसके यहाँ आता रहता था। कभी वह पद्दाइन को अपनी गाड़ी में संध्या समय घुमाने ले जाता। बातचीत केवल कम्पनी के प्रबन्ध तक ही सीमित न रहती। सुतलीवाला की भलमनसाहत और चतुरता के विश्वास से पद्दाइन ने बैंक में जमा अपनी रकम के विषय में राय ली। सुतलीवाला ने उसे "स्टील कम्पनी" और दूसरी कम्पनियों में शेयर खरीदवा दिए और बाद में दस हज़ार रुपये ला कर भेंट कर दिये। पद्दाइन ने विस्मय से पूछा—"यह कैसे ?"

सुतलीवाला ने उत्तर दिया—"यदि दूसरे व्यक्ति की मार्फत शेयर खरीदतीं तो यह उसका कमीशन होता। यह मुझे कम्पनियों ने दिया है। परन्तु तुम्हारे काम का मैं कमीशन नहीं लूंगा........ इसे मैंने अपना काम समझ कर किया है।" पद्दाइन की आँखों में कृतज्ञता की तरलता आ गई। उसने अनुरोध किया—"नहीं यह तुम्हारा है, तुम रखो! मुझ पर तुम्हारे और काफ़ी एहसान हैं।"

सुतलीवाला ने उदासी से कहा—"मैं रुपये का क्या करूंगा। मेरा जीवन बहुत संक्षिप्त और महत्वकांक्षाहीन है। मैं तो केवल चाहता हूँ कि दूसरों के साथ अन्याय न हो! अपने निर्वाह के लिये मैं यों ही पर्याप्त कमा लेता हूँ। क्यों व्यर्थ जमा करूं ?" उसने दुखित स्वर में अपनी व्यथा सुनाई कि विवाह किए उसे डेढ़ बरस हुआ परन्तु पत्नि से उसकी एक दिन के लिये नहीं बनी। पत्नि के विचार, स्वभाव और प्रकृति दूसरे ढंग की है और मेरी दूसरी। हम लोग एक ही मकान में रहते हैं परन्तु एक दूसरे को देखे प्रायः सप्ताह बीत जाते हैं। मैं अपना नैतिक कर्तव्य समझ कर निभाए जाता हूँ। यदि तुम मेरा मकान देखो, तो वहाँ तुम्हें

किसी स्त्री की छाया दिखाई न देगी ? वह कभी दोपहर में अकेले आकर कुछ देर बैठ जाती है और कभी रात भर नहीं आती। उसकी अपनी सोसायटी है, अपने मित्र हैं। वह समझती है, मैं उसके योग्य नहीं हूं; मुझ से भी उसका तीखा और अहंकारी स्वभाव सहन नहीं होता।

पहाड़न को बहुत विस्मय हुआ। इतने सज्जन पुरुष के साथ जिस स्त्री का निर्वाह नहीं हो सकता, वह कैसी होगी ? समवेदना की उत्सुकता में उसने कई प्रश्न पूछे। सुतलीवाला ने बिना संकोच के बता दिया कि दो बरस पूर्व वह मंसूरी पहाड़ पर था। उस समय उसका एक पंजाबी मित्र अपनी बहिन के साथ आकर होटल में उसके साथ ठहरा था। वहीं उनका परिचय मिसेज़ सुतलीवाला से हुआ। उस समय उसे वह बहुत सज्जन जान पड़ी। सप्ताह भर में कोई आदमी किसी को क्या पहचान सकता है ? दोनों ही एक दूसरे को भले लगे। उसके लाहौर लौट जाने के बाद आपस में पत्र व्यवहार भी हुआ। एक दिन सहसा उसका पत्र आया कि वह मुझ से विवाह करना चाहती और तार आया कि विवाह की तारीख निश्चित कर दी गई है। मैं वचन बद्ध था। विवाह के तीसरे दिन वह मुझ से लड़ पड़ी।

पहाड़न ने सुतलीवाला के प्रति सहानुभूति से एक गहरी साँस ले कर कहा—"देखूं तो सही ऐसी कौन औरत है ? परन्तु मैं तुम्हारे यहाँ जाऊं तो मुझ से लड़ेगी तो नहीं ?

"नहीं, कभी नहीं ! शायद वह प्रसन्न होगी कि उसे मुझे तलाक दे देने का बहाना मिल गया।" सुतलीवाला हँस दिया।

पहाड़न ने वितृष्णा से कहा—"तुम्हीं क्यों उसे तलाक नहीं दे देते ?"

"व्यर्थ में एक स्त्री का जीवन खराब हो जायगा।"—सुतलीवाला के स्वर में करुणा थी परन्तु पहाड़न ने उस करुणा की अवहेलना कर उत्तर दिया—"वाह !"

× × ×

पहाड़न अपनी विक्षिप्त मानसिक अवस्था में सहारे के लिए

बनवारी की ओर झुकी थी। बनवारी ईमानदारी से या कायरता से पीछे हट गया। यह मानसिक अपमान सह कर जब वह आश्रय की खोज में भटक रही थी तो सुतलीवाला उदार हृदय और दूरदर्शी बुद्धि लेकर उसके सामने आ गया। वह सदा निस्वार्थ भाव से कोई न कोई ऐसी बात सुझाता रहता कि जिससे पहाड़न का हित होता। पहाड़न को ऐसा अनुभव होता कि इस उपकारी व्यक्ति के लिये वह कुछ नहीं कर सकती। पहाड़न के लिए भविष्य की बात करते समय वह प्रायः कहता—"हम लोग ऐसा कर सकते हैं, वैसा कर सकते हैं।" पहाड़न ने सोचा वह बनवारी से अच्छी बच गई।

अब बनवारी आता तो वह उससे उतनी आंतरिकता से बात न करती। यदि वह अब पहले की तरह आकर कहता कि पहाड़न हम पीयेंगे ; तो पहाड़न को कमीनापन और यह असभ्यता जान पड़ती। वह ऐसे चुप रह जाती कि सुना नहीं। स्वयं भी वह नींद लाने के लिये पीने की आवश्यकता न समझती। नींद आने से पहले सुतलीवाला की बात सोचती रहती। इस मिठास के सामने नशे की जड़ता की ओर उसकी प्रवृति न होती। बनवारी का आना भी बहुत कम हो गया था। पहाड़न मन में कुढ़ती—"असिस्टेंट डाइरेक्टर क्या बनवा दिया है, मिजाज़ हो गया है।' एक दिन सुतलीवाला के उपकार की बात सोचते-सोचते उसे बनवारी के अहंकार का ख्याल आया—"इसने मेरा निरादर किया। सदा ऐसे सम्बोधन करता है जैसे मैं कुछ हूँ नहीं। यह मुझे रंडी समझता है।" उस दिन से पहाड़न को बनवारी की सूरत से घृणा होने लगी। सुतलीवाला उससे सदा सम्मानित महिला का व्यवहार करता था। बनवारी ने उससे खोद-खोद कर सब बातें पूछ डाली थीं परन्तु सुतलीवाला ने कभी एक भी प्रश्न पहाड़न के दुर्भाग्य के दिनों की बाबत न पूछा। वह सदा उसके सम्मानित महिला होने का विश्वास दिखाता रहा।

पहाड़न ने शनिवार रात दो बजे तक स्टूडियो में काम किया था। अगले दिन रविवार था। वह ग्यारह बजे नींद से उठी। उतावली से गुसलखाने में गई और कपड़े बदले। सुतलीवाला से उसने साढ़े ग्यारह बजे आने के लिये कहा था; छुट्टी के दिन कहीं

चलेंगे। दोपहर का खाना भी कहीं बाहर खायेंगे। सुतलीवाला साढ़े ग्यारह, बारह बजे तक नहीं आया। पहाड़न उसके यहाँ न तो फ़ोन करती थी और न कभी जाती थी। उसे कलहन मिसेज़ सुतलीवाला से बहुत भय लगता था विशेष कर इसलिये कि वह सुतलीवाला को परेशान करेगी। वह परेशानी में इस कमरे से उस कमरे में आ जा रही थी। उसकी दृष्टि सड़क पर थी और कान सुतलीवाला की मोटर के हार्न के स्वर की प्रतीक्षा में। सुतलीवाला पौन बजे आया। पहाड़न ने देखा, वह उदास था और मुस्कराहट से उदासी छिपाने का यत्न कर रहा था। सुतलीवाला के आते ही पहाड़न उसकी गाड़ी में जा बैठी और पूछा—"क्यों, बात क्या है ?" सड़क पर भीड़ काफी थी। सुतलीवाला अपना गाड़ी को शहर से दूर ले जाने के लिए तेज़ी से चला रहा था। पहाड़न भी सांस रोके शहर से बाहर निराले में पहुंच जाने की प्रतीक्षा करती रही।

पहाड़न के कई बार आग्रह करने पर सुतलीवाला ने उत्तर दिया—"वह और जिन्दगी दूभर किये है।"

"क्यों क्या कहती है ?"—आशंका से पहाड़न ने पूछा।

"तलाक चाहती है।"

"तो मरने दो चुड़ैल को !"—पहाड़न ने क्रोध में गहरा सांस छोड़ कर कहा।

सुतलीवाला ने उत्तर दिया—"सोच लो !"

"क्या ?"—विस्मय से आँखे फैला पहाड़न ने पूछा

"लोग कहेंगे, पहाड़न से ब्याह करने के लिए मैंने तलाक दिया है।"

पहाड़न की आँखें झुक गईं। पल भर सोच कर पहाड़न ने सुतलीवाला की ओर देख दुखी स्वर में प्रश्न किया—"तुम इसमें अपना अपमान समझते हो ?"

"मैं ?·········मुझे केवल तुम्हारा ख्याल है ?"

पहाड़न आँचल से मुख ढाँप रो पड़ी।

सुतलीवाला ने पहली बार साहस किया। उसने पहाड़न को बाहों में सम्भाल कर पूछा—"रोती क्यों हो ? क्या मेरी बात बुरी लगी।"

"मुझे रोने दो"—पहाड़न ने उत्तर दिया—"एक उम्र के बाद आज सुख से रो रही हूँ।" पहाड़न कई मिनिट तक रोती रही और सुतलीवाला उसका सिर अपने सीने पर दबाये रहा। पहाड़न ने आँसू पोंछे बिना, अपना मुख सुतलीवाला की ओर उठा. उसके गले में बाहें डाल कर कहा—"आज मैंने जीवन में....। सच कहो, तुम मुझे कभी नहीं छोड़ोगे ?" सुतलीवाला ने अपने ओठों के दबाव से उसके होठों से निकलते शब्द रोक दिए।

× × ×

मनोरमा को प्रति दूसरे सप्ताह बैरे के हाथ से मिलने वाले लिफाफे में सौ रुपए के नोट मिल जाते थे। अपने लिए लज्जा की यह बात उसने भूषण के अतिरिक्त और किसी दूसरे को न बताई थी। भूषण ने समझाया था कि इसमें लज्जा या ग्लानि की बात क्या है ? तुमने उसे पन्द्रह-हज़ार रुपया नक़द दिया हुआ है। उसके यहां खाना ही तो खाती हो ! इन रुपयों का उपयोग यह होता कि मनोरमा को बस और ट्राम के टिकट खरीदने में कठिनाई न होती, आवश्यकता होने पर टैक्सी भी कर सकती थी, भोजन के लिए मालाबारहिल लौटना आवश्यक न होता या भूषण को कड़वी गंध के, चार मीनार सिगरेट की जगह मनोरमा अच्छे सिगरेट खरीद देती या कभी वे दोनों, एक दो और कामरेडों के साथ 'मैट्रो' में जाकर सिनेमा देख आते। देसी फिल्म देखने का भूषण को शौक न था और मनोरमा को तो उनसे चिढ़ थी। यहाँ तक कि स्वयं सुतलीवाला की बनवाई फिल्म "दिन और रात" भी वह कभी देखने नहीं गई थी।

उस दिन बैरे के हाथ से लिफ़ाफ़ा ले उसे खोलती हुई वह मकान से चली जा रही थी। दस-दस के दस नोटों के साथ एक टाइप किया हुआ पत्र भी मिला। तिबत्ती से ढलवां सड़क पर उतरते हुए मनोरमा पत्र पढ़ने लगी। ज्यों-ज्यों वह पत्र पढ़ती जा रही थी उसकी चाल धीमी होती जा रही थी। उसने एक ओर

खड़ी होकर पत्र को दुबारा पढ़ा। वह विस्मित थी और परेशान भी। खड़ी रह कर उसने पल भर सोचा। फिर समीप से जाती टैक्सी को किराये पर बुला कर बोली—"सैंडहर्स्ट रोड—खेतवाड़ी।" पार्टी दफ्तर के सामने उतर उसने सोचा यह समय ठीक नहीं है। उसने कलाई की घड़ी देखी, दो बज चुके थे। खाने की छुट्टी का समय पूरा हो चुका था। भूषण को इस समय बुलाना ठीक नहीं। वह टैक्सी का भाड़ा चुका कर पैदल ही 'सोवियट मित्र संघ' (F.S.U.) के कार्यालय की ओर लौट गई।

साप्ताहिक पत्र के प्रूफ मनोरमा की प्रतीक्षा कर रहे थे। वह ठीक से काम नहीं कर पा रही थी। पत्र की पंक्तियां बार-बार उसकी आँखों के सामने नाच जातीं। वह बार-बार सोच रही थी—"आखिर उसका मतलब क्या है ?" गनीमत यह थी कि कामरेड मिसेज नीता दफ्तर में नहीं थी। कामरेड आवरे अगले संस्करण का मैटर तैयार कर रहा था। वह बार-बार पुकार लेता—"कामरेड यह देखोगी ?....अरे बड़े काम की चीज मिली।"

मनोरमा झुंझला उठी—"डांट डिस्टर्ब कामरेड (साथी, शोर मत करो)" वह उठी और भूषण को फोन पर बुला कर कहा—"एक बहुत ज़रूरी काम है। छः बजे सीधे यहाँ आ जाना।"

भूषण ने काम पूछा। मनोरमा ने उत्तर दिया—"आओगे तो बताऊँगी।" मनोरमा के स्वर की उतावली से भूषण ने पूछा—"कोई खास बात है ?"

मनोरमा को कहना पड़ा—"नहीं, बस तुम आ जाना !" भूषण फिर बोला—"यदि खास बात नहीं है तो साढ़े-सात बजे रखो, काम भी खतम हो जाय। खाना खाकर आऊंगा।"

मनोरमा झुंझला उठी—"खाने से पहले !"

छः बजे भी उसके प्रूफ़ समाप्त न हुये। उसने आवरे से सहायता मांगी। आवरे ने मज़दूरी मांग ली—"एक प्याला चाय और एक पैकेट सिगरेट, चार मीनार का !" मनोरमा ने झुंझलाकर एक रुपया फेंक दिया। रुपया ले आवरे ने सलाम किया और सब प्रूफ़ उसके सामने से उठा लिये। मनोरमा मुस्करा दी—"थैंक्यू, गुड कामरेड।"

मनोरमा फिर पार्टी दफ्तर पहुंची। भूषण के कमरे में जाकर पुकारना पड़ा। नीचे सड़क पर आ कुछ कदम पैदल चल भूषण ने पूछा—"घबराई हुई हो, क्या बात है ?"

"बताऊंगी"—मनोरमा ने उत्तर दिया और एक टैक्सी को किराये के लिये संकेत किया। टैक्सी में भी भूषण ने अपना प्रश्न दोहराया। मनोरमा अपने बटुये को दोनों हाथों से दबाये चुप रही। हाथ से उसने संकेत कर दिया अभी ठहरो। बालकेश्वर के समीप आ मनोरमा ने टैक्सी छोड़ दी। चढ़ाई पर चढ़ कुंज के नीचे वे उसी बेंच पर पहुँचे जहाँ दो बरस पहले मनोरमा ने अपनी व्यथा भूषण को सुनाई थी। मनोरमा ने अपने ब्लाउज़ में से पत्र निकाल भूषण को दिया—"इसे पढ़ो !"

"रोशनी के नीचे जाना होगा।"—भूषण ने कहा।

"नहीं यहीं बैठो, मैं बताती हूँ, अच्छा जाओ पढ़ लो !"

भूषण पत्र पढ़ कर लौटा—"तो फिर ?"

"तुम बताओ ?"—मनोरमा के स्वर में कम्पन था।

"उपाय ही क्या है ?"—यदि तुम तलाक के लिये अर्जी नहीं दोगी तो वह दे देगा—"तुम क्या तलाक नहीं चाहती ?"

"हाय, चाहती क्यों नहीं ? परन्तु कारण क्या बताया जाय ?"

"कानून में तो कारण तीन ही हैं, किसी दूसरे से सेक्स सम्बन्ध, मारपीट, या नपुंसकता ! लेकिन अदालत में प्रमाण चाहिये ! किस बात का प्रमाण दिया जा सकता है ?"

मनोरमा ने कुछ समय चुप रह कर कहा—"मैं ऐसी बात अदालत के सामने कैसे कह सकती हूँ ?····और पहली दो बातों में से कोई है नहीं····कम से कम मुझे मालूम नहीं, प्रमाण नहीं।"

"हूँ"—भूषण बोला—"उसने लिखा है कि वह अदालत में सफ़ाई नहीं देगा। एकतरफ़ा डिग्री हो जायगी परन्तु यह बात वह केवल दुराचार या क्रूरता का अभियोग लगाने के मामले में ही सहन कर सकता है। तुम दरख़ास्त नहीं दोगी तो वह दरख़ास्त दे देगा। उसे गवाह पेश करने में कोई दिक्कत नहीं होगी। वह दस झूठे गवाह तुम्हारे दुश्चरित्र होने के सम्बन्ध में पेश कर

सकता है परन्तु ऐसा करने से उसकी अपनी बदनामी होगी। वह नपुंसक कहलाने की अपेक्षा दुश्चरित्र कहला कर अपनी मर्दानगी का ढोल पीटना अधिक पसन्द करेगा।.......आजकल कर क्या रहा है?"

"शायद फ़िल्में प्रोड्यूस कर रहा है। अखबारों में विज्ञापन तो निकल रहा है कि एक्ट्रेस पद्माइन को लेकर कोई फ़िल्म बनवा रहा है।"

"किसी एक्ट्रेस को तो नहीं फंसा रहा?"

"हो सकता है।"

"यही बात है। तभी अपना रास्ता साफ़ करना चाहता है! सुनो, जब वह तलाक चाहता है तो उसे ही इसका प्रबन्ध करना चाहिये। उसने लिखा तो है कि यह जीवन न तुम्हारे लिये सह्य है न मेरे लिये और न हम लोग पति-पत्नी का जीवन निबाह रहे हैं, तुम पर बन्धन क्यों हो, परन्तु इस में उसका अपना प्रयोजन और कोई चाल अवश्य है। तुम उसे कहो कि वह तुम्हारी ओर से स्वयं दरख़ास्त बनवा दे और गवाहों के नाम दे दे। हां, सावधान! अपने हाथ से लिख कर कुछ मत देना। उसने भी देखो पत्र पर दस्तख़त नहीं किये हैं।

"हूँ"

"इसके बाद?"—भूषण का स्वर बदल गया। उसने मनोरमा की पीठ पर हाथ रख दिया! मनोरमा ने एक दीर्घ निश्वास लिया। उसकी आँखें मुंद गईं और उसका सिर भूषण के कंधे पर टिक गया। "बोलती क्यों नहीं?"—अधीरता से भूषण ने पूछा।

"क्यों अभी क्या कम सताया है।"

भूषण उसका मुंह अपनी ओर उठाना चाहता था।

"अब इतने बेसब्र क्यों होते हो?"—मनोरमा मुस्करा दी। भूषण झेंप गया।

भूषण को विश्वास न था कि सुतलीवाला केवल अपने और मनोरमा के जीवन से पाखण्ड दूर कर देने के लिये इस विवाह को समाप्त कर देना चाहता है। उसे संदेह था कि वह कोई

और बड़ा पाखण्ड रच रहा है। सिनेमा संसार से सम्बन्ध रखने वाले लोगों से बातचीत करने पर उसे मालूम हुआ कि सुतलीवाला पहाड़न के प्रति बहुत अनुरक्त है। उसके साथ साझे में फ़िल्म बना रहा है। चोटी के दो-एक एक्टरों को लेकर अपनी कल्पना बना रहा है। भूषण ने समझ लिया कि सुतलीवाला मनोरमा को विवाह बंधन से मुक्ति दे देने के लिये क्यों आतुर है!

सुतलीवाला का पत्र मिलने के क्षण से मनोरमा के लिये उस मकान "वेञ्स क्रैडल" में पांव रखना भी असह्य हो रहा था। वह भोजन के लिये भी न लौटती परन्तु रात बिताने के लिये उसे आना ही पड़ता। वह किसी दूसरी जगह रात कैसे बिताये? कोई भली स्त्री अपने घर के अतिरिक्त रात और कहां बिता सकती है? वह चाहे उसका घर न हो परन्तु और कहां उसका घर था? समाज की दृष्टि में तो वही उस का घर था। तलाक के विचार से उसे मुक्ति और अपमान दोनों ही अनुभव हो रहे थे। वह अपने आपको समझाती, यह परम्परागत संस्कारों का बन्धन मात्र है। मुक्ति के लिये कुसंस्कारों से मुक्ति आवश्यक है परन्तु अपमान अनुभव होता कि वह दूसरी स्त्री की तुलना में ठुकराई जा रही है। वह मन को कहती—कहां; मैं तो स्वयं छोड़ रही हूँ!···परन्तु दूसरी बात की भी उपेक्षा न कर पाती।

मनोरमा सोचती—"यह पहाड़न कौन है? सुतलीवाला की वास्तविकता तो जानती न होगी?······अरे, एक्ट्रेस ही तो है? दोनों एक दूसरे से मतलब पूरा करेंगे। पति-पत्नी के विचार से न इसे कोई बन्धन, न उसे। इन दोनों की निभ जायगी। दोनों मिलकर दुनिया को ठगेंगे। पहाड़न के बड़े-बड़े चित्र शहर भर में लगे हुये थे। उसके कामुकता पूर्ण गाने भी रिकार्डों पर जहां-तहाँ सुनाई देते रहते थे। परन्तु मनोरमा ने उसे फ़िल्म में एक बार भी न देखा था। उसके चित्रों की ओर भी ध्यान न दिया था। अब भूषण ने मज़ाक में कहा भी—"देखें तो सही, यह हमारे पंजाब की कौन पहाड़न है, कैसी है?"

"मरने दो, मैं क्यों देखूं?"—वह झुंझला उठी—"होगी कोई तुम्हारी पहाड़न बहन!·······तुम पहाड़ी हो! जाओ देखो उसे!"

और मुस्करा कर बोली–"तुम्हारी पहाड़नें खूबसूरत तो होती हैं, चालाक भी। वह सोमा ही क्या कम थी?" परन्तु अब आते-जाते कहीं पहाड़न का बड़ा सा दैत्याकार चित्र दीवार पर दिखाई दे जाता तो मनोरमा की तिर्छी दृष्टि उस ओर उठ जाती। मन ही मन वह कहती, "उसके लिये तुम्हीं ठीक हो! तुम उसके कान काटना, वह तुम्हारे काटेगा।" इसके साथ ही ख्याल आ जाता, "वेल्स कैंडल" को छोड़ कर वह कहाँ जायगी? वह उदास हो जाती! अपमान और बहिष्कार में लिपटी हुई मुक्ति का बोझ हृदय पर अनुभव हुये बिना न रहता। वह कहां जायगी? सोचती पार्टी आफिस में चली जायगी, फुट पाथ पर सो जायगी, नहीं तो क्या सुतलीवाला से कहेगी कि मुझे चरणों में स्थान दो। मेरा चाहे जो करो? मैं तुम्हारी दासी हूँ; पतिव्रता दासी! उस का मुख ऐसे कड़वा हो जाता कि सड़क पर थूक दे!

सुतलीवाला ने मनोरमा के दस्तखत करने के लिये वकील से दरखास्त बनवा दी और उसकी ओर से घर के बैरे का नाम गवाही के लिये दिया। दरखास्त में सुतलीवाला पर दुराचार और क्रूरता का आरोप था। एक मास बाद की तारीख अदालत में पड़ी। सफ़ाई के लिये सुतलीवाला के न पहुंचने से पन्द्रह दिन बाद फिर तारीख पड़ी। मनोरमा को अदालत जाना मौत मालूम होती थी परन्तु मजबूरी थी। उसने यह भेद किसी पर प्रकट नहीं किया। वह लज्जा के मारे मरी जा रही थी! अदालत के सामने उसे अपनी दरखास्त की बातें दोहरानी पड़ीं। बैरा सुलेमान गवाही में पेश हुआ। उसने वकील के जिरह करने पर मनोरमा की ही बातें कुछ उलट फेर से दोहराईं। जज साहब नहीं चाहते थे कि बसा हुआ परिवार टूटे। उन्हों ने एक बार फिर सुतलीवाला को समन भेजे। उसने अपना मोहरबन्द लिखित बयान भेज दिया कि वह कोई सफाई नहीं देना चाहता। तलाक मंजूर हो गया।

मनोरमा ने गुज़ारे की दरखास्त नहीं दी थी परन्तु अदालत ने स्वयम् ही उसे तीन सौ रुपया माहवार का गुज़ारा दिया जाने का फैसला दे दिया। यदि मनोरमा दुबारा विवाह न कर ले तो सुतलीवाला को उसे आजीवन प्रति मास तीन सौ रुपया देते रहना होगा! कामरेड नीता उस दिन मनोरमा के साथ अदालत

गई थी। नीता की जैसी प्रकृति थी, अदालत में फैसला सुनते ही, अदालत के सामने ही उसने मनोरमा को अत्याचार से मुक्ति पर बधाई दे दी। मनोरमा तो संकोच से चुप थी परन्तु नीता उत्साह से उतावली हो रही! वह झेंपती हुई मनोरमा को बांह से घसीटती हुई सीधे पार्टी दफ्तर ले गई और मनोरमा की मुक्ति की घोषणा कर दी। नीता मनोरमा को ऐसे सम्भाले लिये जा रही थी जैसे नयी बहू को गृहप्रवेश करा रही हो और मनोरमा भी नई बहू की तरह सिमटी जा रही थी।

बहुत से कामरेड अपनी-अपनी जगह छोड़ संकोच से सिमटी जाती मनोरमा को घेर कर खड़े हो गये। उमेश ने गर्दन ऊँची कर बहुत ज़ोर से पुकार कर कहा—"तो फिर···अब ?" और प्रमाहत की मुद्रा से हृदय पर हाथ रख लिया।

पारो ने उमेश को कंधे से धक्का देकर फटकारा—"हट, पागल!"

मंगल बोला—"आखिर कोई तो आशा कर सकता है! न्यूसेंस हैज़ कम (नाई गाड़ी चल रही है।)

"कामरेड ओक ने कहा—"नहीं-नहीं यह तिकड़म नहीं चलेगी बाकायदा स्वयम्बर होगा। हम भी धनुष उठायेंगे ? ढलती उम्र में एक बार आजमा देखें।" उसने अपने खिचड़ी बालों पर हाथ फेरा।

मिसेज़ गोगरे इस कोलाहल से परेशान हो, अपनी जगह बैठी-बैठी चश्मे के ऊपर से घूर कर पुकार उठीं—"यह क्या बेवकूफ़ी है जी, काम के समय !"

भूषण और नीता मनोरमा को सेक्रेटरी के सामने ले गये। मिचीं हुई आँखें काग़ज़ों से उठा, बिना हजामत के चेहरे पर मुस्कराहट ला सेक्रेटरी उनकी बात सुनने लगा और इस प्रसन्नता के अवसर पर वह उत्साह से हथेली पर सुरती की चुटकी तैयार करने लगा। तुरन्त फैसला हो गया, मनोरमा जननाट्य संघ में काम करने वाली लड़कियों के साथ 'अंधेरी' में रहेगी। नित्य ट्रेन से दूसरी लड़कियों के साथ अपने काम पर आ जाया करेगी।

नीता ने ऊँचे स्वर में कहा—"और देखो कामरेड, इस पागल को! अदालत ने तीन-सौ रुपया माहवार गुज़ारा इसे दिलाया है। कहती है मैं नहीं लूंगी! क्यों नहीं लेगी ? तुमने नहीं मांगा, पर

कोर्ट देता है तो क्यों नहीं लोगी। उस बदमाश से इतनी मुहब्बत अभी बाकी है इसे।"

सेक्रेटरी ने सुरती की चुटकी निचले होंठ के नीचे दबा कर उत्तर दिया—"इसके कहने से क्या होता है। इसे पार्टी वेतन ४०) माहवार हमें देना पड़ेगा कि नहीं। इसकी जो आमदनी है, पार्टी की होगी। अच्छा.........!"

इस कोलाहल से छुट्टी पा मनोरमा टैक्सी ले सीधी "वेन्सक्रेडल" में अपना व्यक्तिगत सामान लेने पहुंची। वापिस लौट कर आई तो याद आया कि पार्टी के कुछ गुप्त कागज़, जो उसे भूषण ने सम्भाल कर रखने के लिए दिये थे और उसने एक बड़ी आलमारी के पीछे छिपा कर रक्खे हुये थे, वह भूल आई है। वह उसी समय फिर लौट पड़ी।

× × ×

मिसेज़ सुतलीवाला को एक बार देखने का कौतूहल तो पहाड़न के मन में अवश्य था परन्तु आशंका भी थी कि जो औरत इतने सज्जन पुरुष के साथ सदा कलह किये रहती है, मुझे देखते ही जाने क्या बक बैठे या कर बैठे ? इस आशंका में सुतलीवाला का घर देखने की उत्सुकता भी पहाड़न ने दबा दी थी। जब सुतलीवाला को अपना और मनोरमा का तलाक स्वीकृत हो जाने का समाचार विश्वस्त रूप से मिल गया और उसने घर पर फ़ोन कर बैरे सुलेमान से पूछ लिया कि मेम साहब अपना सामान लेकर दोपहर को ही चली गई हैं तो उसने पहाड़न से अनुरोध किया कि संध्या समय "वेन्सक्रेडल" में अवश्य चलो, दोनों वहीं भोजन भी करेंगे। पहाड़न कब से इस दिन की प्रतीक्षा में थी। उमंग में पहाड़न ने उस दिन की आवश्यक रिहर्सल आधे में ही छोड़ दी और सुतलीवाला के गाड़ी लेकर आने पर वह तीसरे पहर उसके साथ मालाबार हिल चली गई।

सुतलीवाला ने गाड़ी मकान के बराम्दे के साथ खड़ी की और पहाड़न का हाथ थाम गाड़ी से उतार बराम्दे में ही ले गया था कि मनोरमा भीतर से कुछ कागज़ और पुस्तकें लिये सामने वाले कमरे में आती दिखाई दी। सुतलीवाला ने सोचा, यह

क्या दुबारा आई? और मनोरमा को देख कर भी अनदेखा कर दिया।

पहाड़न उस कलहन स्त्री को अब भी वहीं खड़ी देख आशंका से सिटपिटा गई। अपना हाथ सुतलीवाला से छुड़ा उसने उस स्त्री से आंखें फेर लीं। मनोरमा भी अपनी जगह संकुचित हो गई थी परन्तु उसने पहाड़न की ओर देखा तो विस्मय से आँखें फैला ध्यान से देखा, और फिर विशेष ध्यान से देखा और पुकार बैठी—सोमा!

पहाड़न अकस्मात बिजली के स्पर्श से चौंक पड़ी। उसने मनोरमा की ओर दृष्टि की। मनोरमा सुतलीवाला की उपेक्षा कर पहाड़न के समीप आ गई थी। पहाड़न ने मनोरमा को पहचाना और कांप उठी। मनोरमा एक क़दम और आगे बढ़ी और उसने पहाड़न के गले में बांह डाल फिर पुकारा—"सोमा-बहिन!"

पहाड़न के पांव लड़खड़ा गये। मनोरमा ने उसे सम्भालने की चेष्टा की परन्तु वह फ़र्श पर बैठ गई और मूर्छित हो गई। मनोरमा घबरा गई। अपने हाथ के काग़ज़ और पुस्तकें उसने एक ओर रख दीं और पहाड़न को उठाने का यत्न करने लगी। सुतलीवाला आगे बढ़ आया। उसने पहाड़न को कन्धे से सम्भाला और मनोरमा ने घुटनों से। दोनों ने उसे उठा भीतर पलंग पर पहुंचा दिया। मनोरमा ने बैरे को पुकार कर पानी मंगाया। पहाड़न के मुख पर छींटे दिये और एक अखबार से हवा करने लगी। कई मिनट बीत गये। पहाड़न को सुध न आई। मनोरमा चिन्ता से पलंग पर झुकी हुई थी। उसे सुतलीवाला का स्वर सुनाई दिया।

—"आप जाइए, मैं डाक्टर बुला लूंगा।"

मनोरमा सुतलीवाला की ओर देखे बिना पलंग से हट गई। उसने अपने काग़ज़ और पुस्तकें उठा लीं और बंगले से निकल गई। वह सिर झुकाये सोचती चली जा रही थी कि सोमा ही पहाड़न है? क्या इतना परिवर्तन सम्भव है? आदमी क्या है, और उसके कितने रूप हो सकते हैं? एक दिन भूषण सोमा को "धर्मशाला" में कुत्तों के भय से काँपती हुई बकरी की सी अवस्था में लाया था। धनसिंह के लिये इसका जान देना, पुलिस के भय से इसका गर्भपात, इसका बाजार जाने से डरना! भैया की उस

पर ज्यादती ! बड़ी भाभी का अत्याचार ! आज यह दुनियां को अंगूठा दिखा रही है.........अपना बदला ले रही है ?.........क्या यह सुतलीवाला के साथ सुखी हो सकेगी ? क्या यह इतनी चालाक हो गई है ?

उसके क़दम अभ्यासवश सैण्डहर्स्ट रोड जाने के लिये तिबत्ती की ओर उठते जा रहे थे। परन्तु तिबत्ती पहुँच वह दूसरी राह "कैण्डी बीच" की ओर लौट पड़ी और समुद्र किनारे बनी दीवार पर बैठ सोचती रही—"सोमा ही पहाड़न है—मनुष्य को कोई समझ सकता है ? पहचान सकता है ?" सामने सूर्यास्त होकर अंधेरा छा गया परन्तु वह बैठी रही।

उसने होठों से सीटी की एक आवाज़ सुनी। घूम कर देखा कोई आदमी उसे देख सीटी बजा रहा था। उसने अपनी घड़ी देखी-दस बज रहे थे। वह उठी और तेज़ चाल से सैण्डहर्स्ट रोड की ओर चल दी

× × ×

पहाड़न के मूर्छित होने के आधे घण्टे बाद डाक्टर पहुँचा। डाक्टर के प्रायः पौना घण्टे तक उपचार करने के पश्चात पहाड़न ने आंखें खोलीं। उसका रंग सूखे पत्ते की भांति पीला पड़ गया था। उसने चकित आंखों से चारों ओर देखा। डाक्टर की ओर देख, उसे न पहचान प्रश्नात्मक दृष्टि से सुतलीवाला की ओर देखा—? सुतलीवाला ने मुस्करा कर उसे आश्वासन दिया—"घबराइये नहीं। यह हमारे मित्र डाक्टर साहब हैं ! अब आप बिलकुल ठीक हैं।"

डाक्टर पहाड़न को कुछ देर बाद गरम दूध या चाय देने और बिलकुल चुप रह कर लेटे रहने का आदेश देकर चला गया। डाक्टर के जाते ही पहाड़न ने पूछा—"वो कहां हैं ?"

"वो तभी चली गई थी"—सुतलीवाला ने पहाड़न के केशों पर हाथ रख उत्तर दिया—"अभी चुप रहो।"

"कहाँ गई वो ?"

डाक्टर पहाड़न के लिए नींद की दवाई देकर गए थे। वह दवाई देकर सुतलीवाला ने कहा—"अभी गरम दूध से यह दवाई

ले लो। चिंता न करो! अभी सब कुछ बतायेंगे। चिन्ता की कोई बात नहीं है।" पहाड़न अधिक न बोल पाए इसलिये सुतलीवाला पलंग के समीप से हट गया। उसे पहाड़न की धीमी पुकार दो बार सुनाई दी—"सुनिए!"

पहाड़न को बोलने के श्रम से बचाने के लिये सुतलीवाला भीतर नहीं आया। वह भीतर तो नहीं गया परन्तु स्वयम् उलझन भरी उत्सुकता से जेबों में हाथ डाले बरामदे के सामने टहलता हुआ स्थिति समझने की चेष्टा कर रहा था, "यह क्या आपस में परिचित हैं? क्या बचपन की सहेलियां हैं? या सम्बन्धी हैं? पहाड़न छिप कर, घर से भागी हुई है? यह मिलेंगी तो मनोरमा इसे मेरी बाबत क्या कहेगी? पहाड़न उसका विश्वास करेगी या मेरा? इसके लिये मैंने इतना कुछ किया है? यह मुझ पर निर्भर करती है। इस समय इसकी काफ़ी रकम इस फ़िल्म में फंसी है। महीने ही दिन का और मामला है।....मैं सब सम्भाल लूंगा। मेरी अवस्था भी अब ठीक है? इस में और उस में फरक भी तो है? वह बिलकुल जवान थी। उस के लिये वैसे ही आदमी की जरूरत थी......."

सुतलीवाला ने अपनी चिन्ता की उलझन तोड़ने के लिये दबे पांव भीतर जाकर देखा, पहाड़न दवाई के प्रभाव से फिर सो गई थी। उसकी कलाई छूने पर ज्वर मालूम हुआ। दो घण्टे बाद पहाड़न की नींद फिर टूटी। उसने सुतलीवाला से पूछा—"क्या बजा है?"

सुतलीवाला ने बताया, "नौ बज रहे हैं। घबराओ नहीं। मैंने आर्केड स्टूडियो में फ़ोन कर दिया है कि तुम्हें ज्वर है। तुम स्टूडियो नहीं आ सकोगी।

"मैं अपने मकान जाऊँगी!"—पहाड़न ने आग्रह किया।

"यह भी तुम्हारा ही मकान है। तुम्हें थोड़ा ज्वर है। ऐसी अवस्था में हवा लगने का डर है। तुम्हारे लिये नर्स बुला दूं?"

"नहीं मैं ठीक हूँ.......तुम्हारा इसी से तलाक हुआ है?"—पहाड़न ने सुतलीवाला की आंखों में देख कर पूछ लिया।

"हां, तुम इसे कब से जानती हो?"

सुतलीवाला की बात का उत्तर न दे पहाड़न ने पूछा—"ब्याह कब हुआ था ?"

"तुम्हें बताया था मैंने, दो बरस पहले ।"

"दो बरस पहले !"—सोच कर पहाड़न ने दोहराया—"वह तुमसे झगड़ती रहती थी ?"

"हां"—सुतलीवाला ने पहाड़न के सिर पर हाथ फेरा।

"अब वह यहां आयगी ?"

"कभी नहीं। तुम क्या उससे मिलना चाहती हो ?"

पहाड़न ने सिर हिला कर इनकार कर दिया। पहाड़न ने कई बार कहा कि वह "अंधेरी" में अपने मकान पर पहुँच जाय परन्तु उसका ज्वर अधिक होने के कारण डाक्टर इस अवस्था में उसे बिस्तर से हिलाने के पक्ष में न था। सुतलीवाला ने उसे जाने न दिया और चिन्ता न करने का आश्वासन देता रहा। ज्वर की अधिकता में नींद के समय सुतलीवाला ने उसे धीमे-धीमे बड़-बड़ाते सुना—"नहीं मैं सोमा नहीं हूँ।··· मुझे रहने दो।····मुझे रहने दो !·······बरकत नहीं···!"

सुतलीवाला भांप गया—पहाड़न अपनी पिछली बातों को खोलना नहीं चाहती। उसने वह सब जानने की कोई इच्छा प्रकट न की। मन में उसने सोचा—यदि आवश्यकता होगी तो पहाड़न के नौकर बरकत से मालूम कर लिया जायगा।

× × ×

पहाड़न रात भर स्टूडियो से न लौटी तो उसकी आया और महाराजिन चिंतित हुयीं। उन्होंने अपनी चिन्ता बरकत के सामने प्रकट की। बरकत भी आशंकित हुआ। रात में देर चाहे जितनी हो जाय, तीन बजें या चार, पहाड़न घर अवश्य लौट आती थी। बरकत पहाड़न का पता लेने के लिये आर्केड-स्टूडियो में गया। वहाँ कुछ पता न चला। मालूम हुआ, रात पहाड़न आई ही नहीं। फ़ोन आया था कि बीमार है। स्टूडियो नहीं आयेगी। वह कंचन स्टूडियों में गया। वहां पता चला कि पहाड़न कल काम पूरा होने से पहले ही सुतलीवाला साहब के साथ गाड़ी में चली गई थी। बरकत का माथा ठनका ! लोग कह रहे थे कि दोनों की बहुत

घुट रही है, शादी करने वाले हैं। बरकत ने सोचा कि अगर वह पहाड़न को लेकर उड़ गया तो हमारा क्या क्या होगा? हमने उस……के लिये जान लड़ा दी है, खतरा सिर लिया है।

सुतलीवाला साहब के दफ्तर का पता लगा बरकत फोर्ट पहुँचा। दफ्तर के बाहर खड़े आ० हि० सेना के गढ़वाली चौकीदार ने बरकत की पोशाक देख कर उसे भीतर न जाने दिया और कहा—"साहब अभी नहीं आया, मकान पर है।" बरकत अपनी बाहों और जांघों के पुट्ठों पर हाथ फेरता हुआ व्यग्रता से दफ्तर के सामने चक्कर काटता रहा। लगभग एक घंटे बाद सुतलीवाला की सुरमई रंग की लम्बी सी कार फिसलती हुई आई।

"पहाड़न कहाँ है?"—उद्धत स्वर में बरकत ने सुतलीवाला को सम्बोधन किया।

सुतलीवाला ने उसकी उग्र मूर्ति देख उत्तर दिया—"मेम साहब की तबीयत खराब है।"

"हम उसे घर ले जायेंगे।"-बरकत दोनों हाथ कमर पर रख कर बोला।

"अभी नहीं। डाक्टर ने मना किया है। हम पहुंचा देगा फिकर मत करो।"

बरकत ने सुतलीवाला की राह रोक मूंछों पर ताव दे कर कहा—"हम से मत बनो! हम सब सब समझते हैं। किसी और खयाल में मत रहना, पहाड़न हमारी निकाह की औरत है। हम सब साहबी झाड़ कर रख देंगे!" बरकत की सांस से शराब की बू आ रही थी, आंखें भी लाल थीं। सुतलीवाला ने अपने चौकीदार की ओर देखा। चौकीदार ने आगे बढ़ बरकत को दोनों बाहों से थाम एक तरफ धकेल दिया—"पीछे हटो!"

साहब दफ्तर में जा छिपे। बरकत मूंछों पर ताव दे गाली देता चला गया,"……समझेंगे!"

सुतलीवाला ने पहाड़न की आया और महाराजिन को खबर दिलवा दी थी कि पहाड़न को सहसा बहुत ज्वर हो गया है, दो चार रोज़ में घर आ जायगी, चिंता न करें। वे लोग ममता और चिंता से पहाड़न की प्रतीक्षा कर रही थीं। पहाड़न की बीमारी

की खबर उन्हों ने बरकत को दे आश्वासन देने की चेष्टा की परन्तु बरकत को विश्वास न हुआ—उसे शंका थी कि सुतलीवाला ने पहाड़न को उड़ा लिया है, छिपाये हुये है। उसने मन में कहा या इन·········लोगों ने उसके साथ ऐसा दुर्व्यवहार किया है कि वह उठने लायक नहीं है। आया और महराजिन को मालिक के बीमार होने की चिन्ता थी, बरकत को अपनी एक मात्र सम्पत्ति और आधार के उड़ा लिये जाने का क्रोध!

× × ×

मनोरमा कैण्डी-बीच से लौटी तो पता लगा कि पार्टी दफ्तर से अंधेरी जानेवाले सब लोग सात बजे की गाड़ी से जा चुके हैं। यह अकेली कहाँ जायगी। वह 'रेड-फ्लेगहाल' में पारो के यहाँ ही ठहर गयी। उसे ध्यान न था कि कुछ खाया नहीं। पारो ने पूछा तो याद आया। पारो उसे एक ईरानी होटल में ले गई और कुछ खिलाया। मनोरमा अब तक सोमा के ध्यान में ही बिलकुल खोई हुई थी। पारो ने अनुमान किया मनोरमा तलाक की चोट से अवसन्न है। वह उसे सांत्वना देने लगी और कुसंस्कार के कारण दुखी होने के लिये फटकारा भी।

रात मनोरमा को नींद नहीं आई। सोमा के पहले-पहल धर्मशाला में उसकी कोठी पर आने से लेकर लाहौर में बड़ी भाभी और मां जी के उसे घर से निकलवा देने के समय तक का सोमा का जीवन, सोमा में शनैः शनैः आते परिवर्तन मनोरमा की स्मृति में घूमते रहे। उस समय मनोरमा उन परिवर्तनों को स्पष्ट नहीं देख पा रही थी। जब भूषण लाहौर में आखिरी बार आया था और उसके सामने मनोरमा ने सोमा को बुला कर बैठा दिया था, वह सोमा को पहचान न पाया था और जाते समय कह गया था, अब धनसिंह आया भी तो क्या यह उसके साथ बस सकेगी?" आज कितना परिवर्तन उसने स्वयं देखा। वह भी तो उसे सहसा पहचान न सकी थी। आज वह दीवारों पर मुस्कराने वाली, रिकार्डों में कूकने वाली पहाड़न है।

सुबह उठ वह आठ बजे पार्टी आफिस पहुँची और गत रात की कहानी भूषण को सुनाई। भूषण ने विस्मय से भवें सिकोड़

कर पूछा—"सचमुच ! पहाड़न सोमा है।" उस संध्या दोनों ने 'मनका चोर' फ़िल्म देखी और सोमा को पहाड़न के रूप में पार्ट करते देखकर विस्मित हुए थे ! भूषण बार-बार कह उठता—"आदमी क्या है, उसके कितने रूप हो सकते हैं, कोई नहीं कह सकता।" सिनेमा से लौटते समय मनोरमा फिर सुतलीवाला के घर सोमा से अपनी मुलाकात की बात ब्यौरेवार सुनाने लगी। भूषण टोक कर बोला—"तुम यह सोचो, यदि अब धनसिंह लौट कर उसके सामने आये तो क्या होगा ?"

मनोरमा ने गहरी सांस ले उत्तर दिया—"उस बेचारी का क्या कसूर ?"

"कसूर कुछ नहीं है"—भूषण ने प्रश्न किया—"परन्तु होगा क्या ?"

"वो कभी न आये !"—मनोरमा ने दूसरा श्वास लिया।

मनोरमा सोमा के लिये मन में कुछ ऐसी व्यथा अनुभव कर रही थी जैसे वह उसकी बेटी या छोटी बहन हो। जैसे उसके जीवन के लिये वह स्वयं उत्तरदायी हो।"……वह बेहोश क्यों हो गई ?" वह सोमा को एक बार गले लगा कर सांत्वना देना चाहती थी। उसकी बात सुनना चाहती थी। लाहौर में घर से निकाल दिये जाने पर क्या हुआ ? अब कैसी बीत रही है ! बहुत धोका खाया है बेचारी ने, अब तो बचे ! मैं उसे बता देती कि सुतलीवाला कैसा आदमी है ? सोचा कि 'वैल्स-कैडल' में जाकर पता करे। परन्तु सुतलीवाला ने जिस स्वर में कहा था—"अब आप जाइये !" वह वहां कैसे जाये ! उसने फ़ोन किया था परन्तु सुतलीवाला ने फ़ोन को जाने क्या कर दिया था कि घण्टी ही न बजती थी। सोमा से मिलने की इच्छा में मनोरमा ने बम्बई में चल रही पहाड़न की सभी फ़िल्में देख डाली। विवश हो मनोरमा ने सुतलीवाला को ही अंग्रेज़ी में एक पत्र लिखा—

"प्रिय महाशय,

मैं यह जानने के लिये बहुत उत्सुक हूँ कि पहाड़न का क्या हाल है ! आशा है, उसे अधिक कष्ट न हुआ होगा। उससे कहियेगा कि मैं एक बार उससे मिलने के लिये बहुत उत्सुक हूँ। यदि संभव हो तो मैं उसकी सहायता करना चाहती हूँ।

तीसरे दिन उत्तर आयाः—

"प्रिय महोदया,

आपके पत्र के लिये धन्यवाद। मिस पहाड़न मज़े में हैं। आप के सन्देश के उत्तर में उनका निवेदन है कि आप उनकी चिन्ता न करें ; यही विशेष कृपा होगी। धन्यवाद।"

मनोरमा को हार्दिक चोट लगी। उसने सोचा—यह सुतलीवाला की करतून है, पर हो सकता है, सोमा अब न मिलना चाहती हो ! कितना परिवर्तन आ गया है स्थिति में ? उसके साथ ही शायद हृदय में भी ! बेहोश क्यों हो गई थी ? जो हो वह प्रसन्न रहे। सुतलीवाला के उत्तर से इसे इतना अपमान और कुण्ठा अनुभव हुई कि उसने इसकी चर्चा भूषण से भी न किया। मनोरमा को यह भी मालूम हो गया था कि पहाड़न अंधेरी में ही बंगला लेकर रहती है। परन्तु सुतलीवाला का वह पत्र आने के बाद पहाड़न के यहाँ जाने की इच्छा न हुई। सम्भव है, सोमा ने ही ऐसा पत्र लिखवाया हो ! बीती दुखद स्मृतियों से वह दूर भागना चाहती हो ! इसमें उसका क्या दोष ? मैंने उस का कभी कुछ नहीं बिगाड़ा परन्तु वह तो सम्पूर्ण समाज से डरी हुई है। वह अपने नये जीवन की रक्षा प्राणपण से करना चाहती है। उसे सम्पूर्ण अतीत से आशंका है।

सुबह अंधेरी में चाय पीकर 'ओपेरा' जाना, दोपहर का भोजन कम्यून में, संध्या समय सात बजे की गाड़ी सब के साथ अंधेरी लौटना। मनोरमा की चर्या ऐसी थी कि भूषण से मिलने का समय कम ही मिलता था परन्तु संतोष था, दोनों समीप हैं। संध्या समय यदि दोनों घंटे-दो घंटे साथ बिताना चाहते तो मनोरमा अपने दल से पिछड़ जाती। कोई कुछ कहता न था परन्तु साथियों का ध्यान तो इस ओर जाता, मनोरमा को संकोच होता।

पार्टी के साथियों में किसी का किसी से प्रणय न चल रहा हो—ऐसी बात न थी; साथी लोग बैंकटा और पारो के विवाह की मिठाई खाने की उत्कट प्रतीक्षा में थे। रमेश और सुमति का प्रेम ज़ोरों से चल रहा था, वह भी सभी लोग जानते थे। भूषण और मनोरमा आपस में उनकी बात करके प्रसन्न भी खूब होते थे।

पर लड़के-लड़कियों की बात और थी। मनोरमा अपने पत्र की सहकारी अध्यक्ष थी और भूषण भी बजुर्ग कामरेड समझा जाता था। वे ऐसे परिहास की स्थिति पैदा नहीं कर सकते थे। यदि हो तो फिर बाक़ायदा पार्टी को सूचना देकर विवाह हो। तलाक़ के तुरन्त बाद विवाह भी ठीक नहीं जान पड़ता था। मनोरमा के हृदय से इस घटना की कटुता भी अभी दूर न हो पाई थी। कभी तो वह सोचती, भूषण के हृदय पर आश्रय पाए बिना जीवन आरम्भ न होगा और फिर स्वयं ही उस तीव्र सुख की आशा से कांप कर कहती कि हाय इतनी जल्दी कैसे हो सकता है ?

× × ×

पहाड़न का ज्वर तीसरे दिन संध्या समय उतर गया था परन्तु सुतलीवाला ने उसे दो दिन और अपने यहां रोक रखा। वह आशंकित था कि बरकत के उद्धतपने से इसे दूसरा मानसिक आघात न लगे। पहाड़न को सावधान करने के लिये उसने आहिस्ता-आहिस्ता अपने दफ्तर पर बरकत के आने की घटना सुना दी। पहाड़न को उससे कुछ अधिक विस्मय न हुआ। "वह बड़ा कमीना है। कुछ भी कर सकता है। तुम उससे बच कर रहना"—उसने समझाया।

सुतलीवाला ने अपनी ओर से आश्वासन दिया—"तुम चिंता न करो। वह हम लोगों का कुछ नहीं बिगाड़ सकता। उसका प्रबन्ध कर दूंगा।" पहाड़न अंधेरी लौट गई। वह फिर स्टूडियो जाने लगी। सुतलीवाला से स्टूडियो में ही मुलाकात होती या वह स्टूडियो से अपनी गाड़ी पर वेस्टकैंडल हो आती। सुतलीवाला को उसने अंधेरी के बंगले पर आने के लिये मना कर दिया था। आवश्यकता होती तो सुतलीवाला अंधेरी स्वयम न जाकर फ़ोन कर देता।

अब उन दोनों के बीच में बरकत ही व्यवधान रूप हो रहा था। दोनों चिन्तित थे, कैसे उसका निपटारा किया जाय? पहाड़न उस दुष्ट को अब सह न सकती थी। सुतलीवाला ने आश्वासन दिया—"घबराओ मत या तो इसे उम्र भर के लिए जेल भिजवा दूंगा या फिर यह अनन्त समुद्र है, इसमें बम्बई की लाखों लाशें

खप चुकी हैं, एक और सही।" पहाड़न कांप उठी—"न, कहीं ऐसा न कर बैठना कि लेने के देने पड़ जांय। तुम पर किसी तरह की आंच न आए! मैं ऐसे ही अच्छी हूँ।"

परन्तु बरकत का उद्धतपना बढ़ता ही जा रहा था। उसने अपने एक और साथी को बुला कर साथ रख लिया। चाहे जिस आने जाने वाले को टोक बैठता—"कौन हो? कहां से आए हो?" उसे सन्देह था, सुतलीवाला दूसरों के हाथ संदेश भेजता है। पहाड़न के लिये अपना यह अपमान और विवशता और भी असह्य हो रहे थे।

१०

पुनः परिचय—

धनसिंह आ० हि० सेना के दूसरे पैंसठ सिपाहियों के साथ बांकीपुर कैम्प से रिहा हो गया। उसने न मुआफ़ी माँगी थी और न गिरफ्तार होने पर ज़बरन आ० हि० सेना में भरती कर लिये जाने की फरियाद की। उसकी पिछली तनख़्वाह ज़ब्त हो गई। रिहा होने पर उसे केवल पचीस रुपये किराए और खुराक के लिये मिले।

पटना पहुँचने पर आ० हि० सेना के लोगों को हार पहना कर खूब स्वागत किया गया। सभा में उनकी वीरता की खूब प्रशंसा की गई। संध्या समय कॉंग्रेस की ओर से सिपाहियों को दावत दी गई। दूसरे दिन भी दोनों समय दो बड़े आदमियों ने दावतें दीं और सभाओं में आ० हि० सेना के वीरों को आज़ादी के अगुआ कह कर प्रशंसा की गई। इस सब आदर और प्रशंसा के समय धनसिंह जल्दी से जल्दी पंजाब-धर्मशाला लौटकर सोमा को ढूंढ़ने की चिन्ता कर रहा था। अब भी अंग्रेज़ी राज था। अंग्रेज़ी राज की पुलिस का राज था। पंजाब-धर्मशाला वह केवल भेष बदल कर जा सकता था। धनसिंह ने मन ही मन निश्चय किया पहले यहाँ पटने में ही अपने लिये कोई सुरक्षित स्थान बना ले। फिर भेस बदल, चुपके से जाकर सोमा को ले आयगा। लोग कहते थे, कांग्रेसी राज हो गया है परन्तु उसे कोई अन्तर दिखाई न पड़ रहा था। उदास हो उसने मन ही मन कहा "जैसी आज़ादी देश भर को मिली है वैसी ही हमें भी मिल गई है। जैसे सब लोग निर्वाह करेंगे वैसे ही हम भी कर लेंगे।"

आदर और जलसों का बवंडर समाप्त होते ही धनसिंह अपने प्रति आदर और श्रद्धा प्रकट करने वालों के पास सहायता मांगने पहुँचा। वह सहायता चाहता था कि उसे नौकरी दिला दी जाय! आदर और श्रद्धा प्रकट करने वालों को नौकरी और रोज़ी ढूंढ़ने का झमेला पसन्द न आया। उसे राय दी गई, "अपने देश अपने लोगों में जाकर ही नौकरी ढूंढ़ना अच्छा होगा। नौकरी में जमानत की जरूरत होती है। यहाँ तुम्हारे घर बार को कौन जानता है।" आदर और सत्कार के खोखलेपन से निराश होकर धनसिंह ने सोचा, वह क्या करे? जानने पहचानने वाले लोग तो कांगड़ा धर्मशाला में ही थे परन्तु वहां जाने का साहस उसे न था। इस संकट में याद आया, अर्जुनलाल!

धनसिंह कानपुर पहुंचा। कानपुर में आ० हि० से० के सिपाहियों के आदर-सत्कार के लिये, उनके ठहरने के लिये एक कैम्प में खासा प्रबन्ध था। धनसिंह वहाँ न जा कर अर्जुनलाल का पता लगाने के लिए परेड के समीप, कम्युनिस्ट पार्टी के दफ्तर में गणेश को ढूंढ़ने लगा। गणेश ने अर्जुनलाल का पता बताया। अर्जुनलाल कांग्रेस के नए चुनाव में व्यस्त देहातों में घूम रहा था। धनसिंह गणेश के पास लौट आया और नौकरी की बात करने लगा। संध्या समय गणेश उसे सिनेमा दिखाने ले गया।

कानपुर में "जलता घोंसला" फ़िल्म चल रही थी। धनसिंह ने दीमापुर कैम्प में दो-चार बार सिपाहियों को दिखाई जाने वाली फ़िल्में देखी थीं। आ० हि० सेना में और बाद में लगभग एक वर्ष तक "सिपाही कैदी कैम्प" में उसे फ़िल्म देखने का कोई अवसर न मिला था। वह उत्सुकता से फ़िल्म देख रहा था। पर्दे पर पहाड़न को देखते ही जैसे उसे बिजली सी छू गई। उसने संदेह से आंखें फैला कर फिर देखा, और फिर अच्छी तरह देखा। बाएँ गाल के नीचे जबड़े पर तिल भी साफ़ दिखाई दे रहा था।

फ़िल्म में पहाड़न ने गाया—"सासुरी, तेरा बेटा री, मेरे जोबन को हाथ लगाय!" आवाज़ सोमा की ही लगी। धनसिंह के लिये शान्ति से बैठ कर फ़िल्म देखना सम्भव न रहा। पर्दे पर नायक एकांत में पहाड़न को अपनी बाहों में ले रहा था और पहाड़न लजाकर मुस्करा रही थी। धनसिंह का सिर घूम गया, पसीना

आ गया। उसकी बेचैनी देख गणेश ने पूछा—"क्या बात है साथी ? तबीयत ठीक नहीं है क्या ?" धनसिंह ने लम्बा सांस ले उत्तर दिया—"बहुत ज़ोर से सिर में दर्द हो गया है।"

गणेश उसे सिनेमा से आधे में ही उठा लाया। धनसिंह खाना नहीं खा सका। दफ्तर में लौट चटाई पर लेट धनसिंह ने पूछा —"यह सिनेमा कहाँ बनता है ?"

"सिनेमा की फिल्में बम्बई में बनती हैं !....क्यों ?"—गणेश ने पूछा। धनसिंह कुछ उत्तर न दे चुप रह गया। गणेश के अपना प्रश्न दोहराने पर धनसिंह ने और प्रश्न किया—

"बम्बई की गाड़ी किस समय जाती है ?"

"सुबह ग्यारह-साढ़े ग्यारह बजे। क्या बम्बई जाना चाहते हो ? क्यों ?"

"सोच रहा हूँ, किराया कितना होता है ?" धनसिंह ने पूछा। किराया बता कर गणेश ने फिर पूछा—"क्या बम्बई में तुम्हारे अपने आदमी हैं ? धनसिंह को चुप देख गणेश ने फिर प्रश्न किया "साथी बोल नहीं रहे।"

"सिर में दर्द है, नींद आ रही है।"—उत्तर दे धनसिंह चुप रह गया। परन्तु सोचता रहा, क्या दो स्त्रियां ऐसी, एक ही रूप रंग की हो सकती हैं; क्या वही सब देखने के लिये मैंने क़त्ल किया और बरबाद होता रहा ?

बम्बई के नर-समुद्र में धनसिंह ऐसे आ मिला जैसे जल की एक और बूंद अथाह प्रवाह में आ मिले और वह बूंद अपनी राह खोजने की चेष्टा करे। बम्बई में उसके लिये कहीं पांव टिकाने के लिये जगह न थी। कोई उसकी ओर ध्यान न देता था। वह फौजी वर्दी पहने, बगल में अपनी सम्पत्ति, एक चादर दबाये प्रकाण्ड अट्टालिकाओं के नीचे, प्रशस्त सड़कों पर, मोटरों के अन-वरत प्रवाह में, फुटपाथ पर भीड़ की निरंतर ठेलमठेल में सोमा को, पहाड़न को खोजने के लिये फिर रहा था। वह जानता नहीं था, उसे खोजे कहाँ और किस तरह ? दीवारों पर सोमा के नाचते हुये, मुस्कराते हुये चित्र सभी जगह उसका परिहास कर रहे थे—"देखो, यह हूँ मैं ! यहाँ हूँ मैं ! पकड़ो मुझे !" चाय की

दुकानों पर जगह-जगह सोमा की आवाज़ ग्रामोफ़ोन से सुनाई दे जाती थी, "कस गरे डारो बहियां, मोरे सैंयां, इस विध करिये प्रोत !" मानो वह सब ओर से धनसिंह को पुकारा पुकार कर चुनौती दे रही थी, "यह हूँ मैं, यहां हूँ मैं, पकड़ो मुझे !"

रास्ते में धनसिंह ने भले दिखाई देने वाले दस-बारह व्यक्तियों को रोक रोक कर पूछा —"भाई, पहाड़न कहां रहती है ?" प्रश्न के उत्तर में उसे या तो उत्तर ही नहीं मिला, या हाथ हिला कर इनकार मिला या परिहास की मुस्कराहट। वह खेतवाड़ी के समीप एक सिनेमा हाल के पास पहुँच गया। सांझ का तमाशा आरम्भ होने वाला था। दीवारों और बड़े-बड़े तख्तों पर पहाड़न के तिर्छी चितवन से देखते चित्र लगे हुये थे। लाउड स्पीकर पर उसके गाने चल रहे थे। धनसिंह ने सोचा—यह लोग उसका सिनेमा दिखाते हैं। इन्हें इसकी जगह अवश्य मालूम होगी। उसने अपना प्रश्न कई आदमियों से दोहराया। उसे उत्तर मिला—"क्या करेगा पहाड़न का घर पूछ कर ! यहाँ पांच आने के टिकट में दो घण्टा पहाड़न से मौज करो और घर जाओ !"

अब अपमान से धनसिंह के शरीर में बिजली नहीं कौंदी, एक जड़ता सी आ गई थी। वह बहुत देर होंठ दबाये चुप खड़ा रहा परन्तु उपाय न था। उसने फिर भले दिखाई देने वाले चेहरों से अपना प्रश्न दोहराना शुरू किया। धनसिंह को कोई सज्जन मिल गया। उसने बताया—'पहाड़न अंधेरी में रहती है।' भले आदमी ने उसे अंधेरी की राह भी बता दी, "चर्नीरोड स्टेशन से गाड़ी पकड़ो। चार पैसे में अंधेरी पहुँच जायगा।"

धनसिंह ने साहस नहीं छोड़ा। स्टेशन का रास्ता पूछकर वह उतावली से चलनेवाली बिजली की गाड़ी में जा बैठा, जो सर-सर करती आती है और खड़ी होने से पहले ही चल भी देती है। वह प्रत्येक स्टेशन को ध्यान से देख रहा था, कहीं अंधेरी निकल न जाय। दूसरे ही स्टेशन पर पांच छः जवान लड़कियां और तीन लड़के सारे से कपड़े पहने आपस में बात करते उसकी गाड़ी में आये थे। एक स्त्री का चेहरा उसे कुछ पहचाना सा लगा। उसने ध्यान से देखा। चेहरा बहुत बदल गया था। परन्तु थी निश्चय ही मनोरमा थापी ! लाला जी की लड़की ! दुबली हो गई थी और

चेहरे पर कुछ थकावट और रुखाई सी जान पड़ी ! शायद बीमार है, परन्तु उदास न थी ! इन्हीं के यहाँ वह धर्मशाला में सोमा को छोड़ आया था। शायद यह सभी लोग यहाँ आ गये हैं। सोमा इन्हीं के यहाँ सिनेमा का काम करती है। धनसिंह ने कल्पना में समस्या का समाधान कर लिया ! उसका हृदय धकधक कर रहा था। मनोरमा बीबी के साथ वह सोमा के यहाँ चला जायगा। मनोरमा की ओर से उसने आँखें नहीं हटाई; कहीं फिर न वह राह से भटक जाये।

अंधेरी में मनोरमा दूसरे साथियों के साथ गाड़ी से उतरी। धनसिंह भी उतर गया। धनसिंह को हिम्मत न हुई कि मनोरमा को पुकार ले। वह दूसरी लड़कियों के साथ बातचीत करती जाती मनोरमा के पीछे-पीछे चल रहा था। उन लोगों के पीछे वह स्टेशन के पुल के पार उतरा। कुछ अंतर से वह उन लोगों के पीछे-पीछे चला जा रहा था। स्टेशन के समीप की घनी बस्ती से परे हटकर वे लोग पेड़ों से घिरे एक बड़े से बंगले में पहुँचे। धनसिंह को आश्वासन था, यह लोग धर्मशाला में भी बंगले में रहते थे। किसी ने उसे टोका नहीं। मनोरमा भीतर चली गई। धनसिंह बंगले के बरामदे के नीचे खड़ा चारों ओर सोमा को खोजता रहा। सोमा उसे कहीं दिखाई न दी। बरामदे में आये एक मर्द को देख उसने पुकारा और कहा—"सोमा को भेज दीजिये !"

"कौन सोमा ?"—उस व्यक्ति ने विस्मय से टूटी हिन्दी में पूछा।

"सोमा, पहाड़न।"

"पहाड़न ? इधर पहाड़न नहीं है, उधर दूसरी तरफ़ जाओ !" वह व्यक्ति भीतर चला जा रहा था कि धनसिंह ने फिर पुकारा—"मनोरमा बीबी जी को बुला दो !"

"मनोरमा को ? तुम्हारा क्या नाम बोलेगा ?" धनसिंह ने सहमते हुए अपना नाम बताया। एक मिनिट बाद मनोरमा आई, जैसे विस्मय से उसका सांस रुक रहा हो ! आँखें फाड़-फाड़ उसने धनसिंह की ओर देखा और पहचाना। वह कुछ बोल नहीं पा रही थी। धनसिंह धीमे और आशंकित स्वर में बोला—"सोमा........ ?"

मनोरमा उसे हाथ के संकेत से भीतर बुला ले गई। फर्श पर बिछी दरी पर धनसिंह को बैठा वह समीप बैठ गई—"कहाँ थे तुम ?" धनसिंह ने निस्संकोच हो संक्षेप में बता दिया और फिर पूछा—"सोमा कहाँ है ?" मनोरमा ने उसके प्रश्न का उत्तर न दे प्रश्न किया—"पहाड़ गये थे ?" धनसिंह ने सिर हिला इनकार कर दिया। मनोरमा ने पूछा—"लाहौर गये थे ?"

धनसिंह ने फिर इनकार किया। सोच कर मनोरमा ने पूछा—"सिनेमा देख कर उस का पता लगा ?"

"हाँ....उसे खबर कर दीजिये !" धनसिंह ने भरोसे की सांस ली।

उसके प्रश्न का उत्तर टालने के लिये मनोरमा ने कहा—"धन सिंह, तब से क्या से क्या हो गया। मैं अब यहाँ कम्युनिस्ट पार्टी में, एक अखबार में काम करती हूँ। घर से बैरिस्टर साहब की चिट्ठी कभी-कभी आती है। वे लोग मज़े में हैं।"—वह जानती थी धनसिंह के लिये यह सब व्यर्थ की बातें हैं। उसने कहा—"सोमा लाहौर में तो हमारे यहाँ ही थी। अब बम्बई में है, तुम कामरेड भूषण को जानते हो न, तुम्हें वही तो धर्मशाला में लाये थे ?"

"जी........ !"

"भूषण भी यहां बम्बई में हैं। उन्हें सोमा का मकान शायद मालूम है। आज यहाँ ठहरो। कल तुम्हें उनसे मिलाऊँगी। तुमने खाना खाया है ?" धनसिंह ने इनकार से सिर हिला दिया। "ठहरो"—मनोरमा भीतर चली गई। कुछ देर बाद वह उसे भीतर ले गई और चटाइयों पर पाँत बाँध कर बैठ खाना खाते कई मर्द और स्त्रियों के साथ उसे भी बैठा दिया।

मनोरमा ने धनसिंह को सोने के लिये एक दरी और चादर दी। दिन भर का थका धनसिंह बरामदे में लेटने के कुछ देर बाद सो गया परन्तु मनोरमा दूसरी लड़कियों के साथ भीतर कमरे में बिजली बुझा दी जाने के बाद भी अपनी मसहरी में आँखें खोले पड़ी रही। अगले दिन नौ बजे मनोरमा धनसिंह को साथ लिये भूषण के पास पार्टी दफ्तर में पहुँची। दोनों बहुत परेशान थे कि किया क्या जाय ! भूषण और मनोरमा दोनों अंग्रेज़ी में बोल

रहे थे। धनसिंह आशंका से कभी एक की ओर देखता और कभी दूसरे की ओर! दोनों की ही राय थी कि धनसिंह को सोमा के पास पहुंचाना ठीक नहीं परन्तु इनकार करते न बनता था—धनसिंह को क्या समझाया जाय? मनोरमा कह रही थी, जब वह मुझे देख कर बेहोश हो गई तो इस आदमी को देख कर उसकी क्या अवस्था होगी·······?

भूषण ने धनसिंह को समझाना चाहा—"तुम उसे छोड़ गये थे तो उसके लिये कोई सहारा नहीं था। उन लोगों ने उसे बदनाम कर घर से निकाल दिया। तुम जानते हो, जवान औरत का सहारा न हो तो दुनिया उसके पीछे पड़ जाती है। तुम थे तभी उसे लोग परेशान करते थे। तुम्हारे पीछे क्या हालत हुई होगी? रोटी कपड़े की परेशानी, रहने की जगह नहीं, दर दर ठोकरें खाती, जने-जने के हाथ बिकती फिरती! उससे उसने यह काम कर लिया। अब उसका बड़ा नाम है। सुना है एक लखपती से उसका ब्याह हो रहा है। तुम सोचो, जाओगे तो उसकी क्या हालत होगी! और वह बेचारी अब क्या कर सकती है। उसे तुम्हारा कभी कोई समाचार नहीं मिला। तुमने भी कभी चिट्ठी तक नहीं लिखी? उसे कोई आशा नहीं थी। करती क्या? उसे कोई क्या दोष दे?

धनसिंह की आंखें लाल हो गईं—"आप मुझे उसका ठिकाना बता दीजिये। मैं एक बार उसके यहाँ जाऊंगा। मैं एक बार उसे देखूंगा जरूर

भूषण ने फिर उसे समझाया—"लाभ क्या होगा! तुम्हें बुरा लगेगा। उसे बुरा लगेगा। बहुत होगा वह दुखी होकर ज़हर खा लेगी? क्या यही चाहते हो तुम?"

धनसिंह और भी उद्विग्न हो गया—"आप जानते हैं. मैंने उसके लिये क्या नहीं किया? नौकरी से गया, जेल काटी, खून किये, फिर जेल काटी, फिर बन-बन का पानी पिया, फिर जेल काटी। मैं देखूं तो सही मुझे वह क्या जवाब देती है?"

मनोरमा अंग्रेज़ी में बोल उठी—"जब यह आदमी उससे इतना प्रेम करता है। एक दिन सोमा भी इसके लिये प्राण देने पर उतारू थी। सम्भव है, वह सब कुछ मजबूरी में कर रही हो!

उसके मन में इसके लिये प्रेम जीवित हो तो वह इसके लिये सब कुछ छोड़ सकती है ! इसका फिर से मिल जाना सोमा के लिये सबसे बड़ा सौभाग्य हो सकता है । तुम इस मार्ग में अड़चन क्यों बन रहे हो ?"—मनोरमा इतनी बात एक सांस में कह गई ! भूषण ने दांत से होंठ काट सिर हिला दिया ।

मनोरमा ने अत्यन्त आग्रह से रूंधे हुये कंठ से कहा—"आखिर इस आदमी के साथ तुम इतना बड़ा अन्याय क्यों कर रहे हो ?''''इन्हें एक अवसर दो !" भूषण ने मनोरमा की कातर आंखों से अपनी आँखें बचा कर उत्तर दिया—"परिणाम के लिये जिम्मेवार तुम होगी !"

"हाँ" मनोरमा ने स्वीकार किया—"लेकिन मेरा अनुरोध है कि तुम इसके साथ जाओ ! कोई भी बात होगी तो तुम स्थिति सम्भाल सकते हो । तुम्हीं ने सन् ४१ में इन्हें मिलाया था ।

अनिच्छा होने पर भी भूषण दोपहर बाद धनसिंह को लेकर अंधेरी गया

× × ×

बरकत को विश्वास था कि सुतलीवाला पद्दाइन को उड़ा ले जाने की चेष्टा में है और उसे अपने आज़ाद हिन्द सैनिक के चौकीदारों से पिटवाने की तिकड़म कर रहा है । इसलिये उसने अमीन को लाकर अपने साथ ही अंधेरी के बंगले में टिका लिया था । उसे ज़हर न दिला दिया जाय, इस भय से अब वह पद्दाइन की रसोई में बना खाना भी न खाता । बरकत और अमीन में से एक आदमी पहरे पर अवश्य बैठा रहता । एक आदमी को फौजी-वर्दी में और दूसरे को मामूली खद्दर के कपड़े पहने बंगले के भीतर आते देख बराम्दे के कोने में खाट पर बैठा अमीन चौंका ।

भूषण ने सम्बोधन किया—"भैया, मिस पद्दाइन से मिलेंगे ।"

"बड़े आये मिलने वाले"—अमीन ने डांट कर उत्तर दिया—"खबरदार ! चले जाओ उल्टे पांव !"

इस आदमी को भूषण के प्रति गुस्ताखी करते देख धनसिंह आगे बढ़ कर बोला—"ज़बान सम्भाल कर बोल !" धनसिंह बराम्दे में चढ़ गया ।

अमीन समीप पड़ा डण्डा सम्भाल खाट से उठ खड़ा हुआ। उसने पुकारा—"बरकत मियां जल्दी आना" और धनसिंह की ओर बढ़ अपने डंडे से उसने सीने पर एक हुचका दिया—"पीछे हटो !"

धनसिंह ने एक हाथ से डण्डा छीन दूसरे हाथ का तमाचा ज़ोर से अमीन की कनपटी पर जड़ दिया। अमीन का शरीर कुछ ऐसा वैसा ही था तिस पर नशे से उसके पांव जमीन पर न पड़ रहे थे। तमाचा खाकर वह लुढ़क गया। सिर पक्की गच के फर्श पर टकरा जाने से अमीन चिल्ला उठा—"मार डाला रे।"

भूषण तीन क़दम पीछे था। वह बीच बचाव करने के लिये आगे लपक ही रहा थी कि बरकत बाईं ओर की कोठड़ी से निकल आया। अपने साथी को मार खाकर गिरा हुआ देख उसने अपनी तहमत से एक करौली खींच ली और धनसिंह पर टूट पड़ा। धनसिंह उसका हाथ रोकने के प्रयत्न में फर्श पर फिसल गया। बरकत धनसिंह को लक्ष्कर करौली का वार कर चुका था। भूषण के बीच में आ जाने से करौली भूषण के कंधे पर पड़ी। धनसिंह उठ कर डण्डा ले बरकत पर झपटा परन्तु बरकत बहता हुआ खून देख पकड़े जाने के भय से बंगले के फाटक से बाहर भाग गया।

धनसिंह भूषण की सहायता के लिये झुका। करौली हंसली को छूती हुई, चार उंगली गहरी उतर गई थी। खून बहुत सा बह गया। पहाड़न की आया पहली डांट-डपट सुन कर ही बराम्दे की ओर आ गई थी। खून देख कर वह चिल्ला उठी। उसकी चीख से पहाड़न भी बाहर निकल आई। एक आदमी को सिपाही की वर्दी पहने और दूसरे को खून से लथ-पथ देख उसके चेहरे का रंग उड़ गया।

धनसिंह भूषण के ज़ख़म पर हाथ रख बहता खून रोकने का यत्न कर रहा था। खून बह जाने से भूषण का सिर चकरा गया। वह खम्भे का सहारा लेकर बैठ गया। पहाड़न को घबराया हुआ देख भूषण ने उसे सम्बोधन किया, "घबराओ नहीं सोमा, तुमने पहचाना नहीं ?······मैं भूषण हूँ और वह धनसिंह !"

पहाड़न ने सहारे के लिये दोनों हाथों से किवाड़ को थाम लिया। गहरे श्वासों से उसका सीना ज्वार भांटे की लहर की तरह ऊंचा नीचा हो रहा था।

उसी समय टेलीफोन की घण्टी बजी। आया ने फ़ोन सुना और पद्दाइन को पुकारा—"मेम साहब, साहब बोल रहे हैं!" पद्दाइन को निश्चेष्ट खड़े देख आया ने स्वयं उत्तर दिया—"हजूर बरकत बंगले पर खून करके भाग गया है। मेम साहब बहुत घबराई हुई हैं।"

"यह धनसिंह है, सोमा!"—पीड़ा के बावजूद मुस्कराने की चेष्टा करते हुये भूषण ने फिर कहा। धनसिंह आँखें फैलाये सोमा की ओर देख रहा था। सोमा की दृष्टि फर्श पर थी और उसका सीना ऊपर नीचे हो रहा था। किवाड़ को उसने और भी ज़ोर से पकड़ लिया था।

"पहचाना नहीं सोमा?"–भूषण ने एक बार फिर प्रश्न किया?

सोमा ने भूषण की ओर अपनी पथराई हुई आंख उठा कर उत्तर दिया—"आप लोग क्यों मेरे पीछे पड़े हैं?......मैं सोमा नहीं हूँ!......मैं नहीं हूँ सोमा!" उसकी आंखें लाल हो गईं और दो बूंद आंसू गालों पर बह गये। उसका वक्ष दीर्घ श्वासों से अब भी उसी प्रकार ज्वार की तरह ऊंचा नीचा हो रहा था।

"ठीक कहती हो, तुम सोमा नहीं हो!"—भूषण का स्वर कड़ा हो गया। पद्दाइन भीतर जाने के लिये मुड़ रही थी।

मिस पद्दाइन,—भूषण ने फिर पुकारा—"यह दुर्घटना तुम्हारे यहाँ हुई है। व्यर्थ मुसीबत में फँसोगी। अगर अपनी गाड़ी दे दो, यह आदमी मुझे हस्पताल पहुँचा देगा।"

"ले जाइये गाड़ी"—पद्दाइन ने कहा और दीवार का सहारा लेती हुई भीतर चली गई।

धनसिंह ने आया से पूछा—"गाड़ी कहां है?" आया गाड़ी के लिये ड्राइवर को पुकार रही थी। धनसिंह भूषण को सम्भाले प्रतीक्षा कर रहा था। उसी समय एक बड़ी सी सुर्मई रंग की गाड़ी बंगले में आई। सुतलीवाला साहब गाड़ी से उतरे, सरसरी नज़र घटना पर डाली और भीतर चले गये। उन्होंने आया से बात की और पद्दाइन से भी दो बातें की। उन्होंने पतलून की जेब में हाथ डाले सोचते हुये कमरे के दो चक्कर लगाये। आया को उन्होंने पद्दाइन की गाड़ी देने के लिये मनाकर दिया और

पुलिस को फ़ोन कर दिया—"मिस पहाड़न के मकान पर गुण्डों में मार-पीट होकर छुरा चल गया है। एक आदमी ज़ख्मी पड़ा है। जल्दी आकर स्थिति सम्भालिये।"

कुछ मिनिट में पुलिस आ गई। आया का बयान लिया गया। पहाड़न का बयान लिया गया। सुतलीवाला साहब दारोगा साहब को सब बात अंग्रेज़ी में समझाते जा रहे थे! भूषण ने अंग्रेज़ी में विरोध किया कि यह सब बकवास है, झूठ है। दारोगा ने उसे सान्त्वना दी—"आपका बयान मैं अलग से लिख लूंगा? इंतज़ार कीजिये।" पुलिस ने भूषण को गाड़ी में हस्पताल पहुंचाया और धनसिंह को हिरासत में लिया।

फ़ोन पर खबर पाकर मनोरमा और दूसरे लोग हस्पताल पहुँचे। डाक्टरों ने समझाया, चोट लगने के बाद बहुत देर तक उपचार न होने के कारण भूषण की स्थिति चिन्ताजनक हो गई थी! घाव की राह रक्त में किसी प्रकार का विष फैल गया था। वह अर्धमूर्छित अवस्था में था। दवाई की सुइयां पर सुइयां लगाई जा रही थीं परन्तु अवस्था नहीं सुधर रही थी।

मनोरमा मानसिक आघात से नितान्त निर्जीव और हतोत्साह हो रही थी परन्तु दूसरे साथियों के साथ वह भूषण के पलंग के समीप बनी रही। भूषण अर्धमूर्छित अवस्था में बार-बार दोहरा रहा था— "मैंने तो पहले ही कहा था।" कभी वह दूसरी बात कहने लगता। भूषण की यह बात दूसरों के लिये अस्पष्ट थी परन्तु मनोरमा को याद आ जाता—भूषण ने कहा था-"परिणाम के लिये जिम्मेवार तुम होगी।"

डाक्टरों ने भूषण के शरीर में खून दिया जाने का प्रस्ताव किया। तीनों कामरेड और मनोरमा अपना खून देने के लिये तैयार हो गये। डाक्टर ने एक साथी का खून ले लिया परन्तु खून दिया जा सकने से पहले ही डाक्टर की राय थी कि अब खून देना भी व्यर्थ होगा। फिर भी साथियों के अनुरोध से खून दिया गया।

खबर पाकर पार्टी दफ्तर से मंत्री जोशी और बी० टी० दौड़े हुये आये। वे मनोरमा से घटना का कारण और ब्योरा जानना चाहते थे परन्तु मनोरमा के लिये बोल पाना सम्भव न था।

भूषण को अन्तिम उपचार के रूप में आक्सीजन गैस दिया जा रहा था। कम्युनिस्टों से सहानुभूति रखनेवाला एक डाक्टर भूषण की नाड़ी हाथ में लिये देख रहा था। भूषण का हाथ उसने पलंग पर रख दिया और सिर झुका कर धीमे से बोला-'समाप्त!'

मनोरमा भूषण के पलंग के पैताने बैठी थी। वह उठी और हस्पताल के दुमंजिले बराम्दे की ओर झपटी। उससे तेज़ चाल से लपक कर जोशी ने, बराम्दे के जंगले पर लपकती मनोरमा की बांह ज़ोर से थाम ली और झटके से पीछे खींच लिया। अपनी भिची हुई आँखें फैलाकर उसने डांटा—"साथी, इससे बड़े काम के लिये तुम्हें ज़िन्दा रहना है।"

मनोरमा मूर्छित हो गई।

सुध आने पर मनोरमा को धनसिंह की चिन्ता हुई। पार्टी से सम्बन्ध रखने वाले वकीलों द्वारा उसने धनसिंह को जमानत पर रिहा कराने की चेष्टा की। वकीलों के खोज खबर करने पर पता लगा कि भूषण पर किसी प्रकार की आँच न आने देने के लिये धनसिंह ने अपनी पूरा सच्ची कहानी बयान में सुनादी है। बम्बई की पुलिस बरकत की खोज कर रही थी और धनसिंह पांच वर्ष पहले पंजाब-धर्मशाला में किये गये क़त्लस्वीकार करने के कारण हिरासत में था। उसकी जमानत पंजाब धर्मशाला की अदालत में ही हो सकती थी।

मनोरमा की मानसिक और शारीरिक अवस्था देख कर उसे पार्टी दफ्तर के एक कमरे में चारपाई पर लिटा दिया गया था। पार्टी का डाक्टर उसे बार-बार दवाई दे रहा था। उसे जोशी का संदेश दिया गया था कि जब वह स्वस्थ अनुभव करे, जोशी उस से मिलकर घटना का कारण और ब्यौरा जानना चाहेंगे।

मनोरमा से जैसे भी बना उसने धनसिंह के साथ भूषण को पहाड़न के यहां भेजने की बात और पहाड़न-धनसिंह की पुरानी कहानी पार्टी मन्त्री के सामने कह दी। मनोरमा के सामने कोई कुछ न कहता था परन्तु बराम्दे में होने वाली बहस उसके कानों में पड़ जाती। पार्टी के जिम्मेवार लोग बहुत खिन्न थे कि पार्टी के इतने जिम्मेवार व्यक्ति का पार्टी की राय लिये बिना ऐसे काम में फंसना उचित न था। पार्टी पर लांछन लगाने वाले लोग किसी

भी मेम्बर के जीवन की किसी भी घटना को लेकर पार्टी पर लांछन लगाने से बाज़ न आयेंगे। नवम्बर मास में पार्टी दफ़तर पर हमला होने के समय से कम्युनिस्ट विरोधी पत्रों ने क्या नहीं लिखा? मेम्बरों के जीवन की किसी भी घटना से पूरी पार्टी की स्थिति पर प्रभाव पड़ता है। मनोरमा ने सुना और चुप रह गई।

अगले दिन प्रातःकाल ही साथी भोंसले सब दैनिक पत्र लाया। बीमार मनोरमा के प्रति सहानुभूति से एक दैनिक पत्र उसने मनोरमा को सब से पहले दे दिया। कट्टर कम्युनिस्ट विरोधी-कांग्रेसी पत्र के पहले ही पृष्ठ पर समाचार था—"प्रसिद्ध कम्युनिस्ट नेता का० भूषण एक गुण्डे से झगड़े में जख्मी होकर हस्पताल में।"

नीचे विवरण था—"ज्ञात हुआ है कि एक्ट्रेस मिस पहाड़न के लिए स्थानीय गुण्डों और का० भूषण में बहुत समय से झगड़ा चला आ रहा था। का० भूषण ने पंजाब से अपने मित्र एक गुण्डे को बुला कर स्थानीय गुण्डों पर हमला किया और स्वयं जख्मी हो गया। इस अवसर पर श्री० सुतलीवाला ने खबर पा पुलिस को बुला स्थिति सम्भालने में चतुरता और साहस का परिचय दिया। भूषण चोट के कारण हस्पताल में है। स्थानीय गुण्डे फरार हो गये हैं। भूषण का मित्र हिरासत में ले लिया गया है। कम्युनिस्टों ने भूषण के मित्र की जमानत करानी चाही परन्तु स्वीकार नहीं हुई।" समाचार पढ़ मनोरमा सन्न रह गई।

मनोरमा की सेवा के लिये नियत साथी सुमति ने आकर देखा वह अचेत पड़ी थी। डाक्टर को बुलाया गया। पत्र को देख कर मनोरमा के अचेत होने का कारण अनुमान किया गया। सुध आने पर मनोरमा ने आंख खोली। पहली बात उसके कान में पड़ी। बाहर बराम्दे में साथी भोंसले से नाराज़ हो रहे थे—"क्यों तुमने अखबार उसे दिया?"

भोंसले कातर स्वर में उत्तर दे रहा था—"साथी बीमार है, उसको दिल बहलाने के लिये अखबार दे दिया।"

मनोरमा फिर अचेत हो गई। डाक्टर परेशान था कि उसे होश कब आयगा? आयगा भी या नहीं? उस की मानसिक अवस्था में ऐसी चोट घातक हो सकती थी........